

बिहारी-सतसई

(सटीक)

टीकाकार

श्रीरामवृङ्ग बेनीपुरी

पुस्तक-भंडार, पटना-४



मुंबोध काव्यमाला

सम्पादक

आचार्य श्रीरामलोचनशरण

Satasaī

विहारी
सतसइ

सतसैया कै दोहरे,
अह नावकु कै तीरु
देखत तौ छोटै लगै,
घाव करै गंभीरु

● ● ●

टीकाकार

श्री रामगृह वेनीषुरी

[पूर्व सम्पादक 'बालक']

पुस्तक-भण्डार,
पटना

सर्वाधिकार : प्रस्तक-भंडार

प्रस्तक-भंडार
ग्रन्थालय
पश्चिम बंगाल राज्य

PK

2095

85 S3

1903

प्रिङ्गली

ई. ५५८

पौने चार रुपये

LIBRARY

MAR 13 1967

UNIVERSITY OF TORONTO LIBRARIES

प्राचीन कालिकृति

श्रीहिमालय, प्रेस, पटना

विषय-सूची

सम्पादकीय निवेदन
सतसई का सौन्दर्य

[प्रथम शतक १-४०]

वर्णन	दोहा-संख्या
मंगलाचरण	१-२३
वयः-संधि	२४-२७
यौवन	२८-३२
केश	३३-३६
अलक	३७
चोटी	३८
माँग-टीका	३९
बैंडी	४०-४६
मौह	४७-४९
नयन	५०-५७
बैन-सैन	५८-७२
नेत्र पर उक्तियाँ	७३-८४
नासिका	८५-९०
कपोल	९१
श्रवण	९२
अधर	९३
चितुक (डुड़ी)	९४-९७
काजर-बैंडी (डिलौना)	९८-९९
मेहँडी	१००
[द्वितीय शतक ४१-७९]	
मुख	१०१-१०२

हास्य	१०३
स्तन	१०४
कटि	१०५-१०६
जंघा	१०७
मोरवा (पृङ्गी से ऊपर)	१०८
पृङ्गी	१०९-११०
पायल (नूपुर)	१११
अनवट (पादांगुष्ठ-भूषण)	११२
षट्-तल	११३
कंचुकी	११४-११५
भूषण	११६-११७
चुनरी-साढ़ी	११८-११९
करण्कूल	१२०
झीनी रेशमी साढ़ी	१२१
खुम्मी (कान की लौंग)	१२२
तरौना, बेसर	१२३
मुख-छवि	१२४
अँगूठीयुत अँगुली	१२५
तरिवन (कान की तरकी)	१२६
बैन-शिकारी सौन्दर्य	१२७
सौन्दर्य	१२८
गुंजा-हार	१२९
मणिमाला	१३०
साढ़ी की जरी-किनारी	१३१
गोराहै	१३२

रति-मर्दित वस्त्र	१३३	गुड़ी	२१६
पँचरंग बेंदी और चुनरी	१३४	प्रेम की दृढ़ता	२१४-२१७
स्वामाविक शंगार	१३५	प्रेमानुभव	२१८-२२०
अंग-युति	१३६-१४०	प्रेम की पीड़ा	२२८-२३८
शरीर की सुरंग	१४१	प्रेमानन्द, प्रेमालाप	२३६-२३७
तायक का लावण्य	१४२	प्रेम की विवशता	२३८-२४८
अंग-सौष्ठव	१४३	प्रेमपूर्ण छुल	२४८
मौलिश्री-माला	१४४	चित्तचोरी	२५०
अंग-कान्ति	१४५-१५८	नायिका-नागिन	२५१
खुक्कमारता	१५६-१६०	चतुराई	२५२
तलहथी	१६१	प्रेम-सूचक घेषा	२५३-२५६
रुचनगिमा	१६२-१६६	नायिका-रूपी रात्रि	२५७
हाव	१६७-१६९	प्रेमोत्पादक प्रशंसा	२५८-२६८
स्वेद	१७०	सखी की शिक्षाएँ	२६६-२७८
स्वकीया	१७१-१७२	विरह-निवेदन	२७६-२७९
बबोदा	१७३	उलाहना	२८०
विश्वध-नबोदा	१७४	प्रेमोच्चेजन	२८१-२८६
परकीया	१७५-१७६	संघटन-युक्ति	२८७-२८८
अनुराग	१७७-१८०	सुखचंद्र-प्रशंसा	२८९-२९०
दर्शन	१८१-१८२	संघटन-युक्ति	२९१-२९२
प्रेम-रंग, प्रेमाम्बि	१८३-१८४	प्रेम-पुलक	२९३
नेत्रमिलन	१८५	फुटकर	२९४
मिलन-महिमा	१८६	नायक का एकान्त प्रेम	२९५
दर्शनोत्कण्ठा	१८७-२००	तन्मयता	२९६
[तृतीय शतक ८०-११९]		प्रेम-स्तम्भिता	२९७-२९९
प्रेम-विहळा	२०१-२१०	सीत्कार	३००
स्वप्न-दर्शन	२११-२१२		

[चतुर्थ शतक १२०-१६१]	
प्रेम-लक्षण	३०१-३०४
प्रेमाश्वासन	३०५-३०६
दूरी	३०७
अभिसारिका	३०८-३१५
प्रिय-मिलनोत्कंठा	३१६-३२०
दूरी-वचन	३२१-३२४
प्रथम मिलन	३२५-३३०
सुरतारम्भ	३३१-३३७
रति-कीड़ा	३३८-३४९
विपरीत रति	३४०-३४४
सुस्तान्त	३४५-३४६
निवली	३४७
प्रेमकीड़ा	३४८-३४७
मढ़-पान	३४९-३५१
बन-विहार	३५२-३५५
जल-विहार	३५६-३५७
हिंडोला	३५८-३६१
चोरमिहोचनी का खेल	३७०
सुरत-जन्य शैयिल्य	३७१-३७३
सखी-वचन	३७४
रति-लक्षिता	३७५-३७८
गर्विता	३७९-३८१
खंडिता	३८२-४००
[पंचम शतक १६१-२००]	
खंडिता	४०१-४२२
मानिनी	४२३-४५०
किया-चिद्रधा	४५१

मान और परिहास	४५२-४५४
प्रेम-गर्विता	४५५
पवि-अनुरागिनी	४५६-४६१
उत्कंठिता	४६२
दक्षिण नायक	४६३
धृष्ट नायक	४६४-४६६
ज्येष्ठा-कनिष्ठा	४६७-४७२
पड़ोसिन का प्रेम	४७३-४७५
विरह	४७६-४००
[षष्ठ शतक २००-२४१]	
विरह	५०१-५३७
प्रेम-संदेश	५३८
प्रेम-पत्रिका	५३९-५४२
आगतपतिका	५४३-५५२
फाग-रंग	५५३-५५९
वसंत	५६०-५६३
ग्रीष्म	५६४-५६६
पावस	५६७-५७८
शरद	५७९
हेमंत	५८०-५८३
शिशिर	५८४-५८६
द्वितीया-चंद्र-दर्शन	५८७-५८८
चाँदनी	५८९
पवन	५९०-५९४
कुलवधु	५९५
ग्रामीण नायिका	५९६-५९८
नायिका-स्नान	५९९-६००

[सप्तम शतक २४१-२७९]

नाथिका-स्नान	६०१-६०५
गर्मवती	६०६
कातनहारी	६०७
दहेंडी रखने की भावभंगी	६०८
स्त्री-चरित्र	६०९
प्रीतम-स्मृति	६१०
सौमाय की ख्याति	६११
नपुंसक वैद्य	६१२
स्फुट	६१३-६१६
रसिक	६१७-६१८
सज्जन	६१९
सम्पत्ति	६२०
दुर्जन	६२१
कृपण	६२२
नीच	६२३-६२५
जयसिंह-प्रशस्ति	६२६-६३१
दुराज	६३२
लोक-रीति	६३३-६३६
श्रीकृष्ण-हकिमणी	६३७
संगति	६३८
दुश्चित्र-पौराणिक	६३९
फुटकर	६४०-६४१
नीति	६४२-६४६
सुन्दरी रसोह्यादारिन	६४७
समानता की प्रीति	६४८
मूर्ख ज्योतिषी	६४९

नीति	६५०-६५१
नायक का मनोहर धूम्रपान	६५२
नीति	६५३
प्रेमवंचित से दूती-वचन	६५४
अन्योक्तियाँ	६५५-६७८
शान्त रस	६७९-६९०
मक्तवत्सल से उपालम्भ	६९१
दुखियों को उपदेश	६९२
पतितपावन को तुनौती	६९३
ईश्वर-प्रति व्यंग्य	६९४-६९६
मगवद्विनय	६९७
लोभ-निन्दा	६९८
मगवद्वार्थना	६९९-७००

[परिशिष्ट]

भगवद्गङ्कि	७०१-७१०
शरद-सुन्दरी	७११
नीति	७१२
स्फुट-शृंगार	७१३-७१५
जयशाह-प्रताप	७१६
मुक्ताहार के प्रति	७१७
वर्षा-जनित विरह-वेदना	७१८
नीति	७१९-७२१
नीलकंठ के प्रति	७२२
सतसई-रचना का कारण	७२३
ग्रंथ-रचना-संवत्	७२४
सतसई के चोखे दोहे	७२५
विहारी के दुर्लभ दोहे	

निवेदन

जब हम १६०३ में शिवहर में पढ़ते थे, हमें पारितोपिक-रूप में अन्य पुस्तकों के साथ विहारी-सतसई की भी एक प्रति मिली थी। उस समय हम उसका रस नहीं चख सकते थे, इसलिए हमने उसे आलमारी में डाल दिया। जब पठने पढ़ने गये, तब सतसई पर कभी-कभी दृष्टि पड़ने लगी। धीरे-धीरे सुधा का स्वाद मिलता गया और अधिक-अधिक चखने का चस्का लगता गया। यों दिन रात, सताह, महीने और बरस बीत चले। दस-से-बीस और फिर बीस-से-तीस पर आये। सदा इसी चिन्ता में रहे कि आज इसकी टीका लिखते हैं और कल छुपती हैं। इसी बीच, एक नहीं, दो नहीं, बल्कि कई टीकाएँ निकल गईं। इनमें से कोई भी सुलभ और सब तक पहुँचनेवाली नहीं ठहरी। हम चुप्पी साथे रहे। पाठ्य पुस्तकों के लिखने से छुट्टी भी नहीं थी कि कलम चलाते। इसी बीच एक विद्वान् सतसई-सेवी से भेंट हुई। टीका तैयार करने में उन्होंने भी कई बरस लिये। टीका तैयार भी हुई तो एक पोथा! सुलभ मूल्य में उस टीका को कोई प्रकाशक नहीं निकाल सकता। धीरे से वह भविष्य के लिए रख छोड़ी गयी।

फिर प्रिय मित्र 'रामबृक्ष' से भेंट हुई। उसने सतसई के दोहरों पर अपनी सूझ की परीक्षा दी। हम लझ्द हो गये! बोले—'कुर्सत नहीं कि सतसई की हृत्तंत्री पर हाथ फेरें, तुम रसिक युवक हो, तुम्हीं फेर देलो, शायद तुम्हारे कुछ हाथ आये।' उसने सहपर स्त्रीकार किया और अपनी रसशता, मर्मशता और सहदयता से हमें मुग्ध कर दिया।

कापी तैयार होने पर पढ़ने लगे। अपनी योग्यता के अनुसार हमने कापी ध्यान से देखकर, जहाँ आवश्यक समझा, उचित संशोधन कर दिया। आयोपान्त सम्पादन कर कापी प्रेस में भेज दी।

लिखते हर्ष होता है कि श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस के सुयोग्य संचालक गणपति कृष्ण गुर्जर जी ने इसे केवल १० दिनों में छापकर समाप्त कर दिया। इसके लिए हम उन्हें हृदय से धन्यवाद देते हैं।

ब्रज-विहारी का यह सर्वस्व विहारी द्वारा संचित है। विहारी ही इसका टीकाकर है, और विहारी ही इसका सम्पादक—इतना ही नहीं, प्रकाशक भी इसका विहारी ही है। इसपर पाँच विहारियों की मुहरें लगी हैं। यदि इस टीका के सहारे हमारे पाठक भी ‘सतसईं-विहारी’ हुए, तो यह प्रयत्न सचमुच सार्थक होगा।

टीका लिखने, उसे सम्पादित करने और छापने में बड़ी ही शीघ्रता की गयी है। इन सब कामों के लिए केवल एक महीने का समय लगा है।

नवीन संस्करण

हमारे हर्ष की मात्रा उस समय और भी बढ़ जाती है जब हम देखते हैं कि इस टीका के दो संस्करण जिस प्रकार शीघ्रता में छपे थे उसी प्रकार शीघ्रता से खप चुके और इसके नवीन संस्करण की आवश्यकता हुई। ‘परिवर्द्धित और परिष्कृत’ करने में ‘मतवाला-मंडल’ के सुप्रसिद्ध माण्डलीक सरस-साहित्य-शिल्पी हिन्दो-भूषण वाकू शिवपूजन सहाय जी ने जैसा परिश्रम उठाया है, उसके लिए इसके लेखक, सम्पादक और प्रकाशक सभी उनके चिर-ऋणी रहेंगे। केवल धन्यवाद-प्रदान से ही इस प्रकार के प्रेममव वर्ताव का परिशोध नहीं हो सकता।

— रामलोचनशरण विहारी

‘सतसई’ का सौन्दर्य

हिन्दी का पद्म-साहित्य अत्यन्त सरस एवं अतीव गंभीर है। जबतक हिन्दी के पद्म-साहित्य-सुधा-सागर का विविवत् मन्थन न किया जाय, तबतक कविवर विहारी की सतसई का वास्तविक मूल्य मालून नहीं हो सकता। हिन्दी-काव्य-संसार के नौ महारथियों में जिस कविरल को सादर स्थानापन्न किया गया है, उसकी रचना का वास्तविक मूल्य निर्द्धारित करना मुझ-जैसे अनाङ्गी के लिए उपहासास्पद है। मुझ-जैसे अनधिकारियों के लिए ही लोलिम्बराज ने कहा है—

ये पां न चेतो ललनामुलग्नं मग्नं न साहित्यसुधासमुद्रे ।

ज्ञास्यन्ति ते किं मम हा प्रयामानन्द्या यथा वारवधूविलासाम् ॥

किन्तु जिस बन्तु में गुणों का आधिक्य है, उत्तके विषय में मौन हो जाना, ईश्वर की दी हुई वाणी को व्यर्थ करना है। जिस वाणी ने गुणवान् के गुणों का वर्णन नहीं किया, उसका हांना ही निष्फल है। निष्फल ही क्यों, हृदय में चुभनेवाले काँटे के समान कष्टकर है।

यही सोचकर, अपनी असमर्थता का ध्यान छोड़कर हृदय को सन्तोष देने और काव्यानुग्रामी शठकों के ननारंजन के लिए, मैं महाकवि विहारी की रसमधी कविता की माधुरी चम्बाना चाहता हूँ। साथ ही, विहारी की कविता-रूपिणी कान्तिमयी मणि की दीनि भी दिखाने की इच्छा है। कुपा कर सहृदयता की आँखों में अनुगग का अंजन लगाकर देखिए।

पहले एक विचित्र कल्पना देखिए। ‘विहारी’ होने के कारण मुझे ‘विहारीलाल’ के विषय में कुछ कल्पना करने की इच्छा होती है। यथापि ‘विहारी’ के चरित्र-रचनिताओं ने विहार-प्रान्त से उनके किंगी तरह के सम्बन्ध की कल्पना तक नहीं की है, तथापि हम ‘विहारी’ इस महाकवि पर केवल नाम-साठश्य का दावा कर सकते हैं। वंगानियों ने हमें विद्यापति को छीन लिया था, शायद ‘विहारी’ भी छीन लिये गये हों।

किन्तु केवल नाम का ही सम्य नहीं है। एक यात्रात्य विद्वान् का अनुमान है कि विहार-प्रान्त को प्रकृति-नटी की रंगस्थली समझकर विलास-प्रिय यवन-सम्प्राटों ने इसका नाम ‘विहार’ रखा था। हो सकता है कि ‘सतसई’ की कविता को कान्त-कलेवरा कविता-कामिनी की कमनीय क्रीड़ा-स्थली और प्रेम तथा शृंगार की विहार-भूमि समझकर ही महाकवि को ‘विहारी’ की पदवी दे दी गयी हो, और महाकवि भूपण की तरह इनका भी असली नाम गुम हो गया हो।

ब्राह्मण होने, ब्रह्मा-गोविन्दपुर में जन्म लेने, बुन्देलखण्ड में बाल्यावस्था व्यतीत करने और ब्रजवासी होने की बदौलत यदि योड़ी देर के लिए अनुप्रासा-नुरागी इन्हें ‘विहारी’ समझ लें, तो क्या हानि होगी?

जो हा, मेरे इन अभिनव अनुमानों में आपत्ति की आशंका अवश्य है। किन्तु इसे मनोरंजक साहित्यिक कल्पना के सिवा और कुछ न समझिएगा।

फिर देखिए, ‘विहार’ शब्द का अर्थ ‘मठ’ भी होता है। विहार-प्रान्त में चौदू मठों की संख्या अधिक थी, इसलिए इसका नाम ‘विहार’ पड़ा। उन मठों में ऐसे स्नातक रहा करते थे, जो देश-विदेश में भ्रमण कर धर्म-प्रचार किया करते थे। मालूम होता है, प्रेम, शृंगार, अनुगग, नायिका-भेद एवं हाव-भाव-रूपी मठों में रहनेवाले ‘सतसई’ के सात सौ स्नातकों—‘दोहों’—ने भी हिन्दी-साहित्य-संसार में सरसता और रसिकता का इस जोर-शोर से प्रचार किया कि महाकवि को वरबस ‘विहारी’ की पदवी प्राप्त हो गयी।

अच्छा, तो अब मेरी कल्पना के हवाई-महल से बाहर निकलकर महाकवि विहारीलाल के रमणीय कल्पना-कुञ्ज में प्रवेश कीजिए। विहारीलाल की कविता की समालोचना करने की योग्यता मुझमें नहीं है। उनकी कविता किस दर्जे की थी, इसपर विचार करना भी अक्षमिकर और अनधिकार चेष्टा होगी। हाँ, उनकी कविता के सम्बन्ध में यहाँ सिर्फ ऐसी ही बातें कहने की आवश्यकता है, जिनसे सहदृश साहित्य-प्रेमियों का मनोविनोद हो। उनकी कविता में कितना रस-परिपाक है, कैसे-कैसे मनोहर शब्द कहाँ और किस त्वारी के साथ प्रयुक्त हुए हैं, भाव और अलंकार कितने अनूठे हैं, इन्हीं बातों पर व्याख्यात्का कुछ

लिखना चाहता हूँ। पहले पद-मैत्री, यमक या अनुप्रास देखिए, फिर अनुपम अलंकारों और ललित भावों की छुवि-छटा—

तौ पर वारों उरबसी, सुनु रथिके सुजान ।
 तू मोहन कै उर बसी, हूँ उरबसी समान ॥
 केसरि कै सरि क्यौं सकै, चंपकु कितकु अनूपु ।
 गात-रुपु लखि जातु दुर्व, जातरूप कौं रुपु ॥
 साथक सम माथक नयन, रँगे त्रिविध रँग गात ।
 कल्पी त्रिलखि दुरि जात जल, लखि जलजात लजात ॥
 वर जीते सर मैन के, पेसे देखे मैन ।
 हरिनी के नैनानु तैं, हरि नीके ए नैन ॥
 गुड़ी उड़ी लखि लाल की, अँगना अँगना माँह ।
 बौरी लौं दौरी फिरति, छुअति छबीली छाँह ॥
 गड़े बड़े छवि-छाकु छकि, छिगुनी छोर छुड़े न ।
 रहे सुरँग रँग रँगि वही, नह दी मँहर्दी नैन ॥
 रस सिंगार मंजन किए, कंजनु मंजनु दैन ।
 अंजनु-रंजनु हूँ बिना, खंजनु गंजनु नैन ॥

कोई सहदय यह कहने में संकोच नहीं कर सकता कि ‘विद्वारी’ ने हिन्दी-साहित्य की श्री-वृद्धि करने में महत्वपूर्ण भाग लिया है। इनकी कविता में चमत्कार, लालित्य, मनोशता, सूक्ष्मदर्शिता, सरसता, स्वाभाविकता और मार्भिकता की मात्रा कम नहीं है। इनकी कविता के अनूठे भावों ने हिन्दी-साहित्य में प्रचुर माधुर्य, ओज और प्रसाद भर दिया है। देखिए, प्राकृतिक वर्णन में कैसा रस है—

छकि रसाल-सौरभ सने, मधुर माधवी-गंध ।
 ठौं-ठौंर मौरत झौंपत, झौं-झौंर मधु-अंध ॥
 रनित भृंग-वंटावजी, झरिन दान-मधुनीरु ।
 मंद-मंद आवतु चल्यौ, कुंजस्त-कुंत-सर्मीरु ॥

लपटी पुहुप-पराग-पट, सनी सेद-मकरंद ।
 आवति नारि-नवोढ़ लौं, सुखद वायु गति-मंद ॥
 रुक्यौ साँकरै कुज-मग, करतु भाँझि झकुरातु ।
 मंद-मंद मारुत-तुरँगु, खूँदतु आवतु जातु ॥
 चुवतु सेद-मकरंद-कन, तस्तु तस्तु विरमाइ ।
 आवतु दच्छन-देस तैं, थक्यौ बटोही-बाइ ॥
 ज्यौं-ज्यौं बढ़ति विमावरी, त्यौं-त्यौं बढ़त अनंत ।
 ओक-ओक सब लोक-सुख, कोक सोक हेमंत ॥
 अरुन सरोरुह कर-चरन, दग खंजन मुख चंद ।
 समै आइ चुन्दरि सरद, काहि न करति अनंद ॥

ऐसे ही और भी बहुत-से दोहे हैं, जिनसे यह प्रकट होता है कि महाकवि विहारीलाल ने वड़ी सहृदयता के साथ हिन्दी-साहित्य का शृंगार किया है। यदि उनकी यही प्रतिभा, साहित्य के आदि-रस के साथ-ही-साथ, अन्य रसों की ओर भी प्रवृत्त हुई होती, तो आज हिन्दी का काव्य-साहित्य और भी सुखजित होता। विहारी के अलौकिक शृंगार-वर्णन का रसास्वादन करने से आपको मालूम होगा कि उनकी कविता ने हिन्दी को किस दर्जे तक वैभवशालिनी बनाया है। शोभा, शृङ्खार, सौकुमार्य, हाव-भाव एवं लावण्यलीला का वर्णन करने में उन्होंने वस्तुतः अपनी विलक्षण कवित्यशक्ति दिखायी है। यदि उनका शृङ्खार-रसात्मक तथा प्रसाद-गुण-विशिष्ट लिलित वर्णन हिन्दी-साहित्य-भांडार से निकाल दिया जाय, तो हिन्दी के शुभ ललाट की विन्दी कुछ मन्द पड़ जायगी। विन्दी की विशेषता विहारी के इस दोहे से मालूम हो सकती है—

कहत सवै बेंदी दियै, शाँकु दसगुनौ होतु ।
 तिय लिकार बेंदी दियैं, अगिनितु वदतु उदोतु ॥

बेंदी की तरह अलक-वर्णन में भी कवि ने अपनी गणितशता दिखायी है। देखिए, कैसी वारीक सूक्ष्म है—

कुटिल अलक छुटि परत मुख, बढ़िगौ इतौ उदोत ।
 बंक बकारी देत ज्यौं, दामु रूपेया होत ॥

वास्तव में विहारीलाल ने साहित्य के आदि-रस को परिपुष्ट और काव्य-रसिकों को परितुष्ट करने में कमाल किया है। आदि-रस के उर्वर क्षेत्र में मृदु-भावों की भागीरथी प्रवाहित करके उन्होंने उसे कैसा शस्य-श्यामला-संपन्न बनाया है, वह देखकर किस सहृदय के नेत्र तृप्त नहीं होते ! अपनी कविता में आदि-रस को उन्होंने अमृत का धूँट पिलाकर ही छोड़ा है। उनके रसीले भावों, तुले हुए चुनिन्दे शब्दों और ध्यानातीत कल्पनाओं की बारीकी तो देखिए, कैसी अनोखी सूझ है, कितनी गहरी पैठ है, कैसी सहृदय-हृदयाहादक स्वाभाविकता है—

खेलन सिख्नए अलि भलैं, चतुर अहेरी मार ।
 कानन-चारी नैन-मृग, नागर नरन सिकार ॥
 पत्रा हीं तिथि पाइयै, वा वर कैं चहुँ पास ।
 नित प्रति पून्योईं रहत, आनन-ओप उजास ॥
 मानहु चिधि तन-अच्छ-छवि, स्वच्छ राज्जियै काज ।
 दग-पग पौङ्कन को करे, भूपन पायन्दाज ॥
 भूपन मारु संमारिहै, क्याँ इहिं तन सुकुमार ।
 सूर्ये पाइ न धर पैरे, सोभा हीं कैं भार ॥
 पति रितु आँगुन गुन बढ़नु, मानु माह कौ सात ।
 जानु कठिन है अति मृदौ, रवनी-मन-नवनीतु ॥
 तंत्री-नाद कवित्त-रस, सरस राग रति-रंग ।
 अनवूडे वूडे तरं, जे वूडे सब अंग ॥
 मक्काकृति गोपाल कैं, सोहत कुंडल कान ।
 धर्मयो मनो हित्र-गद समर, छाँड़ा लसत निसान ॥
 नहि हरि-कों हिवरो धरी, नहि हर-कों आरवंग ।
 एकत्र हीं करि राज्जियै, अंग-अंग प्रत्यंग ॥
 अधर धरत हारि कैं परत, शोष-डार्स षट जोति ।
 हरिरा वाँस को वांसुरी, इन्द्र धनुष रँग हांति ॥

सोहत थोड़े पीत पदु, स्याम सलौने गात ।
 मनौ नीलमनि-सैल पर, आतप पस्यौ प्रभात ॥
 कंजनयनि मंजनु किये, बैठी थ्यौरति बार ।
 कच अँगुरी बिच दीठि दै, चितवति नन्दकुमार ॥
 वेसरि-मोती धनि तुही, को वूझै कुल जाति ।
 पीबौ करि तिय-अधर को, रस निधरक दिन-राति ॥

अफ़सोस ! केवल सात-आठ दोहों द्वारा सात सौ दोहों का सौष्ठुव किसी तरह नहीं दिखाया जा सकता । हाँ, ‘स्थालीपुलाक न्याय’ से उक्त दोहों द्वारा कवि की विचित्र वर्णन-चातुरी और रचना-कौशल का किसी हद तक अनुमान किया जा सकता है ।

अब जरा ध्यान देकर देखिए, अन्यान्य प्रकार के वर्णनों में भी विहारीलाल ने शुंगार-रस को किस प्रवीणता और सफलता से प्रधानता दी है ।

शिशिर-वर्णन—

तपन-तंज लापन-तपति, तूल-हुलाई माँह ।
 सिसिर-सीतु क्यौंहुँ न कटै, बिनु लपटै तिच नाँह ॥

इसी भाव का एक श्लोक भी है—

कार्पासकृतकूर्पासशतैरपि न शास्यति ।

शांतं शातोदरीपीनवक्षोजालिंगनं विना ॥

पुनश्च—रहि न सर्का सब जगत मैं, सिसिर-सीत कै शास ।

गरम साजि गढ़वै भई, तिय-कुच अचल मवास ॥

वर्षा-वर्णन—

छिनकु चलति छिनकति छिनकु, भुज ग्रीतम-गल ढारि ।

चढ़ी अटा देखति बटा, बिज्जु-छटा-सी नारि ॥

होली-वर्णन—

रस मिजए दोज दुहुनु, तड ठिकि रहे टरै न ।

छबि सौं छिरकत ग्रेम-रँग, मरि पिचकारी नैन ॥

राष्ट्रीयता के इस नवीन युग में, जब कि जागृति-जाह्वी में जनसमुदाय स्नान कर रहा है, वह शृंगार-रस का पचड़ा पाठकों को पसन्द न पड़ेगा; किन्तु कविता की महत्त्वा तो किसी दशा में अस्त्रीकार नहीं की जा सकती। शृंगार-रस के कारण कविता की महिमा नहीं बढ़ती। कवि की पहुँच परखिए—रस या भाव तो रुचि पर निर्भर है। विहारी के एक दोहे पर मनोरंजक प्रश्नोत्तर देखिए—

कियो मध्ये जगु काम-बम, जीते जिते अजेह ।

कुमुम-सरहिं सर-धनुष कर, अगहनु गहन ल देह ॥

प्रश्न—

कहीं सीत की प्रबलता, नहि न सकै धनु काम ।

तो हेमन्त में चाहिये, कामहान जगधाम ॥

उत्तर—

जग करि दीन्हों स्वामियम, जीति अजित बिज बास ।

धनुष-गहन लभ देत नहि, कामहि अगहन दास ॥

विहारी के नीति-कथन में भी एक विचित्र सरसता झलकती है—

मंगति दोषु लगे सबनु, कहे ति साँचे बैन ।

कुटिल बंक छुव-यंग ते, कुटिल बंक नति नैन ॥

मोहतु मंगु समान लौं, यहै कहै सबु लोगु ।

पान-पाक ओठनु बने, काजर नेनगु जोगु ॥

जैरा लम्पति कृगन के, तेती सूमति जोर ।

बड़त जात ज्यौं-ज्यौं डरज, द्यौं-द्यौं होत करोर ॥

इक भीजैं चहलैं परे, वहैं वहैं हजार ।

किंतु न आंगुल जग करे, न वै चढ़ती बार ॥

विहारी की अन्योक्तियों में भी शृंगार का समावेश है। शृंगार-वर्णन में कहीं-कहीं हिन्दी के मुहावरों का प्रयोग वडे अच्छे ढंग से किया गया है—

अंग अंग नत जगमगत, दीर्घनिवा-सा देह ।

‘दिया बड़ाएं हूँ’ रहै, बड़ो उज्यासे गेह ॥

कर समेटि कच भुज उलटि, खये सीस-पटु डारि ।
 काकौ 'मनु बाँधे' न यह, जूरा बाँधनिहारि ॥
 जाल-रंध्र-मग अँगनु कौ, कछु उजास सौ पाइ ।
 'वीठि दिए' जग त्यौं रह्यौ, 'डीठि झरोखे लाइ' ॥
 'नैन लगे' तिहिं लगनि जनि, छुटै छुटै हूँ प्रान ।
 काम न आवत एक हूँ, तेरे सौक सयान ॥

बिहारी ने अपनी कविता में पौराणिक कथाओं का उल्लेख भी कहीं-कहीं बढ़े अच्छे ढंग से किया है—

रह्यौ येंचि अंत न लह्यौ, अवधि दुसासन बीरु ।
 आली बाढ़तु विरहु ज्यौं, पंचाली कौ चीरु ॥
 या भव-पारावार कौं, उल्लंघि पार को जाइ ।
 तिय-छवि-छायाग्राहिनी, ग्रहे बीच ही आइ ॥
 विरह-विथा-जल परस बिन, बसियतु मो मन-ताल ।
 कछु जानत जलशंस-बिधि, दुरजोधन लौं लाल ॥
 यौं दल काढ़े बलख तैं, तैं जयसाहि भुवाल ।
 उद्र अवासुर कैं परै, ज्यौं हरि गाइ गुवाल ॥
 सखि सोहति गोपाल कैं, उर गुंजन की माल ।
 वाहिर लसति मनौ पिए, दावानल की ज्वाल ॥

बिहारीलाल की कुछ रचनाएँ बतलाती हैं कि वे शान्त-रस की कविता भी अच्छी कर सकते थे। भक्ति, विनय, दीनता और वैराग्य के भाव कैसे अनूठे हैं। देखिए, शान्त-रस में भी वही स्वाभाविक सरसता—

या अनुरागी चित्त की, गति समझै नहिं कोइ ।
 ज्यौं-ज्यौं वूड़े स्याम रँग, त्यौं-त्यौं उज्जल होइ ॥
 नीकी दई अनाकनी, फाकी परी गुहारि ।
 तउयौं मनौ तारन-विरहु, बारक बारनु तारि ॥
 जप माला छापैं तिलक, सरै न एकौ कामु ।
 मन कौचै नाचै वृथा, साँचै रँचै रासु ॥

जगतु जनायौ जिहिं सकलु, सो हरि जान्वी नाहिं ।
 ज्यौं आँखिनु सबु देखियै, आँखि न देखी जाहिं ॥
 करौ कुबल जगु कुटिलता, तजौं न दीनदयाल ।
 दुखी होहुये सरङ चित, बसत त्रिमंगीलाल ॥
 ज्यौं अनेक अधमनु दियौ, मोहुँ दीजै खोयु ।
 तौ वाँधौ आपनै गुचनु, जौ वाँधैही तोयु ॥

मैं यहाँ तक जितना कुछ कह आया हूँ, उससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि विहारी की कविता यद्यपि थोड़ी है, तथापि, वह उतनी ही, हिन्दी-साहित्य की अमूल्य सम्पत्ति है। उसमें शृंगार का प्राधान्य, सन्दर्भ-सौन्दर्य, भाव-तौरुमार्य, रस-माधुर्य, अर्थ-गम्भीर्य आदि सब कुछ यथेष्ट हैं। जो कोई 'सतसई' पढ़ेगा, वह यही अनुमत करेगा । *

— शिवपूजन सहाय

* सूर्यपुराधीश राजा श्री राधिकारमणप्रसादसिंह जी एम० ए० के सभापतित्व में होनेवाले गत द्वितीय विहार-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, वेतिया (चम्पारन), में पठित लेख का परिवर्द्धित और परिष्कृत रूप।

1931-03-08-000000

बिहारी-सतसई

[सरल-टीका-सहित]

प्रथम शतक

मेरी भव-वाधा हरौ राधा नागरि सोइ ।
जा तन की झाँई परैं स्यामु हरित दुति होइ ॥ १ ॥

अन्वय—सोइ राधा नागरि मेरी भव-वाधा हरौ, जा तन की झाँई परैं, स्यामु दुति हरित होइ ।

भव-वाधा=संसार के कष्ट, जन्ममरण का दुःख । नागरि=सुचतुरा ।
झाँई=छाया । हरित=हरी । दुति=द्युति, चमक ।

वही चतुरा राधिका मेरी मांसारिक बाधाएँ हरें—नष्ट करें; जिनके (गोरे) शरीर का छाया पढ़ने से (साँवले) कृष्ण की द्युति हरी हो जाती है ।

नोट—नीले और पीले रंग के संयोग से हरा रंग बनता है । कृष्ण के अंग का रंग नीला और राधिका का काञ्चन-बर्ण (पीला) —दोनों के मिलने से 'हरे' रंग प्रकृता की सृष्टि हुई । राधिका से मिलते ही श्रीकृष्ण खिल उठते थे । कविवर रसलीन भी अपने 'अंग-दर्पण' में राधा की यौं बन्दना करते हैं—

राधा पद बाधा-हरन साधा कर रसलीन ।

अंग अगाधा लखन को कीन्हों मुकुर नवीन ॥

सीस-मुकुट कटि-काढ़नी कर-मुरली उर-माल ।

इहिं बानक मो मन वसो सदा विहारीलाल ॥ २ ॥

अन्वय—सीस मुकुट, कटि काढ़नी, कर मुरली, उर माल—विहारीलाल
इहि बानक मो मन सदा वसो ।

कटि=कमर । बानक=बाना, सजधज । विहारीलाल=भगवान् कृष्ण ।

सिर पर (मोर) मुकुट, कमर में (पीताम्बर की) काढ़नी, हाथ में
मुरली और हृदय पर (मोती की) माला—हे विहारीलाल, इस बाने से—
इस सजधज से—मेरे मन में सदा वास करो ।

मोहनि मूरति स्याम की अति अद्भुत गति जोइ ।

बसति सुचित अंतर तऊ प्रतिविम्बित जग होइ ॥ ३ ॥

अन्वय—स्याम की मोहनि मूरति गति अति अद्भुत जोइ । बसति
सुचित अंतर, तऊ प्रतिविम्बित जग होइ ।

जोइ=देखना । सुचित=निर्मल चित्त, स्वच्छ हृदय । अंतर=भीतर ।
प्रतिविम्बित=झलकती है ।

श्रीकृष्ण की मोहनी मूर्ति की गति बड़ी अद्भुत देखी जाती है । वह
(मूर्ति) रहती (तो) है स्वच्छ हृदय के भीतर, पर उसकी झलक दीख
पड़ती है सारे संसार में ।

तजि तीरथ हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुराग ।

जिहिं ब्रज-केलि निकुंज-मग पग-पग होत प्रयाग ॥ ४ ॥

अन्वय—तीरथ तजि हरि-राधिका-तन-दुति अनुराग करि । जिहिं ब्रज-केलि
निकुंज-मग पग-पग प्रयाग होत ।

ब्रज-केलि=ब्रजमण्डल की लीलाएँ । निकुंज-मग=कुंजों के बीच का
रास्ता । प्रयाग=तीर्थराज । नकुंज=लताओं के आपस में मिलकर तन जाने
से उनके नीचे जो रिक्त स्थान बन जाते हैं, उन्हें निकुंज वा कुंज कहते हैं,
लता-वितान ।

तीर्थों में भटकना छोड़कर उन श्रीकृष्ण और राधिका के शरीर की छटा से
प्रेम करो, जिनकी ब्रज में की गई क्रीड़ाओं से कुंजों के रास्ते पग-पग में प्रयाग

वन जाते हैं—प्रयाग के समान पवित्र और पुण्यदात्रक हो जाते हैं।

सघन कुंज छाया सुखद सीतल सुरभि समीर ।
मनु है जात अजौं वहै उहि जमुना के तीर ॥ ५ ॥

अन्वय—कुंज सघन, छाया सुखद, समीर सीतल सुरभि उहि यमुना के तीर अजौं मनु वहै हूँ जात ।

सुरभि समीर=वास्तिक फूलों की गंध से सुगंधित हवा । है जात=हो जाता है । अजौं=आज भी ।

जहाँ की कुंजे बनी हैं, छाया सुख देनेवाली है, पवन शीतल और सुगंधित है, उस यमुना के तीर पर जाते ही आज भी मन बैसा ही हो जाता है—कृष्ण-प्रेम में उसी प्रकार मन्म हो जाता है ।

सखि सोहति गोपाल के उर गुंजन की माल ।

बाहिर लसति मनौ पिए दावानल की ज्वाल ॥ ६ ॥

अन्वय—सखि, गोपाल के उर गुंजन की माल सोहति, मनौ पिए दावानल की ज्वाल बाहर लसति ।

गुंजन=गुंजा, वृंधची;—एक जंगली लता का फल, जो लाल रँगे की तरह छोटा होता है; उसको माला सुन्दर होती है । गोपाल=कृष्ण । दावानल=जंगल में लगी हुई आग । ज्वाल=आग की लाल लपट । लसति=शोभती है ।

हे सर्वा ! श्रीकृष्ण की छाती पर (जाल-लाल) गुंजाओं की माला शोभती है । (वह ऐसी जान पड़ती है) मानों पिये हुए दावानल की ज्वाला बाहर शोभा दे रही हो—श्रीकृष्ण जिस दावाग्नि को पी गये थे, उसी की लाल लपटें बाहर फूट निकली हों ।

नोट—एक समय वृन्दावन में भवानक आग लगी थी । कहा जाता है, श्रीकृष्ण उस अग्नि को पी गये थे । वृन्दावन जलने से बच गया था ।

जहाँ जहाँ ठाढ़ौं लख्यौ स्यामु सुभग सिरमौर ।
विनहूँ उनु छिन गहि रहतु हननु अजौं वह ठाँर ॥ ७ ॥

विहारो-संतसई

अन्वय—सुमग-सिरमौर स्यामु जहाँ जहाँ जाही लख्यौ, अजौं वह ठौर,
उन बिन हूँ, दगन छिनु गहि रहतु ।

सुमग-सिरमौर = सुन्दर पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ । ठौर = स्थान । छिन = क्षण ।
गहि रहतु = पकड़ लेता है ।

सुन्दरों के सिरताज श्यामसुन्दर को जहाँ-जहाँ मैंने खड़े हुए देखा था,
उनके न रहने पर भी, आज भी वे स्थान आँखों को एक क्षण के लिए (बरबस)
पकड़ लेते हैं—आँख वहाँ से नहीं हटतीं ।

चिरजीवौ जोरी जुरे क्यों न सनेह गँभीर ।

को घटि ए वृपभानुजा वे हलधर के वीर ॥ ८ ॥

अन्वय—जोरी चिरजीवौ; गँभीर सनेह क्यों न जुरै, को घटि—ए
वृपभानुजा, वे हलधर के वीर ॥ ८ ॥

चिरजीवौ = (१) सदा जीते रहो, (२) चिर+जीवौ = वासपात खाते
रहो । जुरै = जुटे, एक साथ मिले । सनेह = (१) प्रेम, (२) धी । गँभीर =
गम्भीर, अगाध । घटि = न्यून, कम, छोटा । वृपभानुजा = (१) वृषभानुजा
= वृपभानु की बेटी, (२) वृपभ+अनुजा = साँड़ की छोटी बहिन । हलधर =
(?) बलदेव, (२) हल+धर = बैल । वीर = भाई ।

(राधा-कृष्ण की यह) जोड़ी चिरजीवी हो । (इनमें) गहरा प्रेम क्यों
न बना रहे ? (इन दोनों में) कौन किससे घटकर है ? ये हैं (बड़े बाप !)
वृपभानु की (लाड़की) बेटी, (और) वे हैं (विश्वात वीर) बलदेवजी के
छोटे भाई !

श्लेषार्थ—यह जोड़ी वासपात खाती रहे ! इनसे अगाध धी क्यों न
प्राप्त हो ? घटकर कौन है ? ये हैं साँड़ की छोटी बहिन, तो वे हैं बरद के
छोटे भाई !

नोट—इस छोटेसे दोहे में उत्कृष्ट श्लेष लाकर कवि ने सचमुच कमाल
किया है ।

नित प्रति एकत ही रहत वैस वरन मन एक ।

चहियत जुगल किसोर लखि लोचन जुगल अनेक ॥ ९ ॥

अन्वय—नित प्रति एकत ही रहत, वैस वरन मन एक जुगल किसोर
लखि लोचन-जुगल अनेक चहियत ।

एकत = एकत्र, एक साथ । वैस = वयस, अवस्था । वरन = वर्ण, रूप-रंग ।
जुगल-किसोर = दोनों युवक-युवती, किशोर-किशोरी की जोड़ी । लखि चहियत
= देखने के लिए चाहिए । लोचन-जुगल = आँखों के जोड़े ।

दोनों सदा एक साथ ही रहते हैं । (क्यों न हो ? दोनों की) अवस्था,
रूप-रंग और मन (भी तो) एक-से हैं । इस युगलमूर्ति (राधाकृष्ण) को
देखने के लिए तो आँखों के अनेक जोड़े चाहिए—दो आँखों से देखने पर तृप्ति
हो ही नहीं सकती ।

नोट—पद्माकर ने इस जुगल जोड़ी के परस्पर-दर्शन-प्रेम पर कहा है—

मनमोहन-तन-धन सघन रमनि-राधिका-मोर ।

श्रीराधा-मुखचंद को गोकुलचंद-चकोर ॥

मोर-मुकुट की चन्द्रिकनु यौं राजत नँदनंद ।

मनु ससि-सेखर की अकस किय सेखर सतचंद ॥ १० ॥

अन्वय—मोर-मुकुट की चन्द्रिकनु नँदनंद यां राजत, मनु ससि-सेखर
की अकस सेखर सतचंद किय ॥ १० ॥

मोर-मुकुट = मोर के पंख का बना मुकुट । चन्द्रिकनु = मोर की पूँछ के
पर में दूजे के चाँद-सा चमकीला चिह ; मोर के पंख की आँख । नँदनंद =
नंद के पुत्र, कृष्ण । मनु = मानों । ससि-सेखर = जिसके सिर पर चन्द्रमा हो,
चन्द्रशेखर, शिव । अकस = इर्प्पा, डाह । सेखर = सिर । सत = शत, सौ
(यहाँ अनेकवाची) ।

मोर-मुकुट की चन्द्रिकाओं से (श्रीकृष्ण) ऐसे शोभते हैं, मानों शिवजी
की इर्प्पा से उन्होंने अपने सिर पर अनेक चन्द्रमा धारण किये हॉ ।

नाचि अचानक हाँ उठे विनु पावस बन मोर ।

जानति हाँ, नन्दित करी यहि दिसि नंद-किसोर ॥ ११ ॥

अन्वय—विनु पावस अचानक हाँ बन मोर नाचि उठे; जानति हाँ यहि
दिसि नंद-किसोर नन्दित करो ॥ ११ ॥

बिहारी-सतसई

पावस = वर्षा ऋतु । नंदित = आनन्दित ।

विना वर्षा-ऋतु के अचानक ही वन में मोर नाच उठे ! जान पड़ता है, इस दिशा को नंद के लाइले (घनश्याम) ने आनन्दित किया है ।

नोट—श्रीकृष्ण का सघन-मेघ-सदृश श्यामल शरीर देखकर भ्रमवश एक-एक मोर नाच उठे थे ।

प्रलय करन वरषन लने जुरि जलधर इक साथ ।

सुरपति गरबु हरयो हरपि गिरिधर गिरिधरहाथ ॥ १२ ॥

अन्वय—जलधर इक साथ जुरि प्रलय करन वरषन लगे । गिरिधर हरपि गिरि हाथ धर सुरपति गरबु हरयो ।

प्रलय करन = संतार को जलमग्न करने के लिए । जुरि = मिलकर । जलधर = मेघ । सुरपति = इन्द्र । गरबु (गर्व) = घमंड । गिरिधर = कृष्ण । गिरि = पहाड़ । धर = धारण कर ।

तब मेघ एक साथ मिलकर प्रलय करने के लिए वरसने लगे । गोवद्वन्द्वधारी श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होकर—इसके लिए मन में कुछ भी दुःख न मानकर—(गोवद्वन्द्व) पर्वत हाथ में धारण कर—उठाकर—इन्द्र का घमंड चूर किया ।

डिगत पानि डिगुलात गिरि लखि सब ब्रज बेहाल ।

कंप किसोरो दरसिकै खरैं लजाने लाल ॥ १३ ॥

अन्वय—पानि डिगत, गिरि डिगुलात, लखि सब ब्रज बेहाल, किसोरो दरसिकै कंप (यह जानि) लाल खरैं लजाने ।

पानि = हाथ । डिगुलात = डगनगाना । बेहाल = बिहूल, बेचैन । कंप = थरथराहट । किसोरी = नवेली, गधिका । खरैं = विशेष रूप से । लाल = कृष्ण ।

हाथ हिलता और पर्वत डगनगाना है—यह देखकर ब्रजवासी व्याकुल हो गये । राधिका के दर्शन करके (मेरे शरीर के) कम्ब के कारण ऐसा हुआ है—पर्वत हिला है (यह सनझकर) कृष्णजी खूब ही ज़िन्दि हुए ।

नोट—इसी प्रतंग पर किसी कवि ने गजब का मज्जमून बाँधा है । देखिए, कवित—

मौहनि कमान तानि फिरति अकेली बधू टापै ए चिसिल कोर कङ्गल

भरै है री । तोहिं देखि मेरेहू गोविंद मन डोलि उठै मधवा निगोड़ो उतै रोप पकरै है री ॥ बलि विलि जाहुँ वृषभानु की कुमारी मेरो नैकु कक्षौ मान तेरो कहा चिगरै है री । चंचल चपल ललचौहैं दग मूँदि राखु जौलौं गिरिधारी गिरि नख वै धरै है री ॥

लोपे कोपे इन्द्र लौं रोपे प्रलय अकाल ।

गिरिधारी राखे सबै गो गोपी गोपाल ॥ १४ ॥

अन्वय—जोपे कोपे इन्द्र लौं अकाल प्रलय रोपे; गिरिधारी गो गोपी गोपाल सबै राखे ।

लौं = तक | अकाल = असमय ।

अपनी पूजा के लुप्त होने से कुद्द हुए इन्द्र तक ने असमय में ही प्रलय करना चाहा । (किन्तु) गिरिधारी श्रीकृष्ण ने (गोवर्द्धन धारण कर) गो, गोपी और गोपाल—सबकी रक्षा की ।

नोट—‘इन्द्र लौं’ का अभिप्राय यह कि इसके पहले अघासुर, बकासुर आदि के उपद्रव भी हो चुके थे ।

लाज गहौ वेकाज कत वेरि रहे घर जाँहि ।

गोरसु चाहत फिरत हौ गोरसु चाहत नाँहि ॥ १५ ॥

अन्वय—लाज गहौ, वर जाँहि, वेकाज कत वेरि रहे; गोरसु चाहत फिरत हौ गोरसु नाँहि चाहत ।

वेकाज = व्यर्थ, वेकार, अकारण । कत = क्यों । गोरस = गो + रस = इन्द्रियों का रस, चुम्बनालिंगन आदि । गोरस = दही-दूध आदि ।

कुछ लाज भी रक्खो—यों वेशर्म मत बनो । मैं वर जा रही हूँ, व्यर्थ मुझे क्यों वेर रहे हो ? (अब मैंने समझा कि) तुम इन्द्रियों का रस चाहते हो, दही-दूध नहीं ।

मकराकृति गोपाल कैं सोहत कुंडल कान ।

धरथौ मनौ हिय-गढ़ समरु छ्योढ़ी लसत निसान ॥ १६ ॥

अन्वय—गोपाल कैं कान मकराकृति कुंडल सोहत; मनौ समरु हिय-गढ़ धरथौ, छ्योढ़ी निसान लसत ।

मकराकृति = मकर+आकृति = मछली के आकार का । धरयौ = अधिकार कर लिया । समरु = स्मर = कामदेव । ड्यौढ़ी = फाटक, द्वार । निसान = झंडा ।

श्रीकृष्ण के कानों में मछली के आकार के कुण्डल सोह रहे हैं । मानों कामदेव ने हृदय-रूपी गढ़ पर अधिकार कर लिया है और गढ़ के द्वार पर उनकी ध्वजा फहरा रही है ।

नोट—कामदेव के झंडे पर मछली या गोह का चिह्न माना गया है । इसीसे उन्हें मीनकेतु, झखेकेतु, मकरध्वज, आदि कहते हैं ।

गोधन तूँ हरष्यो हियैं घरियक लेहि पुजाइ ।

समुक्षि परैगी सीस पर परत पसुनु के पाइ ॥ १७ ॥

अन्वय—गोधन, तूँ हिय हरष्यो वरियक पुजाइ लेहि, सीस पर पसुनु के पाइ परत समुक्षि परैगी ।

गोधन = गोब्र की बनी हुई गोवर्द्धन की प्रतिमा, जिसे कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को यहस्थ अपने द्वार पर पूजते हैं और पूजा के बाद पशुओं से रौद्रवाते हैं । घरियक = घरी+एक = एक घड़ी ।

अरे गोधन ! तू हृदय में हर्षित होकर एक घड़ीभर अपनी पूजा करा ले । सिर पर पशुओं के पाँव पड़ने पर ही (इस पूजा की यथार्थता) समझ पड़ेगी !

मिलि परछाँहीं जोन्ह सौं रहे दुहुनु के गात ।

हरि-राधा इक संग हीं चले गली महिं जात ॥ १८ ॥

अन्वय—दुहुन के गात परछाँहीं (अरु) जोन्ह हरि राधा इक संग हीं गली महिं चले जात ।

परछाँही = छाया । जोन्ह = चाँदनी । दुहुन = दोनों । गात = शरीर ।

दोनों के शरीर (एक का गोरा और दूसरे का साँवला) परछाँह और चाँदनी में मिल रहे हैं । यों, श्रीकृष्ण और राधा एक ही साथ (निःशंक भाव से) गली में चले जाते हैं ।

नोट—राधा का गौर शरीर उज्ज्वल चाँदनी में और श्रीकृष्ण का श्यामल शरीर राधा की छाया में मिल जाता था । यों उन दोनों को गली में जाते कोई देख ही नहीं सकता था । फलतः चाँदनी रात में भी वे निःशंक चले जाते थे ।

गोपिनु सँग निसि सरद को रमत रसिकु रसरास ।

लहाछेह अति गतिनु की सबनि लखे सब पास ॥ १९ ॥

अन्वय— सरद की निसि गोपिनु सँग रसिक रसरास रमतु, लहाछेह अति गतिन की, सबनि सब पास लखे ।

रमत = रम रहे हैं, आनन्द कर रहे हैं । रसरास = रस-रासलीला ।
लहाछेह = एक प्रकार का नाच जिसमें बड़ी तेजी से चकवत् घूमना पड़ता है;
घूमते-घूमते मालूम होता है कि चारों ओर की चीजें पास नाचने लगीं ।

शरद ऋतु की रात में, गोपियों के साथ, रसिक श्रीकृष्ण रसीले रास में रम रहे हैं । अत्यन्त चंचल गति के 'लहाछेह' नामक नृत्य के कारण सबने श्रीकृष्ण को सबके पास देखा ।

मोर-चन्द्रिका स्याम-सिर चढ़ि कत करति गुमानु ।

लखिवी पायन पै लुठति सुनियतु राधा-मानु ॥ २० ॥

अन्वय— मोर-चन्द्रिका ! स्याम सिर चढ़ि कत गुमान करति, सुनियतु राधा-मानु, पायन पै लुठति लखिवी ।

मोर-चन्द्रिका = मुकुट में लगे मोर के पंखों की आँखें — कलँगी । गुमान = चमंड । कत = क्यों, कितना । लखिवी = देखूँगी । लुठत = लोटते हुए । मान = रोप, रुठना ।

अरी मोर-चन्द्रिका ! कृष्ण के सिर पर चढ़कर क्यों इतरा रही है ? सुना है, राधा मान करके बैठी हैं । (अतएव शीघ्र ही) तुझे उनके पाँवों पर लोटते हुए देखूँगी ।

नोट— मानिनी राधा को श्रीकृष्ण जब मनाने जायेंगे, तब उनके पैरों पर माथा टेककर मनायेंगे । उस समय मोर-चन्द्रिका को राधा के पाँवों पर लोटना ही होगा । मान-भंजन का भव्य वर्णन है ।

सोहत ओँ पीत पटु स्याम सलौने गात ।

मनौ नीलमनि-सैल पर आतप परस्यो प्रभात ॥ २१ ॥

अन्वय— सलौने स्याम गात पीत पटु ओँ पीत सोहत, मनौ नीलमनि-सैल पर प्रभात-आतप परस्यौ ।

पीतपटु=पीला बन्ध, पीताम्बर । सलौनें (स=सहित, लौने=लावण्य) =नमकीन, सुन्दर । नीलमनि=नीलम । आतप=धूप ।

सुन्दर साँवले शरीर पर पीताम्बर ओढ़े श्रीकृष्ण यों शोभते हैं मानों नीलम के पहाड़ पर प्रातःकाल की (सुनहली) धूप पढ़ी हो ।

नोट—यहाँ कृष्णजी की समता नीलम के पहाड़ से और पीताम्बर की तुलना धूप से की गई है । प्रातःरवि की दिव्य और शीतल मधुर किरणों से पीताम्बर की उपमा बड़ी अनूठी है ।

किती न गोकुल कुल-बधू काहि न किहिं सिख दीन ।

कौनैं तजी न कुल-गली है मुरली-सुर लीन ॥ २२ ॥

अन्वय—गोकुल कुल-बधू किती न काहि किहिं सिख न दीन, मुरली-सुर लीन है कौनैं कुल-गली न तजी ।

किती=कितनी । काहि=किसको । किहिं=किसने । सिख=शिक्षा ।
कुल-गली=वंश-परम्परा की प्रथा ।

गोकुल में न जाने कितनी कुलवधुएँ हैं और किसको किसने शिक्षा न दी ? (परन्तु कुलवधू होकर और उपदेश सुनकर भी) वंशी की तान में छबकर किसने कुल की मर्यादा न छोड़ी ?

अधर धरत हरि कैं परत ओठ-डीठि पट जोति ।

हरित बाँस को बाँसुरी इन्द्र-धनुष रँग होति ॥ २३ ॥

अन्वय—अधर धरत हरि कैं ओठ-डीठि पट जोति परत, हरित बाँस की बाँसुरी इन्द्र-धनुष रँग होति ।

अधर=होठ, ओष्ठ । डीठि=दृष्टि । हरित=हरा ।

होठों पर (वंशी) धरते ही श्रीकृष्ण के (लाल) होठ, (श्वेत, श्याम और रक्त वर्ण) दृष्टि तथा (पीले) वस्त्र की ज्योति (उस वंशी पर) जब पढ़ती है, तब वह हरे बाँस की वंशी इन्द्रधनुष की-सी बहुरंगी हो जाती है ।

नोट—इन्द्रधनुष वर्षाकाल में आकाश-मंडल पर उगता है । वह मण्डलाकार, चमकीला, रँगीला और सुहावना होता है । उसमें सात रंग देखे जाते हैं । यहाँ कवि ने वंशी में की रंगों की कल्पना बड़ी खूबी से की है । होठ के

लाल रंग और बछ के पीले रंग के मिलने से नारंगी रंग, फिर होंठ के लाल रंग और दृष्टि के श्याम रंग से बैजनी रंग—इसी प्रकार, बाँसुरी के हरे रंग और अधरों के लाल रंग से पीला रंग इत्यादि। भगवान् श्यामसुन्दर का शरीर सघन मेघ, उसमें पीताम्बर की छटा दामिनी की दमक और बाँसुरी इन्द्रधनुप—जिसमें अधर, कर-कमल, दन्त-पंक्ति, नख-द्युति और ‘श्वेत-श्याम-रतनार’ दृष्टि की छाया प्रतिविम्बित है ! धन्य वर्णन !

कविवर मैथिलीशरणजी गुप्त ने भी ‘जवदथ-वध’ में खूब कहा है—

प्रिय पांचजन्य करस्थ हो मुख-लम्ब यों शोभित हुआ ।

कलहंस मानो कंज-वन में आ गया लोभित हुआ ॥

छुटी न सिसुता की झलक झलक्यौ जोवनु अंग ।

दीपति देह दुहूनु मिलि दिपति ताफता रंग ॥ २४ ॥

अन्वय—सिसुता की झलक छुटी न, अंग जोवनु झलक्यौ, दुहूनु मिलि देह दीपति ताफता रंग दिपति ।

सिसुता = शिशुता = चचपन । जोवनु = जवानी । देह-दीपति = देह की दीसि, शरीर की चमक । ताफता = धूपछाँह नामक कपड़ा जो सीप की तरह रंग-विरंग झलकता या मोर की गरदन के रंग की तरह कभी हल्का और कभी गाढ़ा चमकीला रंग झलकता है । ‘धूप+छाँह’ नाम से ही अर्थ का आभास मिलता है । दिपति = चमकती है ।

अमी चचपन की झलक छुटी ही नहीं, और शरीर में जवानी झलकने लगी । यों दोनों (अवस्थाओं) के मिलने से (नायिका के) अंगों की छटा धूपछाँह के समान (दुरंगी) चमकती है ।

तिय तिथि तरनि किसोरन्य पुन्य काल सम दोनु ।

काहूँ पुन्यनु पाइयतु वैस-सन्धि संकोनु ॥ २५ ॥

अन्वय—तिय तिथि, किसोर-बय तरनि, दोनु पुन्य काल सम, वैस-सन्धि संकोनु काहूँ पुन्यनि पाइयतु ।

तरनि = सूर्य । सम = समान राशि में आना, इकड़ा होना । दोनु = दोनों । संकोनु = संकान्ति । वैस = वयस, बय, उम्र ।

स्त्री (नायिका) तिथि है और किशोरावस्था (लड़कपन और जवानी का संधिकाल) सूर्य है । ये दोनों पुण्य-काल में इकट्ठे हुए हैं । वयःसन्धि (लड़कपन की अन्तिम और जवानी की आरंभिक अवस्था) रूपी संक्रान्ति (पवित्र पर्व) किसी (संचित) पुण्य ही से प्राप्त होती है ।

नोट—कृष्ण कवि ने इसकी टीका यों की है—

उत सूरज रासि तजै जब लौं नहिं दूसरि रासि दबावतु है ।

तब लौं वह अन्तर को समयो अति उत्तम वेद वतावतु है ॥

इतहूं जब वैस किसोर-दिनेस दुहूं वय अन्तर आवतु है ।

सुकृती कोड पूरब पुन्यन ते विवि संक्रम को छनु पावतु है ॥

लाल अलौकिक लरिक्ई लखि लखि सखी सिहाति ।

आज कालिह मैं देखियत उर उकसौंहीं भाँति ॥ २६ ॥

अन्वय—लाल, अलौकिक लरिक्ई लखि लखि सखी सिहाति, आज कालिह मैं उर उकसौंहीं माँति देखियत ।

सिहाति=ललचाती है । उकसौंहीं-भाँति=उभरी हुई-सी, उठी-सी, अंकुरित-सी ।

ऐ लाल ! इसका विचित्र लड़कपन देख-देखकर सखियाँ लज्जाती हैं । आज-कल में ही (इसकी) छाती (कुछ) उभरी-सी दीख पढ़ने लगी है ।

भावकु उभरौंहौं भयो कक्षुक परथौ भरुआइ ।

सीपहरा के मिस हियौ निसि-दिन देखत जाय ॥ २७ ॥

अन्वय—मावकु उभरौंहौं, भयो, कक्षुक मस्थाइ परथौ; सीपहरा के मिस हियौ हेरत निसि-दिन जाय ।

मावकु (भाव+एकु)=कुछ-कुछ । उभरौंहौं=विकसित, उभरे हुए । भरु=भार, बोझ । सीपहरा=सीप से निकले मोतियों की माला । मिस=बहाना । हियौ=हृदय, छाती ।

(उसकी छाती) कुछ-कुछ उभरी-सी हो गई है (क्योंकि उसपर अब) कुछ बोझ भी आ पड़ा है । (इसलिए) मोती की माला के बहाने अपनी छाती देखते रहने में ही (उसके) दिन-रात बीतते हैं ।

इक भीजैं चहलैं परैं बूँड़ैं वहैं हजार ।

किते न औगुन जग करै नै वै चढ़ती बार ॥ २८ ॥

अन्वय—इक भीजैं, चहलैं परैं, बूँड़ैं हजार वहैं, नै वै चढ़ती बार जग किते औगुन न करै ।

भीजैं=शराबोर हुए । चहलैं परैं=दलदल में फँसे । बूँड़ैं=झब गये ।
नै=नदी । वै=वय, अवस्था । औगुन=उत्पात, अनर्थ ।

कोई भींगता है, कोई दलदल में फँसता है, और हजारों झबते वहे जाते हैं । नदी और अवस्था (जवानी) चढ़ते (उमड़ते) समय संसार के कितने अवगुण नहीं करती हैं ।

नोट—उठती जवानी में कोई प्रेम-रंग में शराबोर होता है, कोई वासनारूपी दलदल में फँसता है, कोई विलासिता में झब जाता है, कितने उमंगतरंग में वह जाते हैं । क्या-क्या उपद्रव नहीं होते । नदी में बाढ़ आने पर तरह-तरह के अनर्थ होते ही हैं ।

अपने अँग के जानि के जोवन नृपति प्रवीन ।

स्तन मन नैन नितंब कौ बड़ौ इजाफा कीन ॥ २९ ॥

अन्वय—अपने अँग के जानि कै, जोवन प्रवीन नृपति, स्तन मन नैन नितंब कौ बड़ौ इजाफा कीन ।

अपने अँग के=अपना शरीर, सहायक । स्तन=छाती । नितम्ब=चूतड़ । इजाफा=तरक्की, बढ़ती ।

अपना शरीरी (सहायक) समझकर यौवनरूपी चतुर राजा ने (नायिका के) स्तन, मन, नयन और नितम्ब को बड़ी तरक्की दी है ।

नोट—जवानी आने पर उपर्युक्त अंगों का स्वाभाविक विकास हो जाता है ।

देह दुलहिया की बड़ै ज्यौं ज्यौं जोवन-जोति ।

त्यौं त्यौं लखिं सौत्यैं सबै बदन मलिन दुति होति ॥ ३० ॥

अन्वय—दुलहिया की देह ज्यौं ज्यौं जोवन-जाति बड़ै, त्यौं त्यौं लखि सबै सौन्यैं-बदन-दुति मलिन होति ।

दुलहिया = दुलहिन । जोवन = जवानी । बदन = मुख ।

दुलहिन की देह में ज्यों-ज्यों जवानी की ज्योति बढ़ती है त्यों-त्यों (उसे) देखकर सभी सौतिनों के मुख की व्युति मलिन होती जाती है ।

नोट — सौतिनों का मुख मलिन इसलिए होता जाता है कि अब नायक उसीपर मुग्ध रहेगा, हमें पूछेगा भी नहीं ।

नव नागरि तन मुलुक लहि जोवन आमिर जोर ।

घटि बढ़ि तैं बढ़ि घटि रकम कर्णी और की और ॥ ३१ ॥

अन्वय — नागरि-तन नव-मुलुक लहि जोवन जोर आमिर, बढ़ि तैं घटि घटि बढ़ि रकम और की और कर्णी ।

आमिर = हाकिम, शासक । जोर = जवरदस्त । रकम = जमाबन्दी ।

नायकी (नायिका) के शारीरस्थी नवीन देश को पाकर यौवन रूपी जवरदस्त हाकिम ने (कहीं) बढ़ती को घटाकर और (कहीं) घटी को बढ़ाकर जमाबन्दी और की और ही कर दी—कुछ-का-कुछ बना दिया ।

नोट — भावार्थ यह है कि किसी अंग को घटा दिया—जैसे, कटि आदि—और किसी अंग को बढ़ा दिया—जैसे, कुच आदि । जब कोई राजा नया देश प्राप्त करता है, तब वह उलट-फेर करता ही है ।

लहलहाति तन-तरुनई लचि लगि-लौं लफि जाइ ।

लगे लाँक लोइन भरो लोइनु लेति लगाइ ॥ ३२ ॥

अन्वय — तन-तरुनई लहलहाति, लगि-लौं लचि लफि जाइ, लाँक लोइन मरी लगे लोइनु लगाइ लेति ॥ ३२ ॥

लचि = लचककर । लगि = लग्नी, बाँस की पतली शाखा । लौं = समान । लफि जाय = झुक जाती है । लाँक (लंक) = कमर । लोइन = लावण्य, सुन्दरता । लोइनु = लोचन, आँख ।

शरीर में जवानी उमड़ रही है (जिसके बोझ से वह) नायिका बाँस की पतली छढ़ी-सी लचककर झुक जाती है । उसकी कमर लावण्य से मरी हुई ढीखती है और (देखनेवालों की) आँखों को (बरबस) अपनी ओर खोंच रहती है ।

सहज सचिकन स्यामरुचि सुचि सुगंध सुकुमार ।
गनतु न मनु पथु अपथु लखि विथुरे सुथरे बार ॥ ३३ ॥

अन्वय—सहज सचिकन, स्यामरुचि, सुचि, सुगंध, सुकुमार बिथुरे सुथरे बार लखि मनु पथु अपथु न गनतु ॥ ३३ ॥

सहज = स्वाभाविक । स्यामरुचि = काले । सुचि = पवित्र । बिथुरे = बिखरे हुए । गनतु = समझता या विचारता है । अपथु = कुपंथ । सुथरे = स्वच्छ, सुन्दर ।

स्वमावतः चिकने, काले, पवित्र गंधवाले और कोमल—ऐसे बिखरे हुए सुन्दर बालों को देखकर मन सुमार्ग और कुमार्ग कुछ भी नहीं विचारता ।

वेईं कर व्यौरनि वहै व्यौरो कौन विचार ।

जिनहीं उरझ्यौ मो हियौ तिनहीं सुरझे बार ॥ ३४ ॥

अन्वय—वेईं कर, वहै व्यौरनि, विचार कौन व्यौरा ? जिनहीं मो हियौ उरझ्यौ तिनहीं बार सुरझे ।

वेईं = वे ही । व्यौरनि = सुलझाने का ढंग । व्यौरो = व्यौरा, भेद । उरझ्यौ = उलझा । बार = बाल, केश । सुरझे = सुलझा रहे हैं ।

वे ही हाथ हैं, बाल सुलझाने का ढंग भी वही हैं । (हे मन !) विचार तो सही कि भेद (रहस्य) क्या है ? (मालूम होता है) जिन (नायक) से मेरा हृदय उलझा हुआ है, वे ही बाल भी सुलझा रहे हैं ।

नोट—नायक प्रेमाभिक्ष्य के कारण छी (नाइन) का वेप बनाकर नायिका के बाल सुलझा रहा है । इसी बात पर नायिका चिंता कर रही है कि हो-न-हो, वे ही इस छी के रूप में हैं ।

कर समेटि कच मुज उलटि खएँ सीस-पटु डारि ।

काकौ मनु बाँधै न यह जूरा बाँधनिहारि ॥ ३५ ॥

अन्वय—कच कर समेटि, मुज उलटि, सीस-पट खएँ डारि, यह जूरा बाँधनिहारि काकौ मनु न बाँधै ।

कच = केश । समेटि = गुच्छे को तरह सुलझाकर । खएँ = पखौरा ।

सीसपट=सिर का आँचल । काको=किसका । जूरा=जूङा, केश-ग्रंथि, वेणी का कुण्डलाकार बन्धन । बाँधनिहारि=बाँधनेवाली ।

बालों को हाथों से समेट, भुजाओं को उलटे और सिर के आँचल को अपने पस्तौरों पर ढाले हुई यह जूङा बाँधनेवाली भला किसका मन नहीं बाँध लेती ?

छुटे छुटावत जगत तैं सटकारे सुकुमार ।

मन बाँधत बेनी बँधे नील छवीले बार ॥ ३६ ॥

अन्वय—सटकारे सुकुमार छुटे जगत तैं छुटावत, नील छवीके बार बेनी बँधे मन बाँधत ।

सटकारे=छरहरे, लम्बे । छुटावत=छुड़ाते हैं ।

जम्बे और कोमल (बाल) खुले रहने पर संसार से छुड़ाते हैं—सांसारिक कामों से विमुख बनाते हैं—और ये ही काले सुन्दर बाल वेणी के रूप में बँध जाने पर मन को बाँधते हैं ।

नोट—लटों में कभी दिल को लटका दिया ।

कभी साथ बालों के झटका दिया ॥—मीरहसन

कुटिल अलक छुटि परत मुख बढ़िगौ इतौ उदोत ।

बंक बकारी देत ज्यौं दामु रूपैया होत ॥ ३७ ॥

अन्वय—मुख कुटिल अलक छुटि परत उदोत इतौ बढ़िगौ, ज्यौं बंक बकारी देत दामु रूपैया होत ।

कुटिल=टेढ़ी । अलक=केश-गुच्छ, लट । उदोत=कान्ति, चमक । बंक=टेढ़ी । दाम=दमड़ी । छुटि परत=बिखरकर झूलने लगता है । बकारी=टेढ़ी लकीर जो किसी अंक के दाईं ओर उसके रूपया सूचित करने के लिए खींच दी जाती है ।

मुख पर टेढ़ी लट के छुट पड़ने से (नायिका के मुख की) कान्ति वैसे ही बढ़ गई है, जैसे टेढ़ी लकीर (बिकारी) देने से दाम का मोल बढ़कर रूपया हो जाता है ।

नोट—दाम)१ यों लिखते हैं और रूपया १) यों । अभिप्राय यह है कि वही बाल स्वाभाविक ढंग से पीछे रहने पर उतना आकर्षित नहीं होता

जितना उलटकर मुख पर पड़ने से होता है। जैसे, विकारी अंक के पीछे रहने पर दाम का सूचक है और आगे रहने पर रूपये का।

ताहि देखि मनु तीरथनि विकटनि जाइ बलाइ ।

जा मृगनैनी के सदा वेनी परसतु पाइ ॥ ३८ ॥

अन्वय— जा मृगनैनी के पाइ सदा वेनी परसतु, ताहि देखि मनु विकटनि तीरथनि बलाइ जाइ ।

परसत = स्पर्श करती है। वेनी = चोटी, केश-पाश (पक्षान्तर-तीर्थराज त्रिवेणी)। बलाइ = बलैया, नौजी। विकटनि = विकट, दुर्गम ।

जिस मृगनैनी के पाँवों को सदा वेणी (त्रिवेणी) स्पर्श करती है—जिसकी लम्बी चोटी सदा पाँवों तक झूलती रहती है—उसे देखकर मन विकट तीर्थों (का अटन करने) को बलैया जाय !

नीकौ लसतु लिलार पर टीकौ जरितु जराइ ।

छविहि बढ़ावतु रवि मनो समि-मंडल मैं आइ ॥ ३९ ॥

अन्वय— लिलार पर जराइ जरित टीकौ नीहैं लसतु, मनो समि-मंडल मैं आइ रवि छविहि बढ़ावत ।

जरितु = जड़ा हुआ । जड़ाइ = जड़ाव । टीकौ = माँगटीका, शिरोभूषण ।

लिलार पर जड़ाओ टीका मूँब शोभना है मानो चन्द्रमंडल मैं आकर मूर्य (चन्द्रमा की) शोभा बढ़ा रहा हो ।

नोट— नायिका का लिलार चंद्र-मंडल है और जड़ाओ टीका सूर्य । चंद्र-मंडल मैं सूर्य के आते ही चंद्रमा की शोभा नष्ट हो जाती है । किन्तु यहाँ तो रक्त-खचित टीके से सुखचंद की छया कुछ और ही हो गई है । कैसी वारीकीनी है !

मर्वे मुहापूर्वे लगें वसें मुहापैं ठाम ।

गोरें मुँह बेंदी लसै अरुन पात सित स्याम ॥ ४० ॥

अन्वय— मुहापैं ठाम वसैं सर्वे मुहापूर्वे लगें, गोरें मुँह अरुन, पात, सित, स्याम बेंदी जसै ।

वेंदी=ललाट पर बियाँ गोल बिन्दु रचती हैं। सित=उजला। ठाम=स्थान। सोहाये=सुन्दर, सुहावने।

सुन्दर स्थान पर विराजने से (अच्छे-तुरे) सभी सुहावने ही जगते हैं। (नायिका के) गोरे मुख पर लाल, पीली, उजली और नीली (सभी रंगों की) बेंदी अच्छी ही लगती है।

कहत सबै बेंदी दियै आँकु दसगुनौ होतु।

तिय लिलार बेंदी दियै अगिनितु बढ़तु उदोतु ॥ ४१ ॥

अन्वय—सबै कहत, बेंदी दियै आँकु दसगुनौ होतु, तिय-लिलार बेंदी दियै उदोतु अगिनितु बढ़तु।

आँकु=अंक। लिलार=ललाट। अगिनितु=वेहद। उदोतु=कान्ति।

सभी कहते हैं कि बिन्दी देने से अंक का मूल्य दसगुना बढ़ जाता है। (किन्तु) स्थियों के ललाट पर बेंदी देने से तो (उसकी) कान्ति वेहद बढ़ जाती है।

भाल लाल बेंदी छए छुटे बार छवि देत।

गद्यौ राहु अति आहु करि मनु ससि सूर समेत ॥ ४२ ॥

अन्वय—लाल बेंदी छए भाल, छुटे बार छवि देत, मनु ससि सूर समेत अति आहु करि राहु गद्यौ।

भाल=ललाट। छुटे=विखरे। अति आहु करि=बहुत साहस या ललकार करके। ससि=चन्द्रमा। सूर=सूर्य।

लाल बेंदी वाले ललाट पर विखरे बाल भी शोभा देते हैं। (ऐसा मालूम होता है) मानो चन्द्रमा ने, सूर्य के साथ, अत्यन्त साहस या ललकार करके राहु को पकड़ा है।

नोट—यहाँ ललाट चन्द्रमा, लाल बेंदी प्रातःकाल का सूर्य और केवा राहु है।

पाइल पाइ लगी रहै लगौ अमोलिक लाल।

भौंडर हूँ की भासि है बेंदी भामिनि-भाल ॥ ४३ ॥

अन्वय—अमोलिक लाल लगौ पाइल पाइ लगी रहै, भौंडर हूँ की बेंदी
भामिनि-माल भासि है ।

पाइल = पाजेव, नूपुर, पदमंजीर । पाइ = पैर । अमोलिक = अनमोल,
अमूल्य । लाल = रत्न । भौंडर = अवरक । भासि है = शोभा देगी । भामिनो =
स्त्री, नायिका ।

अनमोल जवाहरात से जड़े होने पर भी पाजेव पैरों में ही पड़ी रहती है ।
किन्तु (तुच्छ) अवरक की होने पर भी बेंदी नायिका के ललाट पर ही
शोभा देगी ।

भाल लाल बेंदी ललन आखत रहे विराजि ।

इंदुकला कुज मैं वसी मनौ राहु-भय भाजि ॥ ४४ ॥

अन्वय—जजन, भाल लाल बेंदी आखत विराजि रहे, मनौ राहु-भय
भाजि इंदु-कला कुज मैं वसी ।

आखत = अक्षत, चावल । इंदुकला = चन्द्रमा की कला । कुज = मंगल ।
भाजि = भागकर ।

अहो ललन ! उस नायिका के जलाट की लाल बेंदी में अक्षत विराज
रही है मानो राहु के भय से भागकर चन्द्रमा की कला मंगल में आ बसी हो ।

नोट—यहाँ उजली अक्षत चन्द्रमा की कला है, लाल बेंदी मंगल है,
(केश राहु है) । मंगल का रंग कवियों ने लाल माना है । बेंदी में अक्षत लगाने
की प्रथा मारवाड़ में पाई जाती है । विहारीलाल जयपुर में रहते भी तो थे ।

मिलि चन्दन बेंदी रही गौरै मुँह न लखाइ ।

ज्यौं ज्यौं मद-लाली चढ़ै त्यौं त्यौं उघरति जाइ ॥ ४५ ॥

अन्वय—चन्दन बेंदी गौर मुँह मिलि रही, लखाइ न; ज्यौं-ज्यौं मद-लाली
चढ़ै त्यौं-त्यौं उघरति जाइ ।

मद-लाली = मस्ती को लाली, जवानी को उमंग या एंठ की लाली ।

चन्दन की उजली बेंदी मुख की गोराई में (एकदम) मिल गई है, वह गोरे
मुख पर दीख नहीं पड़ती—चन्दन की उजलता गोराई में लीन हो गई है । किन्तु

ज्यों-ज्यों (उस नायिका के मुख पर) मस्ती की लाली चढ़ती जाती है, (वह बेंदी) साफ खुलती चली जाती है ।

तिय-मुख लखि हीरा जरी बेंदी बढ़ै विनोद ।

सुत-सनेह मानौ लियौ विधु पूरन बुधु गोद ॥ ४६ ॥

अन्वय—तिय-मुख हीरा जरी बेंदी लखि विनोद बढ़ै, मानौ सुत-सनेह पूरन विधु बुधु गोद लियौ ।

विधु पूरन=पूर्ण चन्द्रमा । विनोद=प्रसन्नता, आनन्द । बुध=चंद्रमा के पुत्र ।

स्त्री (नायिका) के मुख पर हीरा जड़ी हुई बेंदी देखकर आनन्द की वृद्धि होती है मानो पुत्र के स्नेह से पूर्ण चन्द्रमा ने बुध को गोद लिया हो ।

नोट—यहाँ नायिका का मुख पूर्ण चन्द्र है और हीरा-जड़ी बेंदी बुध ।

गढ़-रचना बहनी अलक चितवनि भौंह कमान ।

आघु बँकाई ही बढ़े तरुनि तुरंगम तान ॥ ४७ ॥

अन्वय—गढ़-रचना, बहनी, अलक, चितवनि, भौंह, कमान, तरुनि, तुरंगम, तान—आघु बँकाई ही बढ़े ।

बहनी=पलक के बाल । अलक=मुखड़े पर लटके हुए लच्छेदार केश, बंकिम लट । कमान=धनुष । आघु=(संस्कृत आर्ह) मूल्य, आदर । बँकाई=टेढ़ापन । तुरंगम=घोड़ा ।

गढ़ की रचना, पलक के बाल, लट, चितवन, भौंह, धनुष, नवयुवती, घोड़ा और तान—(इन सब) का मूल्य (आदर) टेढ़ाई से ही बढ़ता है ।

नासा मोरि नचाइ जे करी कका की सौंह ।

काँटे सी कसकै ति हिय गड़ी कँटीली भौंह ॥ ४८ ॥

अन्वय—नासा मोरि, जे नचाइ कका की सौंह करी । ति कँटीली भौंह, हिय गड़ी काँटे सी कसकै ।

नासा=नाक । मोरि=मोड़कर, सिकोड़कर । जे=जो (भौंह) । सौंह=शपथ, कसम । कसकै=सालती है, टीसती है ।

नाक सिकोड़कर जिस (भौंह) को नचाकर (उस नायिका ने) काका की

कसम खाई । (उस समय की) उसकी वह कटीजी मौंह (अभी तक) हृदय में
गड़ी हुई काँटे-सी खटक रही है—चुम रही है ।

खौरि-पनिच भृकुटी-धनुषु वधिकु-समरु तजि कानि ।

हनतु तहन-मृग तिलक-सर सुरक-भाल भरि तानि ॥ ४९ ॥

अन्वय—खौरि-पनिच, भृकुटी-धनुषु, वधिकु-समरु कानि तजि, सुरक-भाल,
तिलक-सर भरि तानि तहन-मृग हनत ।

खौरि=ललाट पर चंदन का आड़ा टीका, ललाट पर चंदन लेपकर उँग-
लियों से खरोंचने पर खौर-तिलक बनता है । पनिच=धनुष की ढोरी,
प्रत्यंचा । समर=त्पर=कामदेव । कानि=नर्यादा । तिलक=ललाट का खड़ा
टीका । सुरक=तिलक का वह भाग जो नाक पर लगा होता है । भाल=तीर
की गाँसी । भरि तानि=खूब तानकर ।

खौर-रुपी प्रत्यंचा को भैंह-रुपी धनुष पर चढ़ाकर, व्याधा-रूपो कामदेव,
(अपर्ना) मर्यादा छोड़, सुरक-रुपी गाँसी वाले तिलक-रुपी शर को, खूब
खींचकर, नवयुवक-रुपी मृगों को मारता है ।

रम मिंगार मंजनु किए कंजनु भंजनु दैन ।

अंजनु-रंजनु हूँ रिना खंजनु गंजनु नैन ॥ ५० ॥

अन्वय—मिंगार-रम मंजनु किए नैन कंजनु भंजनु दैन, रिना अंजनु-रंजनु
हूँ खंजनु गंजनु ।

शृंगार-रम में गोते लगाये हुए नेत्र कमलों के अभिमान तोड़नेवाले हैं और
रिना अंजन लगाये हुए भी वे खंजनों का घमंड चूर करते हैं—कमलों को
परास्त और खंजरीयों को अपमानित करते हैं ।

खेलन मिखण अलि भलैं चतुर अहरी मार ।

कानन-चारी नैन-मृग नागर नरनु मिकार ॥ ५१ ॥

अन्वय—अलि, चतुर अहरी-मार कानन-चारी नैन-मृग नागर नरनु मिकार
खेलन भलैं सिखण ।

अलि=सन्धी । अहरी=शिकारी । मार=कामदेव । कानन-चारी =कानों तक
आने-जानेवाले, वन में विहारनेवाले । नागर=चतुर, शहरी । नरनु=पुरुषों का ।

ऐ सखी ! चतुर शिकारी कामदेव ने कानों तक आने-जानेवाले (वन में विहार करनेवाले) तुम्हारे नेत्र-रूपी हिरनों को चतुर नागरिक पुरुषों का शिकार करना भली भाँति सिखलाया है ।

नोट—हिरनों से आदमियों का शिकार कराना—वह भी ठेठ देहाती गँवार आदमियों का नहीं, छैल-चिकनिये चतुर नागरिकों का !—कवि की अनूठी रसिकता प्रदर्शित करता है ।

अर तैं टरत न वर परे दई मरक मनु मैन ।

होड़ा-होड़ी बढ़ि चले चितु चतुराई नैन ॥ ५२ ॥

अन्वय—चितु, चतुराई, नैन, होड़ा-होड़ी बढ़ि चले न अर तैं टरत, वर परे मनु मैन मरक दई ।

अर तैं =हठ से । टरत=टरते हैं, डिगते हैं । वर परे=बल पकड़ता है । दई=दिया हो । मरक=बढ़ावा । मैन=कामदेव । होड़ा-होड़ी=बाजी लगाकर, शर्त बदकर, प्रतिद्वन्द्विता, प्रतिस्पर्धा ।

(नायिका के) चित्त की चतुराई और उसकी आँखें बाजी लगाकर बढ़ चली हैं—जिस प्रकार आँखें बड़ी-बड़ी होती जा रही हैं उसी प्रकार उसकी चतुराई भी बढ़ी चली जाती है । वे (चतुराई और आँखें) अपने हठ से नहीं डिगतीं, वरन् (वह हठ) और भी बल पकड़ता जाता है, मानो कामदेव ने उन्हें (इस प्रतिद्वन्द्विता के लिए) बढ़ावा दे दिया हो, ललकार दिया हो ।

सायक सम मायक नयन रँगे त्रिविध रँग गात ।

झखौ विलखि दुरि जात जल लखि जलजात लजात ॥ ५३ ॥

अन्वय—सायक सम मायक-नयन, त्रिविध रँग गात रँगे, लखि झखौ विलखि जल दुरि जात, जलजात लजात ।

सायक=सायंकाल । मायक=माया जानेवाला, जादूगर । त्रिविध=तीन प्रकार । गात=शरीर । झखौ=मछली भी । विलखि=संकुचित या दुखी होकर । जलजात=कमल ।

संध्याकाळ के समान मायावी आँखें अपनी देहों को तीन रंगों में रँगे हुई

हैं। उन्हें देखकर मछली भी संकुचित हो जल में छिप जाती है और कमज़ लजित हो जाते हैं।

नोट—नेत्रों में लाल, काले और उज्जले रंग होते हैं। देखिये—

अभिय हलाहल मद भरे, स्वेत स्याम रतनार।

जियत मरत झुकि-झुकि गिरत, जिहि चितवत इक बार ॥

जोग-जुगुति सिखए सबै मनो महामुनि मैनु ।

चाहतु पिय-अद्वैतता काननु सेवतु नैनु ॥ ५४ ॥

अन्वय—मनो महामुनि मैनु सबै जोग-जुगुति सिखए नैनु पिय-अद्वैतता चाहतु, काननु सेवतु ।

जोग=मिलन, योग। मनो=मानों। जुगुतु=युक्ति, उपाय। मैनु=कामदेव। पिय=प्रीतम, ईश्वर। अद्वैतता=मिलन, अभेद-भाव, अभिन्नता। काननु=कानों, जंगल। सिखये=सिखा दिया।

मानो महातपस्वी कामदेव ने योग (मिलन) की सारी युक्तियाँ बता दी हैं। इसीसे (उस नायिका के नेत्र) प्रीतम (ईश्वर) से सदा मिले रहने के लिए कानों तक बढ़ आये हैं, (वियोग-रहित अनन्त मिलने के लिए) वन-सेवन कर रहे हैं।

बर जीते मर मैन के ऐसे देखे मैं न।

हरिनी के नैनानु तैं हरि नीके ए नैन ॥ ५५ ॥

अन्वय—मैन के सर-बर जीते ऐसे मैं न देखे, हरिनी के नैनानु तैं, हरि, ए नैन नीके।

बर=बलपूर्वक। मैन=कामदेव। मैं न=मैं नहीं।

इन नेत्रों ने कामदेव के (अचूर) बायों को भी बलपूर्वक जीत लिया है। मैने तो ऐसे नेत्र (कमी) देखे ही नहीं। हे कृष्ण! हरिणियों के नैन से मी ये नेत्र सुन्दर हैं।

नोट—खंजन कंज न सरि लहै बलि अलि को न बनान।

एनी की अंतियान ते नीकी अंखियान।—शृंगार-सतसई

संगति दोपु लगै सबनु कहे ति साँचे बैन ।
कुटिल वंक भ्रुव संग भए कुटिल वंक गति नैन ॥ ५६ ॥

अन्वय—संगति-दोपु सबनु लगै ति बैन साँचे कहे, कुटिल वंक भ्रुव-संग ते नैन कुटिल वंक गति भये ।

भ्रुव=भँवें, भाँहें । कुटिल गति=टेढ़ी चालवाली । ति=सचमुच ।

संगति का दोप सबको लगता है, सचमुच यह बात सच्ची कही गई है । तिरछी टेढ़ी भँवों की संगति से आँखें भी टेढ़ी और तिरछी चालवाली हो गई ।

दगनु लगत वेधत हियहिं विकल करत अँग आन ।

ए तेरे सब तैं विषम ईछन तीछन बान ॥ ५७ ॥

अन्वय—लगत दगनु, वेधत हियहिं, विकल करत आन अँग ए तेरे ईछन-तीछन बान सब तैं विषम ।

आन=दूसरा । विषम=भयंकर, कठोर । ईछन=ईक्षण=नेत्र । तीछन=तीक्षण=तेज, चोखे, कँटीले ।

लगते हैं आँखों में, वेधत हैं हृदय को और व्याकुल करते हैं अन्य अंगों को—सारे शरीर को ! ये तुम्हारे नेत्र-रूपी तीखे-चोखे बाण सबसे भयंकर हैं ।

झूठे जानि न संग्रहे मन मुँह निकसे बैन ।

याही तैं मानहु किये बातनु कौं विधि सैन ॥ ५८ ॥

अन्वय—मुँह निकसे बैन झूठे जानि मन संग्रहे न, मानहु याही तैं बातनु कौं विधि सैन किये ।

सैन=इशारा । बैन=वचन । संग्रहे=संचय करता है । याही तैं=इसी लिए । विधि=ब्रह्मा ।

मुँह से निकले हुए वचनों को झूठा समझकर मन संग्रह नहीं करता—प्रमाण नहीं मानता । मानो इसी कारण (हृदय की) बातें करने के लिए ब्रह्मा ने नेत्रों के इशारे बनाये ।

फिर फिर दौरत देखियत निचले नैकु रहैं न ।

ए कजरारे कौन पर करत कजाकी नैन ॥ ५९ ॥

अन्वय—फिरि फिरि दौरत देखियत नैंकु निचले न रहें, ए कजरारे नैन कैन पर कजाकी करत ।

निचले=निश्चल, स्थिर । नैकु=जरा भी । कजरारे=काजल लगाये हुए । कजाकी=(कजा=मृत्यु) हत्यारापन, लुटेरापन, लृटमार ।

बार-बार दौड़ते हुए दीख पड़ते हैं, जरा भी स्थिर नहीं रहते । (तुम्हारे) ये काजल लगे हुए नेत्र किसपर डाका डाल रहे हैं—किसकी हत्या करने के लिए इधर-उधर दौड़ लगा रहे हैं ?

खरी भीरहू भेदिकै कितहू है उत जाइ ।

फिरै ढीठि जुरि ढीठि सों सबकी ढीठि बचाइ ॥ ६० ॥

अन्वय—खरी भारहू भेदिकै कितहू है उत जाइ, ढीठि सबकी ढीठि बचाइ ढीठि सों जुरि फिरै ।

खरी=भारी । भेदिकै=पार करके । कितहू है=किसी ओर से होकर । उत=वहाँ । ढीठि=नजर । जुरि=मिलकर । ढीठि बचाइ=आँखें बचाकर ।

भारी भीड़ को भी मेड़ कर, और किसी ओर से भी वहाँ (नायक के पास) पहुँचकर, नायिका की नजर, सबकी आँखें बचा, उसकी (नायक की) नजर से मिल, फिर (साफ कर्नी काटकर) लौट आती है ।

सबही त्यौं समुदाति छिनु चलति सबनु दै पीठि ।

वाही त्यौं ठहराति यह कविलनवी लौं दीठि ॥ ६१ ॥

अन्वय—कविलनवी-लौं यह दीठि सबही तन छिन समुदाति, सबनु पीठि दै चलति, वाही तन ठहराति ।

समुदाति=सामना करना, टकगना । कविलनवी=कम्पास के समान एक प्रकार का यंत्र, जिसकी सूई सदा पश्चिम की ओर गहती है, चोर पकड़ने की वह कटोरी जो मंत्र पढ़कर चलाई जाती है । चलति सबनि दै पीठि=सबका तिरस्कार करती चली जाती है ।

किवलनुमा की सूई के समान उसकी यह नजर सभी के शरीर से क्षणमर के लिए टकराती है, फिर सभी से विसुच होकर चज पड़ती है, और उसके—अपने प्रेमिक के—रूप पर आकर ठहरती है ।

कहत नटत रीझत खिलत मिलत खिलत लजियात ।

भरे भौन मैं करत हैं नैननु ही सब बात ॥ ६२ ॥

अन्वय—कहत, नटत, रीझत, खिलत, मिलत, खिलत, लजियात, भरे भौन मैं नैननु ही सब बात करत हैं ।

कहत = कहते हैं, इच्छा प्रकट करते हैं । नटत = नाहीं-नाहीं करते हैं । रीझत = प्रसन्न होते हैं । खिलत = खीजते हैं, रंजीदा होते हैं । खिलत = पुलकित होते हैं । लजियात = लजाते हैं ।

कहते हैं, नाहीं करते हैं, रीझते हैं, खीजते हैं, मिलते हैं, खिलते हैं और लजाते हैं । (लोगों से) भरे घर में (नायक-नायिका) दोनों ही, आँखों ही द्वारा बातचीत कर क्लेते हैं ।

सब अँग करि राखी सुघर नाइक नेह सिखाइ ।

रस-जुत लेत अनत गति पुतरी-पातुर राइ ॥ ६३ ॥

अन्वय—नेह-नाइक सिखाइ सब अँग करि सुघर राखी पुतरी-पातुर राह रस-जुत अनंत गति क्लेत ।

अँग = प्रकार । सुघर = सुचतुर, सुदक्ष । नाइक = नाचना-गाना सिखाने-वाला उस्ताद । पातुर = वेश्या । ‘राय’ वेश्याओं की उपाधि — जैसे प्रवीणराय वेश्या, जो केशवदास की साहित्यिक चेली थी । रस-जुत = रसीले । लेत अनंत गति = अनेक प्रकार के पैंतरे और काँठ्ठाँट करती है, तरह-तरह की भावभंगी ले धिरकती है ।

प्रेम-रूपी उस्ताद ने सिखाकर उसे सब प्रकार से सुदक्ष बना रखा है । (फलतः वह आँखों की) पुतली-रूपी वेश्या रसों से भरे हुए नाना प्रकार के हाव-माव दिखा रही है ।

कंज नयनि मंजनु किये बैठी व्यौरति बार ।

कच अँगुरी विच दीठि दै चितवति नन्दकुमार ॥ ६४ ॥

अन्वय—कंजनयनि मंजनु किये बैठी बार व्यौरति, कच अँगुरी विच दीठि दै नन्दकुमार चितवति ।

व्यौरति = सुलझाती है । कच = बाल, केश । दीठि = दृष्टि, नजर ।

कमलनयनी (नायिका) स्नान कर बैठी हुई अपने बालों को सुलझा रही है और बालों तथा अँगुलियों के बीच से कृष्णजी को देखती भी है । (लोग जानते हैं कि वह बाल सँवार रही है, इधर बालों और उँगलियों के बीच इशारे चल रहे हैं !)

डीठि-बरत बाँधी अटनु चढ़ि धावत न डरात ।

इतहिं-उतहिं चित दुहुन के नट-लौं आवत-जात ॥ ६५ ॥

अन्वय—अटनु बाँधी डीठि-बरत चढ़ि धावत न डरात, दुहुन के चित नट लौं इतहिं उतहिं आवत जात ।

डीठि=नजर । बरत=रसी । अटनि=कोठे । लौं=समान ।

कोठों पर बँधी दण्ठि-रसी रसी पर चढ़कर दौड़ते हैं, (जरा भी) डरते नहीं । दोनों के चित नट के समान इधर-से-उधर (बैधड़क) आते-जाते हैं ।

नोट—प्रमिक और प्रमिका अपनी अपनी अटारी पर खड़े आँखें लड़ा रहे हैं । कवि ने उसी समय की उनके चित की दशा का वर्णन किया है ।

जुरे दुहुन के टग झर्माकि रुके न भीनैं चीर ।

हलुकी फौज हरौल ज्यौं परै गोल पर भीर ॥ ६६ ॥

अन्वय—दुहुन के टग झर्माकि जुरे, भीनैं चीर न रुके, ज्यौं हरौल हलुकी फौज, गोल पर भीर परै ।

झीने=महीन, चारीक । चीर=साढ़ी । हरौल=हरावल, सेना का अग्रभाग । गोल=सेना का मुख्य भाग । झर्माकि=उछुलकर या नाचकर । भीर=चोट, हमला ।

दोनों की आँखें लज्जक के साथ बढ़कर जुट गईं, चारीक साढ़ी (के वृंघट) में वे न रुकीं, जिस प्रकार सेना के अग्रभाग में हलुकी फौज रहने से मुख्य भाग पर ही भीड़ आ पड़ती है ।

लीनैं हूँ साहम सहसु कीनैं जतनु हजार ।

लोइन लोइन-सिंधु तन पैरि न पावत पार ॥ ६७ ॥

अन्वय—हजार जतनु कीनैं सहसु साहम लीनैं हूँ, लोइन तन-लोइन-सिंधु पैरि पार न पावत ।

लोइन = आँख । लोइन = लावण्य, सुन्दरता । पैरि = तैरकर ।

हजार यत्र करने और हजार साहस रखने पर भी ये आँखें (तुम्हारे) शरीर-रूपी लावण्य-सागर को तैरकर पार नहीं पा सकतीं—तुम्हारा शरीर इतने अगाध-लावण्य से परिपूर्ण है !

पहुँचति डटि रन-सुभट लौं रोकि सकैं सब नाहिं ।

लाखनुहूँ की भीर मैं आँखि उहीं चलि जाहिं ॥ ६८ ॥

अन्वय — रन-सुभट लौं डटि पहुँचति, सब नाहिं रोकि सकैं, लाखनुहूँ की भीर मैं आँखि उहीं चलि जाहिं ।

रन-सुभट = लड़ने में वीर ।

लड़ाई के वीर योद्धा के समान डटकर पहुँच जाती है—लोग उन्हें नहीं रोक सकते । लाखों की भीड़ में भी (उसकी) आँखें उस (नायक की) ओर चली ही जाती हैं ।

गड़ी कुदुम की भीर मैं रही वैठि दै पीठि ।

तऊ पलकु परि जाति इत सलज हँसौंही डीठि ॥ ६९ ॥

अन्वय — कुदुम की भीर मैं गड़ी पीठि दै बांध रहा, तऊ पलकु सलज हँसौंही डीठि इत परि जाति ।

पलकु = पल+एकु = एक पल के लिए । इत = यहाँ, इस ओर । हँसौंही = ग्रसन, विनोदिनी ।

कुदुम की भाड़ में गड़ी हुई—चारों ओर से परिवारवालों से विरो हुई—(वह नायिका नायक की ओर) पीठ देकर बैठी है । तो मां एक क्षण के लिए (उसकी) लजीली और विनोदिनी दृष्टि इसकी ओर पड़ ही जाती है ।

भौंह उँचै आँचरु उलटि मौरि मोरि मुँह मोरि ।

नाठि-नीठि भीतर गई दीठि दीठि सों जोरि ॥ ७० ॥

अन्वय — मौंह उँचै, आँचरु उलटि, मौरि मोरि, मुँह मोरि । दीठि सों दीठि जोरि, नीठि-नीठि भीतर गई ।

उँचै = ऊँचा करके । मौरि = मौलि, सिर । मोरि = मुकाकर । नीठि-नीठि = जैसे तैसे, मुश्किल से । नीठि नीठि गई = मुश्किल से धीरे-धीरे गई ।

मैंह ऊँची कर, आँचर उलट, सिर झुका और मुँह मोड़कर (वह नायिका)
नजर-से-नजर मिलाती हुई धीरे-धीरे (घर के) भीतर (चली) गई ।

ऐचति-सी चितवनि चितै भई ओट अलसाइ ।

फि र उभकनि कौं मृगनयनि हगनि लगनिया लाइ ॥ ७१ ॥

अन्वय—ऐचति-सी चितवनि चितै अलसाइ ओट भई, मृगनयनि फिरि
उभकनि कौं लगनिया हगनि लाइ ।

ऐचति-सी = खींचती हुई-सी, चित्तकर्पक, चितचोर । चितवनि = दृष्टि,
नजर । चितै = देखकर । हगनि = आँखों का । लगनिया = लगन, चाट ।
अलसाइ = ज़माइ लेकर, उभाइ दिखाकर अथवा मन्द गति से ।

(चित्त को) खींचती हुई-सी नजरों से देख वह अलसाकर (आँच से)
ओट तो हो गई; किन्तु उस मृगनयनी ने (उस समय से) बार-बार उभक-
उझककर देखने की लगन (मेरी) आँखों में लगा दी—तब से बार-बार मैं
उझक-उझककर उसकी बाट जोह रहा हूँ ।

सटपटाति-सी समिमुखी मुख बूँघट-पटु ढाँकि ।

पावक-झर-सी झमकिकै गई झरोखो झाँकि ॥ ७२ ॥

अन्वय—समिमुखी सटपटाति-सी मुख बूँघट-पटु ढाँकि, पावक-झर-सी
झमकिकै झरोखो झाँकि गई ।

पावक झर = आग की लपट । सटपटाति-सी = डरती हुई-सी । झमकिकै =
नम्रेर की चाल ने, गहनों की झनकार करके, चपलता से ।

डरनी हुई-सी—वह चन्द्रवदनी (अपने) मुख को बूँघट से ढँककर अस्ति
की लपट-मरीखी चंचलता के साथ झरोखे से झाँक गई ।

नोट—भाव यह है कि अपने गुरुजनों के डर से वह मुख पर आँचल
झालकर सटपट गिहकी पर आई और (नायक को) देखकर चली गई ।

लागन कुटिल कटान्छ सर क्यों न होहि बेहाल ।

कढ़त जि हियहि दुसाल करि तऊ रहत नटसाल ॥ ७३ ॥

अन्वय—कुटिल कटान्छ सर लागत क्यों न बेहाल होहि, जो हियो दुसाल
करि कढ़त तऊ नटसाल रहत ।

कुटिल = तिरछे, टेढ़े । कटाक्ष = तीक्ष्ण दृष्टि, बॉकी-तिरछी नजर । कढ़त = निकलना । हियो = हृदय । दुसाल = दो भाग, आरपार । तऊ = तो भी । नटसाल = काँटे का वह दिस्सा जो काँटा निकाल लेने पर भी टूटकर अन्दर ही रह जाता है ।

तिरछे कटाक्ष-रूपी (चोखे) बाण के लगाने से (लोग) क्यों न व्याकुल हों ? यद्यपि (बाण) हृदय को आरपार करके निकल जाता है, तथापि उसकी नुकोली गांसी की कसक (पीड़ा) रह ही जाती है ।

नैन-तुरंगम अलक-छवि-छरी लगी जिहिं आइ ।

तिहिं चढ़ि मन चंचल भयौ मति दीनी विसराइ ॥ ७४ ॥

अन्वय — नैन-तुरंगम, जिहिं अलक-छवि-छरी आइ लगी, तिहिं चढ़ि मन चंचल भयौ मति विसराइ दीनी ।

तुरंगम = चंचल घोड़ा । अलक = लट । छरी = कोड़ा । विसराय दीनी = विस्मृत कर दिया, भुला दिया ।

नेत्र-रूपी घोड़े, जिन्हें लट की शोभा-रूपी छड़ी आकर लगी है—जो नायिका की लट-रूपी चाबुक स्थाकर उत्तेजित हुए हैं—उन (नेत्र-रूपी घोड़ों) पर चढ़कर मेरा मन चंचल हो गया है और उसने मेरी तुल्दि नष्ट कर दी है ।

नीचीयै नीची निपट दीठि कुही लौं दौरि ।

उठि ऊँचै नीचै दियौ मन-कुलंग झपिझोरि ॥ ७५ ॥

अन्वय — दीठि कुही लौं निपट नीचीयै नीची दौरि, ऊँचै उठि मन-कुलंग झपिझोरि नीचे दयौ ।

निपट = एकदम । डीठि = दृष्टि, नजर । कुही = एक पक्षी, जो बाज की जाति का होता है । लौं = समान । कुलंग = कलविक = चटका = गोरैया, बगेरी । उठि ऊँचै = ऊपर उड़कर । नीचे दियौ = मार गिराया ।

(उसकी) नजर ने कुही-पक्षी के समान एकदम नीचे-ही-नीचे दौड़कर और (फिर) ऊँचे चढ़ मेरे मन-रूपी कुलंग को छोपकर और भोरकर नीचे गिरा दिया ।

नोट — कुही पक्षी शिकार को पकड़ने के लिए पहले तो नीचे-ही-नीचे

उड़ता है, किर एकवारगी ऊपर उड़ शिकार पर भीपण रूप से टूट पड़ता और उसे भक्तों नीचे गिरा देता है। लज्जाशीला नायिका की उड़नवाज नजर की भी यही गति है—रसश पाठक जानते हैं !

तिय कित कमनैती पढ़ी विनु जिहि भौंह-कमान ।

चल चित-बेझै चुकति नहिं बंक विलोकनि वान ॥ ७६ ॥

अन्वय—तिय कित कमनैती पढ़ी, विनु जिहि भौंह-कमान, बंक विलोकनि वान, चल चित-बेझै नहिं चुकति ।

कित=कहाँ । कमनैती=तीर चलाने की कला, वाण-विद्या । जिहि=ज्या =डोरी, प्रत्यंचा । चल=चंचल । बेझै=निशान, लद्य । बंक=टेढ़ा । विलोकनि=चितवन, दृष्टि ।

इस स्थी ने यह वाण-विद्या कहाँ पढ़ो कि विना डोरी के भौंह रूपी धनुष और तिरछी दृष्टि-रूपी वाण से चंचल चित्त-रूपी निशाने को बेधने से नहीं चूकता ?

दून्यौ खरै समीप कौ लेत मानि मन मोदु ।

हात दुहुन के दगनु हीं बतरसु हँसी-विनोदु ॥ ७७ ॥

अन्वय—दून्यौ खरै समीप कौ मन-मोदु मानि लेत, दुहुन के दगन हीं बतरसु हँसी-विनोदु होत ।

(नायक-नायिका दोनों) दूर-दूर खड़े होने पर मी निकट होने का आनन्द मन में मान लेते हैं—यद्यपि दोनों दूर-दूर खड़े हैं तथापि निकट रहकर सम्मापण करने का आनन्द अनुभव कर रहे हैं; क्योंकि दोनों की आँखों (इशारों) से ही रसीली बातचीत, दिल्हगी और चुहल हो रही है ।

द्वृटै न लाज न लालचौ प्यौ लंखि नैहर-गोह ।

सटपटात लोचन खरे भरे सकोच सनेह ॥ ७८ ॥

अन्वय—प्यौ नैहर-गोह लंखि न लाज द्वृटै न लालचौ; सकोच-सनेह मरे लोचन खरे सटपटात ।

प्यौ=प्रियतम। खरे=अत्यन्त। नैहर=मायके, पीहर। सटपटात=विक्षिप्त, बेचैन हो रहे हैं ।

पति को अरने मायके में देखकर न तो (उन्हें भर नजर देखने के लिए)

जाज छुट्टी है और न (देखने का) लालच ही छोड़ते बनता है। यों संकोच और प्रेम से परिपूर्ण उस नायिका के नेत्र अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं।

नोट—इस दोहे में स्वाभाविकता खूब है।

करे चाह-मौं चुटकि के खरै उड़ौहैं मैन ।

लाज नवाएँ तरफरत करत खूँद-सी नैन ॥ ७९ ॥

अन्वय—मैन चाह मौं चुटकि के खरै उड़ौहैं करे, जाज नवाएँ नैन तरफरत खूँद-सी करत ।

चुटकि कै=चावुक मारकर । उड़ौहैं=उड़ाकू, उड़ान भरनेवाला । मैन=कामदेव । खूँद=जमैती, घोड़े का दुमुक चाल ।

कामदेव ने चाह का चावुक मारकर नेत्रों को बड़ा उड़ाकू बना दिया है। किन्तु जाज (लगाम) से रोके जाने के कारण उसके नेत्र (रूपा-घोड़े) तड़फड़ाकर जमैती-सी कर रहे हैं ।

नोट—जब घोड़े को जमैती सिखाई जाती है, तब एक आदमी पीछे चावुक फटकारकर उस उत्तेजित करता रहता है और दूसरे आदमी उसकी लगाम कसकर पकड़े रहता है। यों घोड़ा पीछे की उत्तेजना और आगे की रोक यान से छुटपटाकर जमैती करने लगता है ।

नावक-भर-से लाइके तिलकु तरहनि इत ताँकि ।

पावक-भर-सी भर्माकिं गई भरोखा झाँकि ॥ ८० ॥

अन्वय—नावक-सर-से तिलकु लाइके तरहनि इत ताँकि, पावक भर-सी भर्माकिं झरोखा झाँकि गई ।

तिलकु=टीका । तरहनि=नवयुवती । पावक-झर=आग का लपट । भरोखा=बिड़की । झर्माकिं=चंचल चरणों से । नावक-सर=एक प्रकार का छोटा चुटीला तीर, जो बाँस की नली के अंदर से चलाया जाता है, ताकि सीधे जाकर गहरा घाव करे ।

चुटीके तीर के समान (ललाट पर) तिलक लगाकर उस नवयुवती ने इस ओर देखा और आग की उश्शा-सी चंचकता के साथ बिड़की से झाँक गई ।

नोट—‘नावक के तीर’ विद्यारी के दोहों के विषय में प्रसिद्ध है—

सतसैवा के दोहरे जनु नावक के तीर ।

देवत में छोटे लगैं वेद्यैं सकल सरीर ॥

अनियारे दीरब हृग्नु किनीं न तरनि समान ।

वह चितवनि औरे कदू जिहिं बस होत सुजान ॥ ८१ ॥

अन्वय—किनीं न तरनि अनियारे दीरब हृग्नु समान न, जिहिं बस सुजान होत वह चितवन कदू औरे ।

अनियारे = नुकीली । दीरब = बड़ी । हृग्नु = आँखें । जिहिं = जिजूके । सुजान = रसिक ।

किनीं युवतियों की नुकीली और बड़ी-बड़ी आँखें एक-सी नहीं हैं— बहुत-सी युवतियों की आँखें बड़ी-बड़ी और नुकीली हैं—किन्तु रसिक-जन को चर्दाभूत करनेवाली वह रसीली नजर कुछ और ही होती है !

चमचमात चंचल नयन विच वृंथट-पट झीन ।

मानहृ मुरसरिता-विमल-जल उछरत जुग मीन ॥ ८२ ॥

अन्वय—झीन वृंथट पट विच चंचल नयन चमचमात, मानहृ मुरसरिता विमल जल जुग मीन उछरत ।

वृंथट-पट = वृंथट का कपड़ा । झीन = बारीक, मर्हान । मुरसरिता = गंगा । जुग = दौ । मीन = मछली । उछरत = उछलती है ।

बारीक कपड़े के वृंथट का ओट मे (उमरी) चंचल आँखें चमक रही हैं— खलक रही हैं, मानो गंगारी के स्वच्छ जल में दो मछलियाँ उछल रही हैं ।

फूले फटकत लै फरी पल कटान्छ करवार ।

करत वचावत विय नयन पाइक घाइ हजार ॥ ८३ ॥

अन्वय—विय नयन-पाइक पल-फरी कटान्छ करवार लै फूले फटकत हजार घाइ करत वचावत ।

फूले = डमंग से भरकर । फटकत = पैतरे बदलते हैं । फरी = दाल । पल = पलक । करवार = करवाल = तलवार । विय = दोनों । पाइक = पैदल सिपाही । घाइ = घाव, घार ।

(उसके) दोनों नेत्र-रूपी सिपाही पलक-रूपी ढाळ और कटाक्ष-रूपी तलवार लेकर सानन्द पैंतरे वद्दते तथा हजारों बार करते और बचाते हैं ।

जदपि चवाइनु चीकनी चलति चहूँ दिसि सैन ।

तऊ न छाड़त दुहुन के हँसी रसीले नैन ॥ ८४ ॥

अन्वय—जदपि चवाइनु चीकनी चहूँ दिसि सैन चलति, तऊ दुहुन के रसीले नैन हँसी न छाड़त ।

चवाइनु चीकनी=निंदा से भरी । तऊ=तो भी । सैन=इशारे । हँसी=उमंग-भरी छेइछाड़ ।

यद्यपि उसपर चारों ओर से निंदा-भरे इशारे चढ़ रहे हैं—कोग इशारे कर-करके उसकी निंदा कर रहे हैं—तो भी दोनों की रसीली आँखें हँसी (चुहलबाजी) नहीं छोड़तीं ।

जटित नीलमनि जगमगति सींक सुहाई नाँक ।

मनौ अली चंपक-कली वसि रसु-लेतु निसाँक ॥ ८५ ॥

अन्वय—नीलमनि जटित सींक जगमगति सुहाई नाँक, मनौ अली चंपक-कली वसि निसाँक रसु लेतु ।

जटित=जड़ी हुई । नीलमनि=नीलम ! सींक=स्त्रियों की नाक में पहनने का एक आभूषण विशेष, जिसे लौंग या छुच्छी भी कहते हैं । निसाँक=निःशंक, वेधक । रसु लेतु=आनन्द लूट रहा है, रस चूस रहा है ।

नीलम से जड़ी लौंग (उसकी) सुन्दर नाक में जगमग करती है, मानो भौंरा चम्पा की कली पर निःशंक बैठकर रस पी रहा हो ।

नोट—गोरी की नाक चम्पा की कली है, नीलम-जड़ी लौंग भौंरा है । भौंरा चम्पा के पास नहीं जाता; पर कवि ने असम्भव को सम्भव कर दिया है ।

वेधक अनियारे नयन वेधत करि न निपेधु ।

बरवट वेधत मो हियौ तो नासा कौ वेधु ॥ ८६ ॥

अन्वय—वेधक अनियारे नयन वेधत निपेधु न करि, तो नासा को वेधु मो हियौ बरवट वेधत ।

वेधक = वेधनेवाला । अनियारे = नुकीले । निपेघ = रुकावट । वेधु = छेद, छिद्र । नासा = नाक । वरबट = अद्वदाकर, जवरदस्ती ।

चुम्मीली नुकीली आँखें यदि हृदय को छेदती हैं, तो छेदने दे, उन्हें मना मत कर (वे ठहरें चुम्मीली नुकीली, वेधना तो उनका काम ही है) ; क्योंकि तेरी नाक का वेध—लौंग पहनने की जगह का छेद—मेरे हृदय को वरचस वेध रहा है—जो स्वयं वेध है, वही वेध रहा है, तो फिर वेधक क्यों न वेधे ?

जदपि लौंग ललितौ तऊ तूँ न पहिरि इकआँक ।

सदा साँक वढ़ियै रहै रहै चढ़ी-सी नाँक ॥ ८७ ॥

अन्वय—जदपि लौंग ललितौ, तऊ तू इकआँक न पहिरि, नाँक चढ़ी-सी रहै सदा साँक वढ़ियै रहै ।

ललितौ = सुन्दर । इकआँक = निश्चय । साँक वढ़ियै रहै = डर बना रहता है । रहै चढ़ी-सी नाक = नाक चढ़ी रहना, कुद्द या रुष्ट होना ।

यद्यपि लौंग (देखने में) अत्यन्त सुन्दर हैं, तो भी तू निश्चय उसे न पहन; (क्योंकि उसके पहनने से) तेरी नाक सदा चढ़ी-सी रहती है, जिससे मेरे मन में सदा भय की वृद्धि होती है (कि तू शायद कुद्द तो नहीं है) !

वेसरि मोती दुति-भलक परी ओठ पर आइ ।

चूनौ होइ न चतुर तिय क्यों पट पौँछयो जाइ ॥ ८८ ॥

अन्वय—वेसरि मोती दुति-भलक ओठ पर आइ परी, चतुर तिय चूनौ न होइ, पट क्यों पौँछयो जाइ ।

पट = कपड़ा । वेसरि = नाक की झुलनी, बुलाक ।

वेसर में लगे हुए मोती की आमा की (यफेद) परिढ़ाँई तुम्हारं श्रोत्रों पर आ पड़ी है । हे सुचतुरे ! वह चूना नहीं है (तुमने जो पान खाया है, उसका चूना होठों पर नहीं लगा है), फिर वह कपड़े से कैसे पौँछी जा सकता है ?

नोट—नायिका के लाल-लाल होठों पर नक्वेसर के मोती की उज्ज्वली भलक आ पड़ी है, उसे वह भ्रमवश चूने का दाग समझकर बार-बार पौछ रही है; किन्तु वह मिटे तो कैसे ?

इहि द्वैहीं मोती सुगथ तूँ नथ गरवि निसाँक ।

जिहि पहिरै जग-दग ग्रसति लसति हँसति-सी नाँक ॥ ८९ ॥

अन्वय—नथ ! तूँ इहि द्वैहीं मोती सुगथ निसाँक गरवि, जिहि पहिरै नाँक हँसति-सी लसति, जग दग ग्रसति ।

सुगथ=सुन्दर पूँजी । गरवि=अभिमान कर ले । हँसति-सी लसति=सुधड़ जान पड़ती है । ग्रसति=फँसाती है ।

अरे नथ ! तूँ इन दो ही मोतियों की पूँजी पर निःशंक होकर गर्व कर ले; क्योंकि तुम्हे पहनकर (उस नायिका की) नाक हसती-सी (सुन्दर शोभासम्पन्न) दीख पड़ती है और संसार की आँखों को फँसती है ।

नोट—एक उर्दू-कवि ने कहा है—‘नाक में नथ वास्ते जीनत के नहीं । हुस्न को नाथ के रक्खा है कि जाये न कहाँ ! जीनत=खूबसूरती । हुस्न=सौन्दर्य ।

बेसरि-मोती धनि तुहीं को वृद्धै कुल जाति ।

पीवाँ करि तिय-अधर को रस निघरक दिन-राति ॥ ९० ॥

अन्वय—बेसरि मोती तुहीं धनि ! कुल जाति को वृद्धै, तिय अधर को रस, निघरक दिन-राति पीवाँ करि ।

अरे बेसर में गुँथा हुआ मोती ! तूँ ही धन्य है । (भाग्यवान्) कुल और जाति कौन पूछता है ? (अलबेकी) कामिनियों के (सुमिष्ट) अधरों का रस तू निर्मयता-पूर्वक दिन-रात पिया कर ।

नोट—‘को वृद्धै कुल जाति’ से यह मतलब है कि मोती तुच्छ सीप कुल से पैदा हुआ है, तो भी उसे ऐसा सुन्दर सौभाग्य प्राप्त है, जिसके लिए कितने कुलीन नवयुक्त तरसते रहते हैं !

बरन वास सुकुमारता सब विधि रही समाइ ।

पँखुरी लगी गुलाब की गात न जानी जाइ ॥ ९१ ॥

अन्वय—गात लगी गुलाब की पँखुरी जानी न जाइ । बरन वास सुकुमारता सब विधि समाइ रही ।

(नायिका की) देह पर लगी गुलाब की पँखुरी पहचानी नहीं जाती—

विज्ञग नहीं देख पड़ती; क्योंकि उसका रंग और उसकी सुगन्ध तथा कोमलता गाल के रंग, सुगन्ध और कोमलता में एकदम मिल-सी गई है।

लसत ज्वेत सारी ढप्यौ तरल तन्यौना कान ।

पन्थौ मनौ सुरसरि-सलिल रवि-प्रतिविम्बु विहान ॥ १२ ॥

अन्वय—सेत सारी ढप्यौ कान तरल तन्यौना लसत, मनौ सुरसरि-सलिल विहान-रवि-प्रतिविम्बु पस्यौ ।

तरल = चंचल । विहान = प्रातःकाल ।

उज्जली साड़ी से ढँका हुआ उसके कान का चंचल कर्णफूल ऐसा सोह रहा है, मानो गंगा के उज्ज्वल जल में प्रातःकाल के सूर्य का (सुनहरा) प्रतिविम्ब आ पड़ा हो ।

नोट—वहाँ सोने का कर्णफूल प्रातःकाल का तूर्य है, और ताड़ी गंगा का स्फटिक-सा त्वच्छ जल ।

सुदुति दुराई दुरति नहिं प्रगट करति रति-रूप ।

दुर्टै पीक और उठी लाली ओठ अनृप ॥ १३ ॥

अन्वय—सुदुति दुराई नहिं दुरति, रति-रूप प्रगट करति, पीक दुर्टै ओठ अनृप लाली और उठी ।

दुदुति=सुबुति=सुन्दर कान्ति । रति-रूप=रति का रूप, कामदेव की ली 'रति' अत्यन्त सुन्दर कही जाती है; अतएव वहाँ 'रति-रूप' ते अर्थ है सौन्दर्य का अत्यन्त आधिक्य । दुराई=छिपाये ।

सुन्दर कान्ति छिपाने से नहीं छिपती, वरन् (ऐसी चेष्टा करने पर) वह और भी अपरूप सौन्दर्य प्रकट करती है । पान की पीक (या लाली) दुइध्ये जाने पर ओढ़ों की अनुपम लाली और भी बड़ गई है ।

नोट—नायिका अपने ओठ की लाली को पान की लाली उमझकर चार-चार उसे दुइ रही है; किन्तु ज्यों-ज्यों पान की लाली दुटती है, त्यों-त्यों उसके ओठ की स्वाभाविक लाली और भी खिलती जाती है ।

कुच-गिरि चड़ि अति थकित है चली डींठि मुँह-चाइ ।

फिरि न टरी परियै रही परी चिबुक की गाड़ ॥ १४ ॥

अन्वय— कुच-गिरि चढ़ि, अति थकित है, डीठि मुँह चाढ़ चली, चिबुक की गाड़ परी परियै रही, फिरि टरी न।

कुच = स्तन। डीठि = दृष्टि = नजर। चाढ़ = चाह। परियै रही = पड़ी रही। चिबुक = ढुँड़ी। गाड़ = गदा।

स्तन-रूपी (ऊँचे) पर्वत पर चर्द, अत्यन्त थककर, दृष्टि—मुख (देखने) की चाह में (आगे) चली। (किन्तु रास्ते में ही) ढुँड़ी के गढ़े में वह (इस प्रकार) जा गिरी कि (उसी में) पड़ी रह गई, (वहाँ से) पुनः (इधर-उधर) टली नहीं।

नोट— ‘चिबुक की गाड़’ पर एक संस्कृत कवि की उक्ति का आशय है कि ब्रह्मा ने सुन्दरी ली को जब पहले-पहल बनाया, तब उसके रूप पर आप ही इतने मुग्ध हुए कि ढुँड़ी पकड़कर भर-नजर देखने लग गये। उसी समय कच्छी मूर्ति की ढुँड़ी उनके अँगूठे से दब गई। वही गदा हो गया।

ललित स्याम-लीला ललन चढ़ी चिबुक छवि दून।

मधु छाक्यो मधुकर परथौ मनौ गुलाब-प्रसून ॥ ९५ ॥

अन्वय— ललित स्याम-लीला, ललन, चिबुक-छवि दून चढ़ी, मानौ मधु छाक्यो मधुकर गुलाब-प्रसून परथौ।

ललित = सुन्दर। स्याम-लीला = गोदने की बिन्दी। दून = दूना। मधु छाक्यौ = रस पीकर तृप्त। मधुकर = भौंरा। प्रसून = फूल।

सुन्दर गोदने की (कोली) बिन्दी से, हे ललन ! उसकी (गुलाबी) ढुँड़ी की शोभा दूनी बढ़ गई है, (जान पड़ता है) मानो मधु पीकर मस्त भौंरा गुलाब के फूल पर (वेसुव) लेटा हुआ है।

नोट— ‘पद्माकर’ के इसी भाव के एक कविता का पद है—‘कैधों अरविन्द में मलिन्दसुत सोयो आय, गरक गोविन्द कैधों गोरी की गुराई में।’ अपने ‘तिल-शतक’ में मुत्तारक कवि तिल को यों प्रणाम करते हैं—

गोरे मुख पर तिल लसै, ताको करौं प्रणाम।

मानहु चंद चिछाय के पैदे सालीग्राम॥

डारे ठोड़ी-गाड़ गहि नैन-बटोही मारि।

तिलक-चौंधि मैं रूप-ठग हाँसी-फाँसी डारि॥ ९६ ॥

अन्वय—चिलक-चौंधि मैं रूप-ठग हाँसी-फाँसी ढारि, नैन-बटोही मारि ठोढ़ी-गाड़ गहि ढारे ।

ठोढ़ी = दुड़ी, चिलक । चिलक = चमक, कान्ति ।

(शरीर की) कान्ति की चक्रचौंधि में सौन्दर्य-रूपी ठग ने हँसी-रूपी फाँसी ढाल (दर्शक के) नेत्र-रूपी बोही को मारकर उसे दुड़ो-रूपी गड़े में ढाक रखा है । यह स्याम-लीला (गोदना की काली विन्दी) उसी की लाश है ।

नोट—एक उदू' कवि ने भी 'तिल' को आशिक का 'जलाभुना दिल' कहा है । क्या खूब !

तो लखि मो मन जो लही सो गति कही न जाति ।

ठोढ़ी-गाड़ गड़यौ तऊ उड़यौ रहत दिन-राति ॥ १७ ॥

अन्वय—तो लखि मो मन जो गति कही सो कही न जाति, ठोढ़ी-गाड़ गड़यौ तऊ दिन-राति उड़यौ रहत ।

मन गड़यौ=मन बसना, मन छवा रहना । मन उड़यौ=मन उड़ना, मन उचटा रहना, कहीं मन न लगना ।

तुम्हें देखकर मेरे मन ने जो चाल पकड़ी है, वह (चाल) कहीं नहीं जानी—अजीब चाल है । यद्यपि वह तुम्हारी दुड़ी के गड़े में गढ़ा (धँसा) रहता—तल्लीन रहता है, तो भी दिन-रात उड़ता—उचटा ही रहता है—चंचल ही बना फिरता है !

नोट—यहाँ कवि ने 'मन का गड़ना' और 'मन का उड़ना' इन दोनों मुहाविरों का प्रयोग अच्छा भिजाया है ।

लौनै मुँह दीठि न लगे याँ कहि दीनौ ईठि ।

दूनी हूँ लागन लनी दियैं दिठौना दीठि ॥ १८ ॥

अन्वय—ईठि लौनै मुँह दीठि न लगे, याँ कहि दिठौना दीनौ दिये दीठि दूनी हूँ लगन लगी ।

लौनै=लाव्यमय । ईठि=हितैषिणी । दिठौना=काजल की विन्दी; नजर लग जाने के डर से छियाँ काजर की विन्दी लगाती हैं ।

हितैषिणी सखी ने—‘इस लावण्ययुक्त मुखड़े पर कहीं किसीकी नजर न लग जाय’ (ऐसा) कहकर डिठौना लगा दिया। किन्तु उस गोरे मुखड़े पर काजल का काला डिठौना देने से लोगों की नजर दुगुनी होकर लगने लगी—लोग और भी चाव से बूरमे लगे।

पिय तिय सों हँसिकै कहौ लखै दिठौना दीन।

चन्द्रमुखी मुख चन्दु तैं भलौ चन्द सम कीन ॥ ११ ॥

अन्वय—दिठौना दीन लखै, पिय तिय सों हँसिकै कहौ, चन्द्रमुखी चन्द सम कीन, मुख चन्दु तैं भलौ।

सों=से। दिठौना दीन=डिठौना लगाये हुए। तैं=से।

डिठौना लगाये हुए देखकर प्रीतम ने अपनी प्रियतमा से हँसकर कहा—हे चन्द्रमुखी ! (काला डिठौना लगाकर) चन्द्रमा के समान (धब्बेदार) कलंकित बना लेने पर भी, (तुम्हारा) मुख, चन्द्रमा से अच्छा ही है।

गड़े बड़े छवि-छाकु छकि छिगुनी छोर छुटैं न।

रहे सुरँग रँग रँगि वही नह दी मँहदी नैन ॥ १०० ॥

अन्वय—छवि छाकु छकि बड़े छिगुनी छोर छुटैं न; वही नह दी मँहदी सुरँग रँग नैन रँगि रहे।

छवि=शोभा। छाकु=नशा। छकि=भर-पेट पीकर। छिगुनी=कनिष्ठा अँगुली, कनगुरिया। सुरँग=लाल। नह दी=नँह में दी गई, नख में लगाई। मँहदी=मँहदी।

सौंदर्य की मदिरा पीकर खूब ही गड़ रहे हैं, छिगुनी की छोर छोड़ते ही नहीं। यहाँतक कि उसी (छिगुनी के) नँह में लगी मँहदी के लाल रंग में ये नेत्र रँग भी गये हैं—उसके ध्यान में लाल भी हो गये हैं !

द्वितीय शतक

सूर उदित हूँ मुदित मन सुखु सुखमा की ओर ।

चितै रहत चहुँ ओर तें निहचल चखनु चकोर ॥ १०१ ॥

अन्वय—सूर उदित हूँ, मुदित मन, सुखु सुखमा की ओर, चकोर निहचल चखनु चहुँ ओर तें चितै रहत ।

सूर = सूर्य । सुखमा = सौंदर्य, शोभा । निहचल चखनु = अटल दृष्टि से, टकटकी लगाकर ।

सूर्य के उदय हो जाने पर मी आनन्दित मन से उसके मुख के सौंदर्य की ओर (उसे चन्द्र-मंडल समझकर) चकोर टकटकी लगाये चारों ओर से देखता रहता है ।

पत्राहीं तिथि पाइयै वा घर कैं चहुँ पास ।

नित प्रति पून्यौईं रहत आनन-ओप उजास ॥ १०२ ॥

अन्वय—वा घर कैं चहुँ पास पत्रा हीं तिथि पाइयै, आनन ओप-उजास नित प्रति पून्यौईं रहत ।

पत्रा = तिथिपत्र । नित प्रति = हर रोज । पून्यौईं = पूर्णिमासी ही । आनन = मुख । ओप = चमक । उजास = प्रकाश ।

उस नाथिका के घर के चारों ओर पत्रा (पंचांग) ही में तिथि पाई जाती है—तिथि निश्चय कराने के लिए पत्रा ही की शरण लेनी पड़ती है; क्योंकि (उसके) मुख की चमक और प्रकाश से वहाँ सदा पूर्णिमा ही बनी रहती है—उसके मुख की चमक और प्रकाश देखकर लोग भ्रम में पड़ जाते हैं कि पूर्ण चन्द्र की चाँदनी छिटक रही है ।

नैकु हँसौंही वानि तजि लख्यो परतु मुँहु नाठि ।

चौका-चमकनि-चौंध मैं परति चौंधि-सी डोठि ॥ १०३ ॥

अन्वय—नैकु हँसौंही वानि तजि, मुँहु नाठि लख्यो परतु; चौका-चमकनि-चौंध मैं डोठि चौंधि-सी परति ।

ससइर गयौ=सिहर जाना, डर गया । सूर=शूर, वीर । मुरवान=पाँव का वह भाग जहाँ पर कड़े, छड़े, पाजेव आदि गहने पहने जाते हैं, सुपवा । चूरन=चूरा का बहुवचन, कड़े । चॅपि=दबकर ।

छिठाइ से साहस किये रहा । डरा नहीं, मुझा भी नहीं । वीर के समान ढटा रहा । मले ही मेरा वह मन मुख्यों में चिपक, कड़ों से चॅपकर, चूर हो गया ।

पाइ महावरु दैन कौं नाइनि बैठी आइ ।

फिरि फिरि जानि महावरी एड़ी मीड़ति जाइ ॥ १०९ ॥

अन्वय—पाइ महावरु दैन को नाइनि आइ बैठी, फिरि फिरि एड़ी महावरी जानि मीड़ति जाइ ।

महावरी=महावर लगी हुई । फिरि फिरि=बार-बार ।

(उस नायिका के) पाँव में महावर लगाने के लिए नाइन आ बैठी । किन्तु (उसकी एँड़ी स्वाभाविक रूप से इतनी लाल थी कि) वह बराबर उसे महावर लगी हुई जानकर माँज-माँजकर धोने लगी ।

नोट—पैरों में महावर लगाने के पूर्व पहले की लगी हुई महावर धो दी जाती है ।

कौहर-सी एड़ीनु की लाली देखि सुभाइ ।

पाइ महावरु देइ को आपु भई बै-पाइ ॥ ११० ॥

अन्वय—कौहर-सी एड़ीनु की सुभाइ लाली देखि पाइ महावरु को देइ, आप बै-पाइ भई ।

कौहर=एक जंगली लाल फल । सुभाय=स्वाभाविक । देइ को=कौन दे, कौन लगावे । बै-पाय=हक्का-बक्का, विस्मय-विसुग्ध ।

लाल कौहर फल के समान उसकी एँड़ियों की स्वाभाविक लाली दंखकर, पैर में महावर कौन लगावे ? नाइक स्वयं हक्का-बक्का (किंकर्त्तव्यविमूढ़) हो गई !

किय हाइलु चित चाइ लगि बजि पाइल तुव पाइ ।

पुनि सुनि सुनि सुँह-मधुर-धुनि क्यों न लालु ललचाइ ॥ १११ ॥

अन्वय—तुम पाइ पाइल बाजि चित चाइ लगि हाइलु किय, पुनि, सुँह-मधुर-धुनि सुनि सुनि लालु क्यों न ललचाइ ।

हाइलु=घायल । चाय=चाह, चाट । पायल=पाजेव ।

तेरे पैरों की पाजेब बजकर चित्त में चाह उत्पन्न करती और घायल बनाती है। फिर मुख की मीठी बोज्जी सुन-सुनकर लाल (नायक) क्यों न लाजच में पड़ जाय?

सोहव अँगुठा पाइ कै अनुबदु जरथौ जराइ।

जीत्यौ तरिवन-दुति सुढरि पञ्यौ तरनि मन पाइ॥ ११२॥

अन्वय—जराइ जरथौ पाइ कै अँगुठा अनवदु सोहव, मनु तरिवन-दुति जीत्यौ तरनि सुढरि पाइ पञ्यौ।

पाइ के=पैर के। अनवदु=पैर के अँगूठे में पहनने का आभूषण-विशेष। जराइ=जड़ाव, नगीना। तरिवन=कर्णफूल। तरनि=सूर्य।

नगीने जड़ा हुआ पैर के अँगूठे का अनवट शोभ रहा है। (वह ऐसा कागता है) मानो कर्णफूलों की प्रसा से पराजित हो सूर्य उस (नायिका) के पाँवों पर लुढ़क पड़ा हो!

पग पग मग अगमन परत चरन-अरुन-दुति झूलि।

ठौर ठौर लखियत उठे दुपहरिया-से फूलि॥ ११३॥

अन्वय—मग पग पग अगमन चरन-अरुन-दुति झूलि परत, लखियत ठौर ठौर दुपहरिया-से फूलि उठे।

अगमन=आगे की ओर। अरुन=लाल। दुति=चमक। दुपहरिया=एक प्रकार का लाल फूल।

पथ में पग-पग पर आगे की ओर (जहाँ पैर पड़ने को है) पैर की लाल प्रसा भड़-मी पड़ती है—जहाँ वह अपना पैर उठाकर रखना चाहती है, वही उसके तलवे की लाली पृथ्वी में प्रतिविमित होने लगती है—(वह ऐसी) देख पड़ती है, मानो जगह-जगह दुपहरिया के (लाल-लाल) फूल फूल उठे हों!

दुरत न कुच विच कंचुकी चुपरी सारी सेत।

कवि-आँकनु के अरथ लौं प्रगटि दिखाई देत॥ ११४॥

अन्वय—चुपरी सेत सारी कंचुकी विच कुच न दुरत, कवि-आँकनु के अरथ लौं प्रगटि दिखाई देत।

कंचुकी=स्तनों के कपने की चोली । चुपरी=चिपटी हुई, सुगंधित सदी या कसी हुई । सेत=सफेद । आँकनु=अश्वरों, शब्दों ।

सटी हुई उजली सारी और कंचुकी के भीतर स्तन नहीं छिपते । कवि के शब्दों के अर्थ के समान वे साफ देख पड़ते हैं ।

नोट—यों ही एक कवि ने ली के कंचुकी-मणिंदत कुच और कवि के गृदार्थ-भाव-संवलित शब्दों की तुलना करते हुए कहा है—

कवि-आखर अरु तिय-सुकुच अघ उघरे सुख देत ।

अधिक ढके हू दुखद नहिं उघरे महा अहेत ॥

भई जु छवि तन बसन मिलि बरनि सकैं सु न वैन ।

आँग-ओप आँगी दुरी आँगी आँग दुरै न ॥ ११५ ॥

अन्वय—बसन मिलि जु तन छवि भई सु वैन न बरनि सकैं आँग-ओप आँगी दुरी, आँगी आँग न दुरै ।

सु=सो, वह । ओप=कान्ति, प्रभा । आँगी=अँगिया, चोली । दुरी=छिप गई ।

वस्त्र से मिलकर उसके शरीर की जो छवि हुई, वह वचन द्वारा नहीं वर्णन की जा सकती—उसके वर्णन में वाणी (सुगंधता या असमर्थता के कारण) मूक हो जाती है । (उसके) अंग की कान्ति से (उसकी) चोली ही छिप गई, चोली से अंग (स्तन) न छिप सके ।

नोट—पीताम्बर की चोली अङ्ग की चम्पक कान्ति में छिप गई ।

भूपन पहिरि न कनक कै कहि आवत इहि देत ।

दरपन कैसे मोरचे देह दिखाई देत ॥ ११६ ॥

अन्वय—कनक कै भूपन न पहिरि, इहि हेत कहि आवत, दरपन कै मोरचे-से देह दिखाई देत ।

कनक=सोना । कहि आवत इहि हेत=इसलिए कहा जाता है ।
मोरचे=धन्वे ।

सोने के गहने तू न पहन, यह इसलिए कहा जाता है कि (वे गहने) दरपन में लगे धन्वे के समान (तेरा) देह में (भद्रे) देख पड़ते हैं ।

मानहु विधि तन-अच्छ-छवि स्वच्छ राखिवैं काज ।

द्वग-पग पोंछन को करे भूपन पायन्दाज ॥ ११७ ॥

अन्वय—मानहु विधि तन-अच्छ-छवि स्वच्छ राखिवैं काज-द्वग-पग-पोंछन को भूपन पायन्दाज करे ।

अच्छ=अच्छी । द्वग-पग=नजर के पैर । पायन्दाज=बँगले के दरवाजे पर रखा हुआ पैर पोंछने का टाट, पायपोश ।

मानो ब्रह्मा ने (नायिका के) शरीर की सुन्दर कानित को स्वच्छ, रखने के निमित्त इष्टि के पैर पोंछने के लिए भूपण-रूपी पायन्दाज बनाये हैं—(ताकि देखनेवालों की नजर के पैरों की धूक से कहीं अंग की कानित न मलिन हो जाय । इसलिए भूपण-रूपी पायन्दाज बनाया कि अंग पर पड़ने से पहले नजरें अपने पैरों की धूल साफ कर लें !)

नोट—एक सुरसिक ने इसका उद्दृ अनुवाद यों किया है—

निगाहों के कदम मैली न कर दें चाँदनी तन की ।

ये जेवर तूने पहने हैंगे पायन्दाज की सूत ॥

सोनजुही-सी जगमगति अँग-अँग-जोवन-जोति ।

सुरँग कसूँभी चूनरी दुरँग देह-दुति होति ॥ ११८ ॥

अन्वय—सोनजुही-सी अँग-अँग जोवन-जोति जगमगति कसूँभी सुरँग चूनरी देह-दुति दुरँग होति ।

सोनजुही=पीली चमेली । जोवन=जवानी । सुरँग=लाल । कसूँभी=कुसुम रंग की, लाल । देह-दुति=शरीर की कानित ।

सोनजुही के समान उसके अँग-अँग में जवानी की ज्योति जगमगा रहा है । (उसपर) कुसुम में रँगी हुई लाल साड़ी (पहनने पर) शरीर की कानित दुरँगी हो जाती है—लाल और पीले के संयोग से अर्जीब दुरँगा (नारंगा) रंग उत्पन्न होता है ।

छिप्यो छवीलौ मुँह लझै नीलैं अंचर-चीर ।

मनौ कलानिधि भलमलै कालिन्दी कैं नीर ॥ ११९ ॥

अन्वय—नीलै अंचर-चीर छिप्यो छवीलौ मुँह लसै, मनौ कलानिधि कालिन्दी कै नीर झलमलै ।

छिप्यो=दँका हुआ । छवीलौ=सुन्दर । नीलै अंचर-चीर=नीली साढ़ी का अँचरा । कलानिधि=चन्द्रमा । कालिन्दी=यमुना ।

नीले अंचल में दँका हुआ सुन्दर मुखड़ा (ऐसा) शोभ रहा है, मानो चन्द्रमा (नीले जल वाली) यमुना के पानी में झलक रहा हो—अरनी प्रभा बिखरेर रहा हो ।

लसै मुरासा तिय-स्ववन यौं मुकुतन दुति पाइ ।

मानहु परस कपोल कै रहे सेद-कन छाइ ॥ १२० ॥

अन्वय—मुकुतन दुति पाइ मुरासा तिय-स्ववन यौं लसै मानहु कपोल कै परस सेद-कन छाइ रहे ।

मुरासा=कर्णफूल । मुकुतन=मुक्ताओं, मोतियों । परस=स्पर्श । कपोल=गाल । सेद=स्वेद, पसीना । कन=कण, विन्दु ।

मोतियों की कान्ति पाकर (मुक्ता-जटित) कर्णफूल, नायिका के कानों में यों शोभते हैं, मानो (उसके) गालों के स्पर्श से (उन कर्णफूलों पर) पसीने के कण छा रहे हों ।

नोट—धन्य बिहारी ! तुमने प्राणहीन कर्णफूलों पर भी ऊँ के गालों के सौंदर्य का जादू डाल ही दिया ! कोमल कपोलों के स्पर्श से कर्णफूलों के भी पसीने निकल आये—सात्त्विक भाव हो आया !

सहज सेत पँचतोरिया पहिरत अति छवि होति ।

जल-चादर कै दीप लौं जगमगाति तनि जोति ॥ १२१ ॥

अन्वय—सहज सेत पँचतोरिया पहिरत छवि अति होति, जल-चादर कै दीप-लौं तन-जोति जगमगाति ।

सहज = स्वाभाविक । सेत = श्वेत, सफेद । पँचतोरिया = एक प्रकार का भूना सफेद रेशमी कपड़ा । लौं = समान ।

स्वाभाविक रूप से सफेद पँचतोरिया पहनने पर उसकी शोभा बढ़ जाती।

है। जल-चादर के अन्दर रखे हुए दीपक के समान (उस पंचतोरिया के भीतर से उसके) शरीर की कानित जगमगाने लगती है।

नोट—जल-चादर = राजाओं के बाग में पहले ऐसी सजावट होती थी कि फव्वारे से होकर चादर की तरह पानी गिरता था, और उसके बीच में दीपक रखे जाते थे, जो अलग से झलमलाते-से देख पड़ते थे।

मालति है नटसाल-सी क्योंहूँ निकसत नाँहि।

मनमथ-नेजा-नोक-सी खुभी खुभी जिय माँहि॥ १२२॥

अन्वय—मनमथ-नेजा-नोक-सी खुभी जिय माँहि खुभी नटसाल-सी सालति है, व्यौहूँ नाँहि निकसति।

सालति = चुभती है, पीड़ा पहुँचा रही है। नटसाल = बाण की नोक का वह तिरछा भाग, जो टूटकर शरीर के भीतर ही रह जाता है। मनमथ = कामदेव। नेजा = कटार। खुभी = लोंग के आकार का एक प्रकार का कान का गहना। खुभी = गडी।

कामदेव के कटार की नोक के समान (नायिका के कानों की) खुभी (मेरे) मन में गढ़ गई है। बाण की हड्डी हुई गाँसी की तरह पीड़ा पहुँचा रही है—किसी प्रकार नहीं निकलती।

अज्ञौ तन्यौना हो रहो स्त्रिय सेवत इकरंग।

नाक-बास वेसरि लद्धो वसि मुकुतनु कै संग॥ १२३॥

अन्वय—इकरंग स्त्रिय सेवत अज्ञौ तन्यौना हो रहो, मुकुतनु के बंग बसि वेसरि नाक-बास लद्धौ।

अज्ञौ = आज भी। तन्यौना = (?) कर्णफूल (२) तरवौ + ना = नहीं तग। स्त्रिय = (?) श्रुति, वेद (२) कान। इकरंग = एक मात्र, एक ठंग से। नाक = (१) नायिका (२) स्वर्ग। वेसरि = (?) नाक का भूषण, शुल्की, लचर। (२) वे+सरि = जिसका समानता न हो, अनुपम। मुकुतनु = (?) मुक्ता (२) मुक्त लोंग, महात्मा।

इलेपार्थ—एकमात्र वेद ही की सेवा करने से—सत्संग न कर केवल वेद ही पढ़ते रहने से—कोई अभी तक नहीं तरा। (किन्तु) मुक्तात्माओं—जीवनमुक्त

महात्माओं—की सत्तंगति से अनुपम स्वर्ग का वास (बहुतों ने पाया) ।

एकमात्र (एक ढंग से) कानों को सेते रहने से आज भी यह 'कर्णफूल' कर्णफूल ही रह गया । (किन्तु) मुक्ताओं की संगति करके बेसर ने नाक का सहवास पा लिया ।

नोट—इस दोहे में भी विहारी ने श्लेष का अपूर्व चमत्कार दिखलाया है । कविवर रसलीन ने भी एक ऐसा ही दोहा कहा है—

ठग तस्कर खुति सेइके लहत साधु परमान ।

ये खुटिला खुति सेइके खुटिलै रही निदान ॥

(सो०) मंगल बिन्दु सुरंगु, मुख ससि केसरि आड़ गुरु ।

इक नारी लहि संगु, रसमय किय लोचन जगत ॥ १२४ ॥

अन्वय—सुरंग-बिन्दु मंगल, मुख ससि, केसरि आड़ गुरु, इक नारी संगु लहि जगत-लोचन रसमय किय ।

सुरंगु=लाल । आड़=टीका । गुरु=वृहस्पति । रसमय=तृतिमय, रसयुक्त, जलमय ।

(ललाट में लगी) लाल बेंदी 'मंगल' है । मुख 'चन्द्रमा' है । केसर का (पीला) टीका 'वृहस्पति' है । (यों मंगल, चन्द्रमा और वृहस्पति—तीनों ने) पुक छी का संग पाकर—छी-योग में पढ़कर—संसार के लोचनों को सरस (शीतल) कर दिया है ।

नोट—ज्योतिप के अनुसार मङ्गल, चन्द्रमा और वृहस्पति के एक नाड़ी में आ जाने से खूब वर्षा होती है । मङ्गल का रंग लाल, चन्द्रमा का श्वेत और वृहस्पति का पीला कहा गया है ।

गोरी छिगुनी नखु अरुनु छला स्यामु छवि देइ ।

लहत मुकुति-रति पलकु यह नैन त्रिवेनी सेइ ॥ १२५ ॥

अन्वय—गोरी छिगुनी, अरुनु नखु, स्यामु छला छवि देइ, नैन यह त्रिवेनी सेइ पलकु मुकुति रति लहत ।

छिगुनी=कनिष्ठा अँगुली । छला=छला, अँगृठी । मुकुति=मुक्ति, मोक्ष । रति=प्रीति । पलकु=एक ज्ञान ।

गोरी कनिष्ठा अँगुली, (उसका) लाल नख, और (डसमें पहनी गई नीलम जड़ी) खाँवली अँगूठी—ये तीनों शोमा दे रहे हैं ! नेत्र, इन त्रिवेणी (गोरी गंगा, लाल सरस्वती और इयामला यमुना के संगम)—का सेवन करके, एक क्षण में ही, प्रीति-रूपी सुन्कि प्राप्त कर लेते हैं ।

तरिवन कनकु कपोल दुति विच-बीच ही विकान ।

लाल-लाल चमकति चुनी चौका चीन्ह समान ॥ १२६ ॥

अन्वय—कनकु तरिवन कपोल-दुति विच-बीच ही विकान, लाल-लाल चुनी चौका चीन्ह समान चमकति ।

तरिवन = तरौना, तरकी, करण्भूपण विशेष । कपोल = गाल । चुनी = चुनी, मणि के टुकड़े । चौका = अगले चारों दाँत ।

सोने की तरकी गालों की कान्ति के बीच ही में बिक गई—छीन हो गई देख नहीं पड़ती (हाँ, उस तरकी में जड़ी हुई) लाल-लाल चुनियाँ अगले चारों दाँतों के चिछ के (नाथ-नाथ) समान भाव से चमक रही हैं ।

मारी डारी नील की ओट अचूक चुकै न ।

मो मन-मृग करवर गहै अहे अहेरी नैन ॥ १२७ ॥

अन्वय—नील मारी की डारी ओट अचूक न चुकै, अहे नैन-अहेरी मो मन-मृग करवर गहै ।

डारी = (डावी) डाल आदि की चरी हुई हरी टट्टी, जिसकी ओट से शिकारी शिकार करते हैं । कर-वर = (कर-वल) हाथ से ही । अहे = अरी । अहेरी = शिकारी ।

नीली माड़ी की टट्टी की ओट से अचूक निशान चजाते हैं, कभी चूकते नहीं । अरो ! (तुम्हारे) नेत्र-रूपी शिकारी ने मेरे मनरूपी मृग को हाथ हाँ में बकढ़ लिया ।

तन भूपन अंजन दग्नु पगनु महावर रंग ।

नहि सोभा को साजियतु कहिवै ही को अंग ॥ १२८ ॥

अन्वय—तन भूपन, दग्नु अंजन, पगनु महावर-रंग, कहिवै ही को, अंग-सोभा को साजियतु नहिं ।

पगन = पाँखों में । साजियतु = सजता है, बढ़ाता है ।

शरीर में गहने, आँखों में काजल, पाँखों में महावर का रंग—ये सब केवल कहने-मर के ही (श्रंगार के) अंग हैं, ये शोभा की सामग्री नहीं हैं—इनसे शोभा की वृद्धि नहीं होती ।

नोट—एक उद्दृ कवि ने कहा है—

नहीं मुहताज जेवर का जिसे खूबी खुदा ने दी ।

कि देखो खुशनुमा लगता है जैसे चाँद बिन गहना ॥

पाइ तस्नि-कुच-उच्च पटु चिरम ठग्यौ सब गाँड़ ।

छुटैं ठौर रहिहै वहै जु हो मोल छवि नाँड़ ॥ १२९ ॥

अन्वय—तस्नि-कुच-उच्च पटु पाइ चिरम सब गाँड़ ठग्यौ, ठौर छुटैं वहै मोल, छवि, नाँड़ रहिहै जु हो ।

चिरम = गुंजा, करजनी । ठौर = स्थान । वहै = वही । जु हो = जो वास्तव में है । मोल = दाम । नाँड़ = नाम ।

नवयुवती के स्तनों पर ऊँचा स्थान पाकर गुंजे ने समूचे गाँव को ठग लिया—सभी को भ्रम हो गया कि हो न हो, यह मूँगा है । किन्तु (वह) स्थान छूटने पर नवयुवती के गले से उत्तर जाने पर—वही (स्वरप) मूल्य, वही (मर्दी) शोभा और वही (गुंजा) नाम रह जायगा, जो (वास्तव में) है ।

उर मानिक की उरवसी डटत घटतु दग-दागु ।

छलकतु बाहिर भरि मनौ तिव हिय कौ अनुरागु ॥ १३० ॥

अन्वय—उर मानिक की उरवसी डटत दग-दागु घटतु मनौ तिव हिय कौ अनुरागु बाहिर भरि छलकतु ।

उरवसी = गले में पहनने का एक आभूषण, मणिमाला, हैकल, चौंका । डटत = देखते । दग-दागु = आँखों की जलन । अनुरागु = प्रेम (अनुराग “प्रम” का रंग भी माणिक्य की तरह लाल माना गया है)

हृदय पर मणिमाला देखते ही आँखों की जलन घट जाती है । (वह ऐसा दीख पड़ती है) मानो (उस) नायिका के हृदय का प्रेम बाहर होकर झलक रहा है ।

जरी कोर गोरै बदन वरी खरी छवि देखु ।

लसति मनौ विजुरी किए सारद-ससि परिवेखु ॥ १३१ ॥

अन्वय—गोरै बदन जरी-कोर—खरी वरी छवि देखु, मनौ सारद-ससि परिवेखु किए विजुरी लसति ।

जरी-कोर = जरी की किनारी । वरी = प्रज्वलित होती । खरी = अधिक । विजुरी = विजुली । सारद = शरदऋतु के । परिवेखु = मण्डल, वेरा ।

गोरै सुखड़े पर (साँझी में टँकी हुई) जरी किनारी इस अत्यंत उद्दीप शोभा को तो देखो । (मालूम पड़ता है) मानो शरद ऋतु के चन्द्रमा को चारों ओर से घेरे हुए विजली सोह रही हो ।

नोट—वहाँ जरी की किनारी विजली, सुखमंडल शरद ऋतु का चन्द्रमंडल है । विद्युन्मण्डल से विग हुआ चन्द्रमण्डल ! अद्भुत कथि-कल्पना है ।

देखी सो न जुही किरति सोनजुही-से अंग ।

दुति लपटनु पट सेत हूँ करति बनौटी-रंग ॥ १३२ ॥

अन्वय—सोनजुही-से अंग सो न हुही देखी । दुति लपटनु सेत पट हूँ बनौटी रंग करति फिरति ।

सोनजुही = पीली चमेली । लपटन = लपटों, लौं, दमक । सेत = श्वेत, सफेद । बनौटी = कपासी ।

सोनजुही की-सी देहवाली उस (नाथिका) को तो नुमने देखन लां (अर्थात् तुमने भी देखा) जो (अगने मुनदने शरीर की) आभा की लपटों से उजले बस्तु की भी (पाले) कपासी रंग का बनारी हुई (बाटिका में) घूमती है ।

नोट—भीन वसन महँ झलकइ काया ।

जस दरपन महँ दीपक छाया ॥

तीज-परव सौतिनु सजे, भूपन वसन मरीर ।

सबै मरगजं-मुँह करी छहीं मरगजैं चीर ॥ १३३ ॥

अन्वय—तीज-परव सौतिनु भूपन-वसन मरीर सजे । छहीं मरगजैं चीर सबै मुँह मरगजे करी ।

तीज-परव=भादो बदी ३ का त्योहार। मरगजै=मलिन, रैंदी हुई। चीर=साड़ी।

तीज के व्रत के दिन सौतिनों ने गहनों और कपड़ों से अपने शरीर को सिंगारा; किन्तु उतने अपनी (उस रति-मदित) मलिन साड़ी से ही सबका मुँह मलिन कर दिया।

नोट—पति-सहवास में रैंदी हुई उसकी मलिन साड़ी देखकर सौतों ने यह जाना कि रात में इसने प्यारे के साथ केलि-रंग किया है।

पचरँग-रँग बैंदी खरी उठी जागि मुखजोति ।

पहिरैं चोर चिनौटिया चटक चौगुनी होति ॥ १३४ ॥

अन्वय—पचरँग-रँग बैंदी खरी, मुखजोति जागि उठी। चिनौटिया चीर पहिरैं चटक चौगुनी होति ।

चिनौटिया चीर=कई रंगों से रँगी लहरदार चुनरी। चटक=चमक।

पचरँगे रंग की बैंदी बनी है। (उसे लगाते ही) आवश्यक मुख की ज्योति (और) जगमगा उठी। (उसपर) रंग-विरंगी चुनरी पहनने से चमक (और भी) चौगुनी हो जाती है।

बैंदी भाल तँबोल मुँह सीस सिलसिले बार ।

दग आँजे राजै खरी एई सहज सिंगार ॥ १३५ ॥

अन्वय—भाल बैंदी, मुँह तँबोल, सीस सिलसिले बार; दग आँजे, एई सहज सिंगार खरी राजै।

भाल=ललाट। तँबोल=पान। सिलसिले=सजाये हुए, चिकनाये हुए। बार=केश। आँजे=काजल लगाये। खरी=अत्यन्त। एई=इसी। सहज=स्वामात्रिक।

ललाट में बैंदी, मुख में पान, सिर पर सजाये हुए बाल और आँखों में काजल लगाये—इसी स्वामात्रिक शृंगार से (नायिका) अत्यन्त शोभ रही है।

नोट—आस्थं सहास्यं नयनं सलास्यं सिन्दूरविन्दूदयशोभिभालम् ।

नवा च वेणी हरिणीदशश्चेदन्यैरगण्यैरपि भूपणैः किम् ॥

हाँ गोभी लखि रीझिहौ छविहिं छवीले लाल ।

सोनजुही-सी हाँति दुति मिलत मालती-माल ॥ १३६ ॥

अन्वय—छवीले लाल, हाँ रीझी, छविहिं लखि रंभिहौ । मालती-माल मिलत सोनजुही-सी दुति होति ।

रंभिहौ=मोहित (मुध) हो जाओगे । सोनजुही=पीली चमेली ।

हे छवीले लाल—रसिया श्रीकृष्ण ! मैं देखकर मोह गई हूँ, तुम भी (उसकी) शोभा देख मोह जाओगे । (कैसी स्वामात्रिक कान्ति है !) मालती की (उजली) माला (उसके गोरे शरीर से) मिलकर सोनजुही के समान (पीली) दुति की हो जाती है ।

नोट—तुलसीदास का एक वर्णन भी कुछ इसी तरह का है—

सिय तुथ अंग रंग मिलि अधिक उदोत ।

हार वेलि पहिरावों चंक होत ॥

झीने पट मैं झुलमुली झलकति ओप अपार ।

सुरतह की मनु सिन्धु मैं लसति सपल्लव डार ॥ १३७ ॥

अन्वय—झीने पट मैं झुलमुली अपार ओप झलकति । मनु सिन्धु मैं सुरतह की सपल्लव डार लसति ।

झीने=महीन, चारीक । पट=बन्ध । झुलमुली=कान में पहनने का कनपत्ता नामक गदना, चकाचौंध करती हुई । ओप=कान्ति । सुरतह=कल्पवृक्ष । लसत=शोभता है । डार=शाखा ।

महीन कपड़े में (चकाचौंध करती हुई) कनपत्ते की अपार कान्ति झलमला रही है । (वह पेंवा मालूम होता है) मानो कल्पवृक्ष की पल्लव-युक्त शाखा शोभा पा रही हो ।

फिरि फिरि चिनु उतहीं रहतु दुटी लाज की लाव ।

अंग अंग छवि-झौर मैं भयो भौर की नाव ॥ १३८ ॥

अन्वय—फिरि फिरि चिनु उतहीं रहतु लाज की लाव दुटी अंग अंग छवि-झौर मैं भौर की नाव भयो ।

लाव=लंगर की रसी । झौर=समूह ।

पहिरत हीं गोरैं गरैं यौं दौरी दुति लाल ।

मनौ परसि पलकित भई बौलसिरी की माल ॥ १४४ ॥

अन्वय—गोरैं गरैं पहिरत हीं लाल यौं दुति दौरी मनौ बौलसिरी की माल परसि पुलकित भई ।

गेरे=गले । परसि=स्पर्श करके । बौलसिरी=मौलसिरी, फूल-निशेप ।

उसके गोरे गले में पहनते ही, हे लाल, ऐसी चमक (उस माला में) आ गई, मानो (वह) मौलसिरी की माला भी उसके स्पर्श से पुलकित हो गई हो—गोमांचित हो गई हो !

कहा कुसुम कह कौमुदी कितक आरसी जोति ।

जाकी उजराई लखैं आँख ऊजरी होति ॥ १४५ ॥

अन्वय—कहा कुसुम कह कौमुदी आरसी जोति कितक, जाकी उजराई लखैं आँख ऊजरी होति ।

कुसुम=फूल, जो कोमलता और सुन्दरता में प्रसिद्ध है । कौमुदी=चाँदनी । आरसी=आईना, दर्पण । आँख ऊजरी होति=आँखें तृप्त हो जाती हैं—प्रसन्न अथवा विकसित हो जाती हैं ।

फूल, चाँदनी और दर्पण की ज्योति की उज्ज्वलता को कौन पूछे ? (वह नायिका इतनी गोरी है कि) जिसकी उज्ज्वलता को देखकर (काला) आँखें उजली हो जाती हैं ।

नोट—‘प्रीतम’ जी ने इसका अनुवाद यों किया है—

कुमुद औ चाँदनी आईनः यह रंगत कहाँ पाये ।

शबाहत देख जिसकी आँख में भी नूर आ जाये ॥

कंचन तन धन वरन वर रह्यो रंगु मिलि रंग ।

जानी जाति सुवास हीं केसरि लाई अंग ॥ १४६ ॥

अन्वय—धन कंचन-तन वर वरन रंग रंगु मिलि रह्यो, अंग लाई केसरि सुवास हीं जानी जाति ।

धन=नायिका । वरन=वरण, रंग ।

नायिका के सुनहरे शरीर के श्रेष्ठ रंग में (केसर का) रंग मिल-सा गया

है । (फलतः) अंग में लगी हुई केसर अपनी सुगंध से ही पहिचानी जाती है ।

अंग अंग नग जगमगत दीपसिखा-सी देह ।

दिया बढ़ाएँ हूँ रहै बड़ो उज्यारो गेह ॥ १४७ ॥

अन्वय—दीपसिखा-सी देह अंग अंग नग जगमगत, दिया बढ़ाएँ हूँ गेह बड़ो उज्यारो रहै ।

नग=आभूपांगों में जड़े हुए नगीने । दीपसिखा=दीपशिखा, दीपक की टेम या लौ । दिया बढ़ाएँ हूँ=दीपक को बुझाने पर भी । उज्यारो=उजेला ।

दीपक की लौ के समान उसके अंग-प्रत्यंग में नग जगमगा रहे हैं । अतएव, दीपक बुझा देने पर भी घर में (ज्योतिष्ठूर्ण शरीर और नगों के प्रकाश से) खूब उजेला रहता है ।

है कपूरमनिमय रही मिलि तन-दुति मुकुतालि ।

छिन-छिन खरी विचच्छनी लखति छाइ तिनु आलि ॥ १४८ ॥

अन्वय—तन-दुति मिलि मुकुतालि कपूरमनिमय है रही । छिन-छिन खरी विचच्छनी आलि तिनु छाइ लखति ।

कपूरमनि=कपूरमणि=कहरवा, यह पीले रंग का होता है और तिनके का स्पर्श होते ही उसे चुम्बक की तरह पकड़ लेता है । दुति=चमक । मुकुतालि=मुक्तालि, मुक्ताओं के समूह । खरी=अत्यन्त । विचच्छनी=चतुरा छ्नी । छाइ=छुलाकर । (तिनु=तिनके । आलि=सखी ।

शरीर की (पीली) शुति से मिज्जकर सुन्ना की (उजली) माला (पीले) कपूरमणि—कहरवा—की माला-मी हो रही है । अतएव, अत्यन्त सुचतुरा मर्वी श्वर्ण-क्षण (उस माला से) तिनका छुला-छुलाकर देखती है (कि अगर कहरवा की माला होगी, तो तिनके को पकड़ लेगी) ।

खरी लसति गोरे गरे धैंसति पान की पीक ।

मनौ गुलीबैद लाल की लाल लाल दुति लीक ॥ १४९ ॥

अन्वय—गोरे गरे धैंसति पान की पीक खरी लसति लाल लाल लीक दुति मनौ लाल की गुलीबैद ।

धैंसति=हलक के नीचे उत्तरती है । खरी=अधिक । लसति=शोभती

पहिरत हीं गोरैं गरैं यौं दौरी दुति लाल ।

मनौ परसि पुलकित भई बौलसिरी की माल ॥ १४४ ॥

अन्वय—गोरैं गरैं पहिरत हीं लाल यौं दुति दौरी मनौ बौलसिरी की माल परसि पुलकित भई ।

गरे=गले । परसि=स्पर्श करके । बौलसिरी=मौलसिरी, फूल-विशेष ।

उसके गोरे गले में पहनते ही, हे लाल, ऐसी चमक (उस माला में) आ गई, मानो (वह) मौलसिरी की माला भी उसके स्पर्श से पुलकित हो गई हो—रोमांचित हो गई हो !

कहा कुसुम कह कौमुदी कितक आरसी जोति ।

जाकी उजराई लखैं आँख ऊजरी होति ॥ १४५ ॥

अन्वय—कहा कुसुम कह कौमुदी आरसी जोति कितक, जाकी उजराई लखैं आँख ऊजरी होति ।

कुसुम=फूल, जो कोमलता और सुन्दरता में प्रसिद्ध है। कौमुदी=चाँदनी । आरसी=आईना, दर्पण । आँख ऊजरी होति=आँखें तृप्त हो जाती हैं—प्रसन्न अथवा विकसित हो जाती हैं ।

फूल, चाँदनी और दर्पण की ज्योति की उज्ज्वलता को कोन पूछे ? (वह नायिका इतनी गोरी है कि) जिसकी उज्ज्वलता को देखकर (काला) आँखें उजली हो जाती हैं ।

नोट—‘प्रीतम’ जी ने इसका अनुवाद यों किया है—

कुमुद औ चाँदनी आईनः यह रंगत कहाँ पाये ।

शबाहत देख जिसकी आँख में भी नूर आ जाये ॥

कंचन तन धन वरन वर रघ्यौ रंगु मिलि रंग ।

जानी जाति सुवास हीं केसरि लाई अंग ॥ १४६ ॥

अन्वय—धन कंचन-तन वर वरन रंग रंगु मिलि रह्या, अंग लाई केसरि सुवास हीं जानी जाति ।

वन=नायिका । वरन=वर्ण, रंग ।

नायिका के सुनहले शरीर के श्रेष्ठ रंग में (केसर का) रंग मिल-सा गया

है । (फलतः) अंग में लगी हुई केसर अपनी सुरंग से ही पहिचानी जाती है ।

अंग अंग नग जगमगत दीपसिखा-सी देह ।

दिया बढ़ाएं हूँ रहै बड़ो उज्यारो गेह ॥ १४७ ॥

अन्वय—दीपसिखा-सी देह अंग अंग नग जगमगत, दिया बढ़ाएं हूँ गेह बड़ो उज्यारो रहे ।

नग = आभूयगों में जड़े हुए नगीने । दीपसिखा = दीपशिखा, दीपक की टेम या लौ । दिया बढ़ाएं हूँ = दीपक को बुझाने पर भी । उज्यारो = उजेला ।

दीपक की लौ के समान उसके अंग-प्रत्यंग में नग जगमगा रहे हैं । अतपव, दीपक बुझा देने पर भी वर में (ज्योतिष्ठूर्ण शरीर और नगों के प्रकाश से) यूव उजेला रहता है ।

हूँ कपूरमनिमय रही मिलि तन-दुति मुकुतालि ।

छिन-छिन खरो विचच्छनी लखति ढाइ तिनु आलि ॥ १४८ ॥

अन्वय — तन-दुति मिलि मुकुतालि कपूरमनिमय हूँ रहा छिन-छिन खरो विचच्छनी आलि तिनु ढाइ लखति ।

कपूरमनि = कपूरमणि = कहरवा, यह पीले रंग का होता है और तिनके का स्पर्श होने ही उसे चुम्बक की तरह पकड़ लेता है । दुति = चमक । मुकुतालि = मुक्कालि, मुक्काओं के समूह । खरो = अत्यन्त । विचच्छनी = चतुर छ्णी । ढाइ = ढूलाकर । तिनु = तिनके । आलि = सखी ।

शरीर की (पीली) शुति से मिलकर मुक्का की (उड़ली) माला (पीले) कपूरमणि — कहरवा — की माला-सी हो रही है । अतपव, अत्यन्त मुचतुरा मर्दी श्वर-क्षण (उस माला से) तिनका ढुला-ढुलाकर देखती है (कि अगर कहरवा की माला होगी, तो तिनके को पकड़ लेगी) ।

खरी लसति गोरे गरे धैर्यति पान की पीक ।

मनौ गुलीवैद लाल की लाल लाल दुति लीक ॥ १४९ ॥

अन्वय — गोरे गरे धैर्यति पान की पीक खरी लसति लाल लाल लीक दुति मनौ लाज की गुलीवैद ।

धैर्यति = इतक के नीचे उतरती है । खरी = अधिक । लसति = शोभती

है। गुलीबँद=गले में बँधने का आभूपण, जिसे कंठी कहते हैं। लाल=लाल मणि। लीक=रेखा, लकीर।

(उस गोरी के) गोरे गले में उत्तरती हुई पान की पीक बड़ी अच्छी लगती है। (उसे कंठ तक करते समय अत्यन्त सुकुमारता के कारण) जो पीक की ललाई बाहर भल रहती है, (सो) लाल-लाल लकीरों की चमक (ऐसी मालूम पड़ती है) मानो लाल मणियों की कंठी (उसने पहनी) हो।

बाल छबीली तियन मैं बैठी आपु छिपाइ।

अरगट ही फानूस-सी परगट होति लखाइ॥ १५०॥

अन्वय—छबीली बाल तियन मैं आपु छिपाइ बैठी, फानूस सी अरगट ही परगट लखाइ होति।

बाल=नवयौवन। अरगट=अलग। फानूस=शीशे के अंदर बलता हुआ दीपक। परगट=प्रकट, प्रत्यक्ष।

(वह) सुन्दरी बाला छियों (के झुण्ड) में अपने-आपको छिपाकर जा बैठी। किन्तु फानूस (की ज्योति) के समान वह अलग ही (साफ) प्रकट दीख पड़ने लगी।

डाठि न परत समान दुति कनकु कनक सौं गात।

भूपन कर करकस लगत परस पिछाने जात॥ १५१॥

अन्वय—समान दुति कनकु सौं गात कनक न डाठि परत, भूपन कर करकस लगत परस पिछाने जात।

डीठि=दृष्टि। दुति=चमक, आभा। कनक=सोना। कर=हाथ। करकस=कठोर। परस=स्पर्श। पिछाने=पहचाने।

एक ही प्रकार की आभा होने से (उसके) सोने के ऐसे (गोरे) शरीर में सोना (सुनहला गहना) नहीं दीख पड़ता—वह शरीर के रंग में मिल जाता है। (अतपूर्व, सोने के) गहने हाथ में कठोर लगने से स्पर्श-द्वारा ही पहचाने जाते हैं।

करतु मलिनु आछो छविहिं हरतु जु सहजु विकासु।

अंगरागु अंगनु लगै दयौं आरसो उसासु॥ १५२॥

अन्वय—जु आँछी छविहिं मलिनु करतु, सहज बिकासु हरतु । अंगनु लगे अंगरागु उसासु आरसी ज्यों ।

आँछी = अच्छी । अंगराग = केसर, चंदन, कस्तूरी आदि का सौंदर्यवर्द्धक लेप । आरसी = आईना । उसास = उच्छ्वास = सांस की भाप ।

जो सुन्दर शोभा को भी मलिन कर देता है, स्वाभाविक रूपविकास को भी हर लेता है । (उसके) शरीर में लगा हुआ अंगराग आईने पर पढ़ी साँस की भाप-सा (मालूम पड़ता) है ।

नोट—आईने पर साँस की भाप पड़ने से जिस प्रकार उसकी ज्योति खुँबली हो जाती है, अंगराग से नायिका के शरीर की स्वाभाविक ज्योति भी उसी प्रकार मलिन हो जाती है ।

अंग-अंग प्रतिविम्ब परि दरपन से सब गात ।

दुहरे तिहरे चौहरे भूपन जाने जान ॥ १५३ ॥

अन्वय—दरपनमें सब गात; अंग-अंग प्रतिविम्ब परि भूपन दुहरे, तिहरे, चौहरे जाने जात ।

आईने-जैसे (चमकाले) शरीर में प्रतिविम्ब (लाया) पड़ने से (अंग-अंग के गहने) दुहरे तिहरे और चौहरे दीन्द्र पड़ते हैं—एक एक गहना दो-दो, तीन-तीन, चार-चार तक मालूम पड़ता है ।

अंग-अंग छाँव की लपट उपटति जाति अछेह ।

खरी पातरोऊ तऊ लगे भरी-सी देह ॥ १५४ ॥

अन्वय—अंग-अंग छाँव की लपट अछेह उपटति जाति । खरी पातरोऊ तऊ देह भरी-सी लगे ।

उपटति जाति = बढ़ती ही जाती है । अछेह = निरंतर, अवाध रूप । लगे = अत्यन्त । पातरोऊ = पतली होने पर भी ।

अंग-प्रत्यंग से शोभा का लपट अधिकाधिक बढ़ती ही जाती है । (अन्वय) अत्यन्त पतली होने पर भी कान्ति के (अधिकाधिक उभाड़ के कारण) उसका देह भरी-सी (पुष्ट) जान पड़ती है ।

‘ रंच न लखियति पहिरि यौं कंचन-सैं तन बाल ।
कुँभिलानैं जानी परै उर चम्पक की माल ॥ १५५ ॥

अन्वय—कंचन-सैं तन बाल उर चम्पक की माल पहिरि यौं रंच न लखियति । कुँभिलानैं जानी परै ।

रंच=जरा, कुछ । उर=हृदय ।

सोने के ऐसे (गोरे) शरीरवाली (उस) बाला के हृदय पर चंगा की माला (शरीर की द्युति और चंपा की द्युति एक-सी होने के कारण) जरा भी नहीं दीख पड़ती । (हाँ) जब वह कुम्हिला जाती है, तभी दीख पड़ती है ।

नोट—तुलसीदास का एक वरवै भी इसी भाव का है—

चंपक हरवा अंग मिलि अधिक सुहाइ ।

जानि परै सिय दियरे जब कुम्हिलाइ ॥

भूपन भारु सँभारिहै क्यौं इहिं तन सुकुमार ।

सूधे पाइ न धर परै सोभा हीं कैं भार ॥ १५६ ॥

अन्वय—इहिं सुकुमार तन भूपन-भारु क्यौं सँभारिहै । सोभा ही के भार सूधे पाह धर न परै ।

सुकुमार=नाजुक । सूधे=सीधे । धर=धरा, पृथ्वी ।

यह सुकुमार शरीर गहनों के भार को कैसे सँभालेगा ? जब सौंदर्य के भार ही में सीधे पैर पृथ्वी में नहीं पड़ते !

नोट—इस दोहे में विहारी ने मुहाविरे का अच्छा चमत्कार दिखलाया है । ‘सीधे पैर नहीं पड़ना’ का अर्थ है ‘ऐंठकर चलना’ । कोई सखी नायिका संवयपूर्वक कहती कि विना भूपण के ही तुम ऐंठकर चलती हो, फिर भूपण पहनने पर न मालूम क्या गजब ढाओगी ? साथ ही, इसमें सुकुमारता और सुन्दरता की भी हद दिखाई गई है ।

न जक धरत हरि हिय धरै नाजुक कमला-बाल ।

भजत भार भयभीत हू घनु चंदनु घनमाल ॥ १५७ ॥

अन्वय—नाजुक कमला-बाल हरि हिय धरै न जक धरत । घनु, चंदनु, घनमाल भार भयभीत भजत ।

जक=डर। घनु=कर्पूर।

(उसका पागल पन तो देखिये ।) वह लक्ष्मी-सी सुकुमारी बाला श्रीकृष्ण को हृत्य में धारण करने से तो नहीं डरती, किन्तु कर्पूर, चंदन (आदि के लेप) तथा वनमाला के बोझ से डरकर जाती है (कि उनका बोझ कैसे सँभालूँगी !)

नोट- श्रीकृष्ण के विरह में व्याकुल नायिका अंगराग आदि नहीं लगाती है। इस दोहे में 'कमला' शब्द बहुत उपयुक्त है। कमला=जिसकी उत्पत्ति कमल से हो। इस शब्द से नायिका की अत्यंत सुकुमारता प्रकट होती है।

अरुन वरन तरुनी चरन अँगुरी अति सुकुमार।

चुवत सुरंगु रंगु सी मनौ चैंपि विछियनु कैं भार॥ १५८॥

अन्वय— तरुनी चरन, अरुन वरन, अँगुरी अति सुकुमार। मनौ विछियनु कैं मार चैंपि सुरंगु रंगु सी चुवत।

अरुन=लाल। वरन=बर्ण, रंग। सुरंग=लाल। चैंपि=दबकर। विछियनु=अँगुलियों में पहनने के भूषण।

उस वश्युवर्ती के चरण लाल रंग के हैं। उसकी अँगुलियाँ अंग्रन्त सुकुमार हैं (पेना मालूम होता है) मानो विद्वाओं के बोझ से दबकर (उसकी सुकुमार अँगुलियों में) लाल रंग-सा चूँहा हो।

छाले परिवे कैं ढरनि सकै न पैर लुवाइ।

फिरकति हियैं गुलाव कैं झँवा झँवैयत पाइ॥ १५९॥

अन्वय— छाले परिवे कैं ढरनि पैर लुवाइ न सकै। गुलाव कैं झँवा पाइ झँवैयत हियैं फिरकति।

छाले=फोड़े। झँवाँ=झाँवाँ; जली हुई रुखड़ी हैट; वह बम्तु जिससे खियाँ अपने तलवाँ को साफ करती हैं। झँवैयत=झाँवाँ से साफ करना।

उसके पैर इतने सुकुमार हैं कि फोड़ा पड़ जाने के डर से दार्दी अपने हाथ उसके पैर से लुवा ही नहीं सकता। (यहाँ तक कि) गुलाब-फूल के झावे से पैर को झँवाते समय—साफ करते समय—भी हृत्य में शिशक उठती है (कि कहीं गुलाब का कोमल पुष्प भी इसके पैर में न गढ़ जाय) !

नोट—कृष्ण कवि ने इसकी टीका यों की है—

प्यारी के नाजुक पायें निहारिकै हाथ लगावत दासी डरें ।

धोवत फूल गुलाब के लौं पै तऊ झज्जकै मति छाले परें ॥

मैं वरजी कै वार तूँ इत कति लेति करौट ।

पँखुरी लगें गुलाब की परिहै गात खरौट ॥ १६० ॥

अन्वय—मैं कै वार वरजी, तूँ इत कति करौट लेति । गुलाब की पँखुरी लगी गात खरौट परिहै ।

वरजी=मना किया । इत=इधर । कति=क्यों । पँखुरी=पंखड़ी, गुलाब के फूल की कोमल पत्तियाँ । खरौट=खरौच, निछोर ।

मैं कई बार मना कर चुकी । (फिर भी) तू इस ओर क्यों करवट बदलनी है ? (देख, इधर गुलाब की पँखड़ियाँ विखरी हैं) गुलाब की पँखड़ियों के लगने से तुम्हारे शरीर में खरौच पढ़ जायेंगे—शरीर छिल जायगा ।

कन दैवौ सौंप्यो समुर बहू थुरहथी जानि ।

रूप रहचटैं लगि लग्यौ माँगन सबु जगु आनि ॥ १६१ ॥

अन्वय—बहू थुरहथी जानि ससुर कन दैवौ सौंप्यौ । रूप रहचटैं लगि सबु जगु आनि माँगन लग्यौ ।

कन=कण=भिक्षा । बहू=वधू=पतोहू । थुरहथी=छोटे हाथोंवाली । रहचटैं=चाह, लालच । लगि=लगकर । आनि=आकर ।

पतोहू को छोटे हाथोंवाली समझकर—उसकी छोटी हथेली देवकर—(कंज्स) ससुर ने भिक्षा देने का (मार उसीको) सौंपा (इसलिए कि हथेली छोटी है, भिक्षुकों को थोड़ा ही अन्न दिया जा सकेगा); किन्तु (उसके) रूप के लालच में पढ़ सारा संसार ही आकर (उससे भिक्षा) माँगने जगा !

नोट—छोटी हथेली छियों की सुन्दरता का सूचक है ।

त्यौं त्यौं प्यासेई रहत ज्यौं ज्यौं पियत अघाइ ।

सगुन सलोने रूप की जु न चख-तृपा बुझाइ ॥ १६२ ॥

अन्वय—ज्यौं ज्यौं अघाइ पियत त्यौं त्यौं प्यासेई रहत । सगुन सलोने रूप की जु चख-तृपा न बुझाइ ।

अघाइ=अफरकर, तृतिपूर्वक, छक्कर। सगुन=गुणसहित। सलोने=लावण्ययुक्त, नमकीन। चख=नेत्र। तृष्णा=प्यास।

जितना ही अघा-अघाकर पीते हैं, उतना ही प्यासे रह जाते हैं। गुणों से युक्त लावण्य-भरे रूप की—इन नेत्रों की—प्यास शान्त नहीं होती—अर्थात् इन नेत्रों को उसके लावण्यमय रूप के देखने की जो प्यास है, वह नहीं बुझता।

नोट—‘तलोने’ शब्द यहाँ पूर्ण उपयुक्त है। नमकीन पानी पीने से प्यास नहीं बुझती। त्योहाँ लावण्यमय रूप देखने से आँखें नहीं कवर्ती या अघातीं।

रूप-सुधा-आसव छक्क्यौ आसव पियत बनै न।

प्यालै ओठ प्रिया-बदन रह्यौ लगाएँ नैन ॥ १६३ ॥

अन्वय—रूप-सुधा-आसव छक्क्यौ, आसव पियत न बनै। प्यालै ओठ नैन प्रिया-बदन लगाएँ रह्यौ।

रूपसुधा=अमृत के समान मधुर रूप। आसव=मदिरा। छक्क्यौ=भरपेट पीने से। बदन=मुख।

अमृतोपम सौंदर्य-रूपी मदिरा पीने के कारण (साधारण) मदिरा पीते नहीं बनती। (मदिरा के) प्याले तो ओढ़ से लगे हैं, और आँखें प्यारी के मुख पर अड़ते हैं, वह एकटक प्यारी का मुख देख रहा है, पर बेचारे से मदिरा पी नहीं जाती।

दुमह सौति सालैं मुहिय गनति न नाह वियाह।

धरे रूप-गुन का गरबु फिरे अछेह उछाह ॥ १६४ ॥

अन्वय—सौति दुमह, मुहिय सालैं; नाह वियाह न गनति। रूप-गुन का गरबु धरे अछेह उछाह फिरे।

गनति न=नहीं गिनती, परवा नहीं करती। नाह=पति। अछेह=अनन्त, अधिक। उछाह=आनन्द, उत्साह।

सौतिन सदा दुस्सह होता है, वह हृदय में साजर्ता है (यह जानकर मां वह नायिका) पति के (दृश्यरे) विचाह का परवा नहीं करता। (अपने) रूप और गुण के गर्व में मस्त हो अनन्द से विचर रही है।

लिखन वैठि जाकी सबी गहि गहि गरब गरूर ।

भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर ॥ १६५ ॥

अन्वय—जाकी सबी गरब-गरूर गहि-गहि लिखने वैठि जगत के केते चतुर चितेरे कूर न भए ।

सबी=चित्र । गरूर=श्रमिमान । केते=कितने । चितेरे=चित्रकार ।
कूर=वेवकूर ।

(उस नायिका के रूप का क्या कहना !) जिसके चित्र को अत्यन्त गर्व और श्रमिमान के साथ बनाने के लिए बैठकर संसार के कितने चतुर चित्रकार वेवकूर बन गये—उनसे चित्र नहीं बन सका !

नोट - शक्त तो देखो मुसविर खींचेगा तसवीरे यार ।

आप ही तसवीर उसको देखकर हो जायगा ॥—जौक

(सो०) तो तन अवधि अनूप, रूप लग्यौ सब जगत कौ ।

मो दग लागे रूप, दगनु लगो अति चटपटी ॥ १६६ ॥

अन्वय—तो तन अनूप अवधि, सब जगत को रूप लग्यौ । मो दग रूप लागे दगनु अति चटपटी लगी ।

अवधि=सीमा, दग = आँख । चटपटी=व्याकुलता ।

तुम्हारा शरीर अनुपमता की सीमा है—इसकी समानता संसार में है ही नहीं । (क्योंकि इसके रचने में) संसार-मर का सौंदर्य लगाया गया है—
(जहाँ, जिस पदार्थ में, कुछ सौंदर्य मिला, सब का संमिश्रण इसमें कर दिया गया है) —मेरी आँखों में (तुम्हारा वह) रूप आ लगा है—समा गया है;
(फलतः) आँखों में अत्यन्त व्याकुलता छा गई है—वे व्याकुल वर्ण रहती हैं ।

नोट—ठाकुर कवि के “कंचन को रंग लै सबाद लै सुधा को वसुधा को सुख लूटिकै बनायो मुख तेरो है” के आधार पर पं० रामनरेश त्रिपाठी के ‘पथिक’ में सौंदर्य-सामग्रियों का कथन यों किया गया है—

कहते थे तुम कोमलता नीरज को, ज्योति रतन की ।

मोहकता शशि की, गुलाब की सुरभि, शान्ति सज्जन की ॥

रति का रूप, रंग कंचन का, लेकर स्नाद सुधा का ।

विरचा है विधि ने मुख तेरा सुख लेकर वसुधा का ॥

त्रिवली नाभि दिखाइ कर सिर ढँकि सकुच समाहि ।

गली अली की ओट है चली भलो विधि चाहि ॥ १६७ ॥

अन्वय—त्रिवली नाभि दिखाइ, सकुच समाहि निर ढँकि कर अली की ओट है भली विधि चाहि गली चली ।

त्रिवली=नाभी के निकट की तीन रेखाएँ । सकुच समाहि=लाज में समाकर, लज्जित होकर । अली=सखा । चाहि=देखकर ।

त्रिवली और नाभी दिखकर (फिर) लज्जित हो सिर ढँककर हाथ उठाकर—हे मधि, वह (अरनी) सखियों की ओट है भलो भौति (नायक को) देखती हुई गली में चली गई ।

देख्यौ अनदेख्यो कियै अँगु अँगु सबै दिखाइ ।

पैठनि-सी तन मैं सकुचि बैठी चितै लज्जाइ ॥ १६८ ॥

अन्वय—अँगु-अँगु सबै दिखाइ देख्यौ अनदेख्यौ कियै । तन मैं पैठति-सी चितै लज्जाय सकुचि बैठी ।

सकुचि=संकोच करके । लज्जाय=लज्जाकर ।

(पहले तो उस नायिका ने) मर्मी अंग-प्रत्यंग दिखाकर (नायक को) देखती हुई जी अनदेख कर दिया—यद्यपि वह उसे देख रहा था, तो भी न देखने का बड़ाना करके अपने मर्मी अंग उसे दिखा दिये । (फिर उस नायक के) तन मैं पैठनी हुई-सी—उसके चित्त में मुखती हुई-सी—वह मन मैं लज्जाकर संकोच के साथ बैठ गई ।

विहँसि तुलाइ चिलोकि उत प्रौढ़ तिया रसवूमि ।

पुलकि पसीजति पूत की पिय चूम्यौ मुँहु चूमि ॥ १६९ ॥

अन्वय—विहँसि तुलाइ उत चिलोकि, प्रौढ़ तिया रसवूमि पूत की पिय चूम्यौ मुँहु चूमि पुलकि पसीजति ।

विहँसि=हँसकर, मुत्कुगकर । उत=उधर । प्रौढ़=प्रौढा, पूर्ण यौवना ।

रसघूमि=रस में मस्त होकर। पुलकि=रोमांचित होकर। पसीजति=पसीजती है, पसीने से तर होती है।

हँसकर, बुलाकर, (और) उधर (नायक की ओर) देखकर वह पूर्णयौवना खी, रस में मस्त हो, पति-द्वारा चूमे गये अपने पुत्र के सुख को चूमकर, रोमांचित तथा पसीने से तर होती है।

रहौ गुही बेनी लखे गुहिबे के त्यौनार।

लागे नीर चुचान जे नीठि सुखाये बार ॥ १७० ॥

अन्वय—रहौ, बेनी, गुही गुहिबे के त्यौनार लखे। नीठि सुखाये बार जे नीर चुचान लागे।

रहौ=रह जाओ, ठहरो। त्यौनार=दंग। नीर=पानी। नीठि=मुश्किल से। बार=बाल, केश।

ठहरो भी, (तुम) बेणी गूँथ चुके। (तुम्हारा) बेर्णा गूँथने का ढंग देख लिया। मुश्किल से सुखाये हुए इन बालों से (पुनः) पानी चुचुहाने लमा।

नोट—नायिका की चोटी गूँथते समय प्रेमाधिक्य के कारण नायक के हाथ पसीजने लगे, जिससे सूखे हुए बाल पुनः भींग गये।

स्वेद-सलिलु रोमांचु-कुसु गहि दुलही अरु नाथ।

हियौ दियौ सँग हाथ कै हँथलेयैं हां हाथ ॥ १७१ ॥

अन्वय—स्वेद-सलिल, रोमांचु-कुसु, गहि दुलही अरु नाथ; हथलेयैं हीं हाथ कै संग हियौ हाथ दियौ।

स्वेद=पसीना। रोमांचु-कुसु=खड़े हुए रोंगटे के कुश। नाथ=दुलहा। हियौ=हृदय। हँथलेयैं=पाणिग्रहण।

पसीना-रूपी पानी और रोमांच-रूपी कुश लेकर वर और दुलहिन (दोनों) ने पाणिग्रहण के समय में ही अपने हाथ के साथ ही अपना-अपना हृदय भी (एक दूसरे के) हाथ में दे दिया।

नोट—‘प्रीतम’ कवि ने कहा है—“धनी की जब सुरत में वह भाव हैं मरसता, कुश रोम तन स्वड़े हो भूकम्प है दरसता।”

मनुष्य हूँ हूँ दिव्यता की हुआ है है करि अनुग्रह ।

मनु सद्गुरु मनु जड़नहूँ सौनित दिव्यी मुहारु ॥ १५२ ॥

अनन्द—मनु हूँ हूँ दिव्यता की हुआ है है करि मास मनु
जड़नहूँ मनु सौनित मुहारु दिव्यी ।

हूँ हूँ दिव्यता की = यहे यहे नहै हुआ है की हूँ हूँ की को तन
= करि अनुग्रह = कौनसा, कौनमेन ।

मनो हूँ हूँ देवीनी मे हुआ है यह देव कामे (उपहार मे) मन के करि
मनम ते तन, कौर सौनित ते मुहारु दे दिये ।

लोट—सौनित के मुहारु देने का अभिप्राय यह है कि यह नायक हानी
का अनुग्रह यहारा, उसे दूरोन्नती नहीं नहीं ।

निरालि नयोद्वा नारी-इन मुठन लारिकड़े तेज़ ।

भौ रघुने पौन्हु निष्ठु ननहु चढ़न यरदेस ॥ १५३ ॥

अनन्द—रघुने रघुने निष्ठु चढ़ने वहै चेत् मुठन निष्ठु
चेतो भौ ननहु यरदेस चढ़न ।

रघुने = रघुनन्दन । भौ कड़े = रघुनन्दन । तेज़ = हरमन्द । निष्ठु =
चियों को । ननहु = नानो ।

लघुने नानो लालिका के शरीर से लहवन का यरदेस छूटने देखना—उसे
लालिका से लघुने वहो तोने देखना—(जन्म) चियों को (जन्म) रघुनन्दन
जन्मा हो इसका नानो वह यरदेस का रहा हो ।

लोट—जन्म चियों को भय हो रखा कि उस लघुने के कल्पना यह
वहै ये अनुग्रह न हो जाए, अनन्द भयने रघुने को बहुत ही भयर करने नहीं ।
लोट जाने करने रघुने भौर भौ भयर करना है ।

हौंहौं है बोलन हैंसति पोहःविलास जयोऽ ।

नयों नयों चलन न चिय लगन छक्क छक्को नवोऽ ॥ १५४ ॥

अनन्द—हौंहौं है बोलन हैंसति; अयोऽ (है) पोहःविलास (दरमावनि)
नयों नयों रिय लगन न चलन (ननो) छक्की नवोऽ छक्क ।

ढोळ्यौ दै = ढिठाई से । पौढ़-विलास = प्रौढ़ा के समान हावभाव । अपोढ़ = अप्रौढ़ा, प्रौढ़ा नहीं, नवोढ़ा । चलत न पिय नयन = नायक की आँखें चंचल नहीं होतीं, स्थिर होकर देखती हैं । छुकए = शराब पिलाना । छकी = शराब पिये हुई, मदमस्त । नवोढ़ा = नवयुवती ।

उयों-ज्यों डिठाई से बोलती और हँसती है, प्रौढ़ा न होने पर भी— पूर्णवयस्का न होने पर भी—प्रौढ़ा का-सा हाव-माव (दिखला रही) है, त्यों-त्यों प्रीतम (नायक) की आँखें नहीं चलती हैं—एकटक उसकी ओर देखती रहती हैं; (मानो शराब पीकर उस) मदमस्त नवयुवती ने (उन्हें भी शराब) पिला दिया हो ।

सनि कज्जल चख भख-लगन उपज्यौ सुदिन सनेहु ।

क्यौं न नृपति है भोगवै लहि सुदेस सबु देहु ॥ १७५ ॥

अन्वय—सनि कज्जल, चख भख-लगन-सुदिन सनेहु उपज्यौ । सबु देहु सुदेसु लहि क्यौं न नृपति है भोगवै ।

सनि = शनैश्चर । चख = आँख । भख = मीन । सुदिन = शुभ घड़ी ।
सुदेस = सुन्दर देश ।

काजल शनैश्चर है, आँखों मीन लग्न हैं । (यों इस शनैश्चर और मीन लग्न के संयोग का) शुभ घड़ी में प्रेम की उत्पत्ति हुई है । (फिर वह प्रेम) समूचे शरीर-रूपी सुन्दर देश को पाकर (उसका) राजा बन क्यों न भोग करे ?

नोट—ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार मीन-लग्न में शनैश्चर पड़ने से राजयोग होता है ।

चितर्द ललचौहैं चखनु डटि वृंघट पट माँह ।

छल सौं चली छुवाइ कै छिनकु छवीली छाँह ॥ १७६ ॥

अन्वय—वृंघट-पट माँह डटि ललचौहैं चखनु चितर्द । छवीली छल सौं छिनकु छाँह छुवाइ कै चलो ।

चितर्द = देखा । ललचौहैं = मन ललचानेवाले । चखनु = आँखें । छिनकु = एक क्षण । छाँह = छाया, परिछाइ ।

वृंघट के कपड़े के भीतर से डटकर—निःशंक होकर—(उसने) लुमावनी

आँखों से (मुझे) देखा । (फिर वह) छबीली छल से एक क्षण के लिए
अपनी ढाया (मेरे शरीर से) छुलाकर चली गई ।

नोट—याथा छुलाने से नायिका का यह तात्पर्य है कि मैं आप (प्रेमी)
से मिलना चाहती हूँ ।

कीनैं हूँ कोटिक जतन अब कहि काढ़ै कौनु ।

भौ मन मोहन रूप मिलि पानी मैं कौ लौनु ॥ १७७ ॥

अन्वय—कोटिक जतन कीनैं हूँ कहि अब कौनु काढ़ै । मोहन रूप मिलि
मन पानी मैं कौ लौनु मौ ।

कहि = कहै । काढ़ै = निकाले, बाहर करे । लौनु = नमक ।

करोड़ों यब करने पर भी, कहा, अब कौन (उसे) बाहर कर सकता है ?
श्रीकृष्ण के रूप से मिलकर (मेरा) मन पानी में का नमक हो गया—जिस
प्रकार नमक पानी में घुलकर मिल जाता है, उसी प्रकार मेरा मन भी श्रीकृष्ण
से घुल-मिल गया है ।

नेह न नैननु कौं कदू उपजी बड़ी बलाइ ।

नीर भरं नित प्रति रहैं तऊ न प्यास बुझाइ ॥ १७८ ॥

अन्वय—नेह न, नैननि को कदू बड़ी बलाइ उपजी । नित प्रति नीर मरं
रहैं, तऊ प्यास न बुझाइ ।

बलाय = बला, रोग । तऊ = तो भी । नित प्रति = नित्य, प्रतिदिन ।

(यह) प्रेम नहीं है—कौन इसे प्रेम कहता है ? (मेरी) आँखों में
(निस्मंदेह) कोई भारी रोग उत्पन्न हो गया है । (देखो न) सदा पानी से
मरी रहती है—आँसुओं में डब्बी रहती है, तो भी (इनके) प्यास नहीं बुझती !

छला छबीले लाल कौ नवल नेह लहि नारि ।

चूँवति चाहति लाइ उर पहिरति धरति उतारि ॥ १७९ ॥

अन्वय—छबीले लाल को छला नवल नेह लहि नारि चूँवति चाहति
उर लाइ पहिरति उतारि धरति ।

छला = छला, अँगूठी । नवल = नवा । लहि = पाकर । चाहति = देखती
है । लाइ उर = हृदय से लगाकर । धरति = रखती है ।

छबीछे लाल की—रसिया श्रीकृष्ण की—अँगूठी नवीम प्रेम में (उपहार-स्वरूप) पाकर (वह) खी (उसे) चूमती है, देखती है, छाती से लगाकर पहनती है और उतारकर रखती है—पगली-सी ये सारी चेष्टाएँ कर रही है ।

थाकी जतन अनेक करि नैकु न छाड़ति गैल ।

करी खरी दुबरी सुलगि तेरी चाह चुरैल ॥ १८० ॥

अन्वय—अनेक जतन करि थाकी नैकु गैल न छाड़ति । तेरी चाह चुरैल सुलगि खरी दुबरी करी ।

नैकु=जरा, तनिक । गैल=राह । खरी=अत्यन्त । सु लगि=अच्छी तरह लगकर ।

अनेक यल कर-करके थक गई, (किन्तु) जरा भी राह नहीं छोड़ती—पिंड नहीं छोड़ती—छुटकारा नहीं देती । तेरी चाह-रूपी चुड़ैल ने अच्छी तरह लगकर उसे बहुत ही दुबली बना दिया है ।

उन हरकी हँसि कै इतै इन सौंपी मुसुकाइ ।

नैन मिलै मन मिलि गए दोऊ मिलवत गाइ ॥ १८१ ॥

अन्वय—उन हँसिकै हरकी, इतै इन सुसुकाइ सौंपी । गाइ मिलवत नैन मिलै दोऊ मन मिलि गए ।

हरकी=हटकी, रोका । इतै=इधर । मिलवत=मिलाते समय ।

उन्होंने—श्रीकृष्ण ने—हँसकर मना किया (नहीं, मेरी गायों में अपनी गायें मत मिलाओ), इधर इन्होंने—श्रीराधिका ने—मुस्कुराकर सौंप दी (जो मेरी गौण्ये, मैं तुम्हींको सौंपती हूँ), यों गायों को मिलाते समय आँखें मिलते ही दोनों (राधा-कृष्ण) का मन भी मिल गया ।

फेरु कलुक करि पौरि तैं किरि चितई मुसुकाइ ।

आई जावनु लेन तिय नेहैं गई जमाइ ॥ १८२ ॥

अन्वय—कलुक फेरु करि पौरि तैं किरि मुसुकाइ चितई । तिय आई जावनु लेन गई नेहैं जमाइ ।

फेरु=वहाना । पौरि=दरवाजा, झौढ़ी । चितई=देखा । जावनु=वह योड़ा-सा खट्टा दही, जिसे दूध में डालकर दही जमाया जाता है ।

कुछ बहाना करके दरवाजे से लौट (उसने) सुस्कुराकर (मेरी ओर) देखा । (यों) वह स्त्री आई (तो) जामन लेने, (और) गई प्रेम जमाकर—प्रेम स्थापित कर ।

या अनुरागी चित्त की गति समझै नहिं कोइ ।

ज्यौं-ज्यौं वूड़ै स्याम रँग त्यौं-त्यौं उज्जल होइ ॥ १८३ ॥

अन्वय—या अनुरागी चित्त की गति कोइ नहिं समझै । ज्यौं-ज्यौं स्याम-रँग वूड़ै त्यौं-त्यौं उज्जल होइ ।

गति=चाल । कोइ=कोई । स्याम-रँग=काला रंग, कृष्ण का रंग ।
उज्जल=उज्ज्वल, निर्मल ।

इस प्रेमी मन की (अटपटी) चाल कोई नहीं समझता; (देखो तो) यह ज्यौं-ज्यौं (श्रीकृष्ण के) इयाम-रँग में हृता है, त्यौं-त्यौं उज्ज्वल ही होता जाता है ।

होमति सुखु करि कामना तुमहिं मिलन की लाल ।

ज्वालमुखी-सी जरति लखि लगनि अगिन की ज्वाल ॥ १८४ ॥

अन्वय—ज्वाल, तुमहिं मिलन की कामना करि सुखु होमति लखि, लगनि अगिन की ज्वालमुखी-सी जरति ।

होमति=होम करती है, आग में ढालती है । लखि=देखो । लगनि=प्रेम ।

हे ज्वाल ! तुमसे मिलने की कामना करके (वह) सुख का होम (विसर्जन) कर रही है । देखो ! (उसकी) प्रेमाभिन्न की ज्वाला ज्वालमुखी (पर्वत) के समान जल रही है । (वह ज्वाला शान्त नहीं होती, क्योंकि सुखों की आदुनि तो वरावर पड़ रही है ।)

मैं हो जान्यौं लोइननु जुरत बादिहै जोति ।

को हो जानत दीठि कौं दीठि किरकिरी होति ॥ १८५ ॥

अन्वय—मैं जान्यौं हो लोइननु जुरत जोति बादिहै । को जाननु हो दीठि को दीठि किरकिरी होति ।

मैं हो जान्यौं=मैं जानती थी । लोइननु=आँखें । को हो जानत=कौन जानता था । दीठि=नजर, दृष्टि । किरकिरी=आँख में पड़ी धूल ।

मैं जानती थी कि आँखों के मिलने (लड़ने) से आँखों की ज्योति बढ़ेगी (दो के मिलने से दुगुनी ज्योति बढ़ेगी) । (किन्तु) कौन जानता था कि नजर के लिए नजर (बालू की) किरकिरी-सी होती है—उसे केवल पीड़ा ही पहुँचाती है !

जौ न जुगुति पिय-मिलन की धूरि सुकुति मुँह दीन ।

जौ लहियैं सँग सजन तौ धरक नरक हूँ की न ॥ १८६ ॥

अन्वय—जो पिय-मिलन की जुगुति न, सुकुति मुँह धूरि दीन । जौ सजन सँग लहियैं तो नरक हूँ की धरक न ।

जुगुति = उपाय । सुकुति = मुक्ति, मोक्ष । सजन = प्रीतम, अपना प्यारा ।
धरक = घड़क, भय ।

यदि प्रीतम से मिलने का उपाय न हो—यदि इससे प्रीतम न मिल सके—(तो) मोक्ष के सुख पर भी धूल डालो—उसे तुच्छ समझो । (और) यदि अपने प्यारे का संग पाओ, तो नरक का भी डर नहीं—प्रीतम के साथ नरक भी सुखकर है ।

नोट—एक कवि ने इसी भाव पर यों मजमून बाँधा है—

प्रीतम नहीं बजार में, वहै बजार उजार ।

प्रीतम मिलै उजार में, वहै उजार बजार ॥

मोहूँ सौं तजि मोहु दग चले लागि इहिं गैल ।

छिनकु छवाइ छवि गुर-डरी छले छबीलै छैल ॥ १८७ ॥

अन्वय—मोहूँ सौं मोहु तजि दग इहिं गैल लागि चले । छिनकु छवि गुर-डरी छवाइ छबीलै छैल छके ।

मोहूँ सो = मुझसे भी । मोइ = ममता । गैल = राह । छिनकु = एक क्षण । छवाइ = छुलाकर, स्पर्श कराकर । गुर-डरी = गुड़ की डली या गोली, भेली ।

मुझसे भी ममता छोड़कर (मेरे) नेत्र उसी राह पर जाने लगे—उसी नायक के लिए व्याकुल रहते हैं । एक क्षण के लिए शोभा-रूपी गुड़ की गोली (इनके सुख से) छुलाकर (उस) छबीले छैल ने—सुन्दर रसिक ने—(इन्हें) छल लिया ।

को जानै हैै कहा ब्रज उपजी अति आगि ।

मत लागे नैननु लगै चलै न मग लगि लागि ॥ १८८ ॥

अन्वय—को जानै, कहा हैै, ब्रज अति आगि उपजी । नैनु लगै मन लागे मग लगि चलै न ।

को=कौन । कहा=क्या । अति आगि=विचित्र अभि, अर्थात् प्रेम की अभि । लगि लागि=निकट होकर ।

कौन जानता हैै, क्या होगा ? ब्रज में विचित्र आग पैदा हुई हैै, (वह) आँखों में लगकर हृदय में लग जाती हैै । अतएव तू (उस) रास्ते के निकट होकर मीं न चल—उस रास्ते से दूर ही रह ।

तजतु अठान न हठ पस्तौ सठमति आठौ जाम ।

भयो वासु वा वाम कौं रहैै कासु वेकाम ॥ १८९ ॥

अन्वय—सठमति आठौ जाम अठान न तजतु हठ पस्तौ । कासु वेकाम वा वाम कौं वासु भयो रहैै ।

अठान=अतुद्ग्रान । सठमति=मूर्ख । जाम=रहर । वासु=विमुख । वाम=खी । काम=कामदेव । वेकाम=व्यर्थ ।

मूर्खी (कामदेव) आठों पहर अपना अनुष्ठान—सताने की आदत—नहीं छोड़ता—(अर्जीब्र) हठ पकड़ लिया हैै । वह कामदेव व्यर्थ ही उस अवका से (यों) विमुख बना रहता हैै—कुदू हुआ रहता हैै ।

लड़ मौह-सी सुनन की तजि मुरली धुनि आन ।

किए रहति नित रात-दिन कानन लाए क्यन ॥ १९० ॥

अन्वय—मुरली धुनि तजि आन सुनन की मौह-सी लड़ै । नित रात-दिन कानन कान लाए किए रहति ।

सौह=शपथ, कसम । आन=दूसरा । रति=प्रीति, रुचि । किए रहति=(सुनने की) चाह लगाये रहती हैै । कानन=जंगल । लाए=लगाये ।

मुरली की धर्वान छोड़कर दूसरी चीज सुनने की (उसने) कसम-सी चाली हैै । (वह) नित्य रात-दिन जंगल की ओर—बृन्दावन की ओर—(वंशी-ध्वनि में) कान लगाये (प्रेमोन्कठित) रहती हैै ।

भृकुटी-मटकनि पीत-पट चटक लटकती चाल ।

चल चख-चितवनि चोरि चितु लियौ विहारीलाल ॥ १९१ ॥

अन्वय—भृकुटी मटकनि, पीतपट चटक, लटकती चाल, चल चख चितवनि विहारीलाल चितु चोरि लियौ ।

भृकुटी = भैंव । चटक = चमक । लटकती चाल = इठलाती चाल । चल = चंचल । चख = आँखें । चोरि लियौ = चुरा लिया ।

भैंवों की मटकन, पीताम्बर की चमचमाहट, मस्ती की चाल और चंचल नेत्रों की चितवन से विहारीलाल (श्रीकृष्ण) ने चित्त को नुश लिया ।

दग उरझत दूटत कुदुम जुरत चतुर-चित प्रीति ।

परति गाँठि दुरजन हियैं दई नई यह रीति ॥ १९२ ॥

अन्वय—उरझत दग, दूटत कुदुम, प्रीति जुरत चतुर चित, गाँठि परति दुर्जन हियैं, दई, यह नई रीति ।

दग = आँख । उरझत = उलझती है, लडती है । दूटत कुदुम = सगे सम्बन्धी लूट जाते हैं । जुरत = जुइता है; जुटता है । हियैं = हृदय । दई = ईश्वर । नई = अनोखी ।

उलझते हैं नेत्र, दूटता है कुदुम ! प्रीति जुड़ती है चतुर के चित में, और गाँठ पड़ती है दुर्जन के हृदय में ! हे ईश्वर ! (प्रेम की) यह (कैर्या) अनोखी रीति है !

नोट—साधारण नियम यह है कि जो उलझेगा, वही दूटेगा; जो दूटेगा, वही जोड़ा जायगा; और जो जोड़ा जायगा, उसीमें गाँठ पड़ेगी । किन्तु यहाँ सब उलझी बातें हैं, और तुर्दा यह कि उलटी होने पर भी सत्य हैं । यह दोहा विहारी के सर्वोत्कृष्ट दोहों में से एक है ।

चलत घैरु घर घर तऊ घरी न घर ठहराइ ।

समुझि उहाँ घर कौं चलै भूलि उहाँ घर नाइ ॥ १९३ ॥

अन्वय—घर घर वैरु चलत तऊ घरी घर न ठहराइ । समुझि उहाँ घर कौं चलै, भूलि उहाँ घर जाइ ।

वैर = निन्दा, चबाव। तऊ = तो भी। समुक्षि = जान-कूदकर। उहीं = उसी (नायक के घर को)।

वर-घर में निन्दा (की चर्चा) चल रही है—सब लोग निन्दा कर रहे हैं—तो भी वह बड़ी-भर के लिए (अपने) वर में नहीं ठहरती। जान-कूदकर उसी (नायक) के वर जाती है, और भूलकर भी उसीके वर जाती है (प्रेमांध होने से निन्दा की परवा नहीं करती)।

डर न टरै, नींद न परै हरै न काल विपाकु।

छिनकु छाकि उछकै न फिर खरौ विपमु छवि-छाकु॥ १९४॥

अन्वय—डर टरै न, नींद न परै, काल-विपाकु न हरै, छिनकु छाकि फिर न उछकै छवि-छाकु खरौ विपमु।

काल विपाकु = निश्चित समय का व्यतीत हो जाना। छाकि = पीकर। उछकै = उतरै। फिर = पुनः। खरौ = अत्यन्त। विपमु = विकट, विलक्षण। छवि = सौंदर्य। छाक = मदिरा, नशा।

डर से दूर नहीं होता, नींद पड़ती नहीं, समय की कोई निश्चित अवधि बीतने पर भी न अत्यन्त होता। योइः-सा भी पीने से फिर कभी नहीं उतरता। (यह) सौंदर्य का नशा अत्यन्त (विकट या) विलक्षण है।

नोट—नशा डर से दूर हो जाता है, उसमें नींद भी खब आती है, तथा एक निश्चित अवधि में दूर भी हो जाता है। किन्तु सौंदर्य (रूप-मदिग) के नशे में ऐसी चातें नहीं होतीं। यह वह नशा है, जो चढ़कर फिर उतरना नहीं जानता।

झटकि चढ़ति उतरति अटा नैकु न थाकति देह।

भई रहति नट कौ बटा अटकी नागर नेह॥ १९५॥

अन्वय—झटकि अटा चढ़ति उतरति, देह नैकु न थाकति। नागर-नेह अटकी नट कौ बटा भई रहति।

झटकि = झपटकर। अटा = कोठा, अटारी। नैकु = जरा। अटकी = फँसी हुई। नागर = चतुर। नेह = प्रेम। बटा = बटा।

झपटके साथ कोठे पर चढ़ती और उतरती है। (उसकी) देह (इस

चढ़ने-उत्तरने में) जरा भी नहीं थकती । चतुर (नायक) के प्रेम में फँसी वह नट का बड़ा बनो रहता है—जिस प्रश्नार नट अपने गोळ बट्टे को सजा उछाजना और लोकता रहता है, उसी प्रकार वह भी ऊपर-नीचे आती-जाती रहती है ।

लोभ लगे हरि-रूप के करो साँटि जुरि जाइ ।

हाँ इन बैंची बीच हाँ लोइन बड़ी बलाइ ॥ १९६ ॥

अन्वय—हरि-रूप के लोभ लगे जुरि जाइ साँटि करी । इन बीचहीं हाँ बैंची लोइन बड़ी बलाइ ।

साँटि करी=सौदे की बातचीत कर डाली । जुरी जाइ=मिलकर । हाँ=मुझे । लोइन=लोचन, आँखें ।

श्रीकृष्ण के रूप के लोभ में पड़ (उनकी आँखों से) मिलकर (मेरी आँखों ने) सद्गुणद्वा किया—सौदे की बातचीत की । (और चिना मुझसे पूछ-ताढ़ किये ही !) इन्होंने मुझे बीच ही में बेच डाला—ये आँखें बड़ी (बुरी) बला हैं !

नई लगनि कुल को सकुच विकल भई अकुलाइ ।

दुहूँ ओर ऐंची फिरति फिरकी लौं दिन जाइ ॥ १९७ ॥

अन्वय—नई लगनि कुल का सकुच अकुलाइ विकल भई । दुहूँ ओर ऐंची फिरति दिन फिरकी लौं जाइ ।

सकुच=संकोच, लाज । ऐंची फिरति=खिंची फिरती है । फिरकी=चकरी नामक काठ का एक खिलौना, जिसमें ढोरी बाँधकर लड़के नचाते फिरते हैं । लौं=समान । दिन जाइ=दिन कटते हैं ।

(प्रेम की) नई लगन (एक ओर) है और कुल की लाज (दूसरी ओर) है । (इन दोनों के बीच पड़कर) वह बवराकर व्याकुल हो गई है । (यों) दोनों ओर खिंची फिरती हुई (उस नायिका के) दिन चकरी के समान व्यतीत होते हैं ।

इततैं उत उततैं इतैं छिनु न कहूँ ठहराति ।

जक न परति चकरी भई फिरि आवति फिरि जाति ॥ १९८ ॥

अन्वय—इतते उत उतरे इते छिनु कहे न ठहराति । जक न परति चकरी मई फिरि आवति फिरि जाति ।

जक = कल, चैन । फिरि = पुनः । चकरी = एक खिलौना, फिरकी ।

झधर-से-उधर और उधर-से-झधर (ओरती-जाती रहती है) । पूक झण नी कहीं नहीं ठहरती । (उसे) कल नहीं पड़ती । चकरी को तरह पुनः आती और पुनः जाती है ।

तजी संक सकुचति न चित बोलति बाकु कुवाकु ।

दिन-छिनदा छाकी रहति छुट्टु न छिन छवि छाकु ॥ १९९ ॥

अन्वय—संक तजी चित सकुचति न, बाकु कुवाकु बोलति । दिन-छिनदा छाकी रहति छिनु छवि छाकु न छुट्टु ।

बाकु कुवाकु=मुवाच्य कुवाच्य, अंटसंट । छिनदा=रात । छाकी रहति=नशे में मस्त रहती है । छिन=ज्ञान-भर के लिए । छवि=सौंदर्य । छाकु=नशा, मरिदा ।

डर छोड़ दिया । चित में लजाती भी नहीं । अंटसंट बोलती है । दिन-रात नशे में चूर रहती है । एक झण भी सौंदर्य (सूर-मरिदा) का नशा नहीं उतरता ।

ढरे ढार तेहीं ढरत दूजै ढार ढरे न ।

क्यों हूँ आनन आन सौं नैना लागत नै न ॥ २०० ॥

अन्वय—ढार ढरे तेहीं ढरत दूजै ढार न ढरे । क्यों हूँ आन सौं आनन नैना नै न लागत ।

ढार=ढालू जर्मीन । आनन=मुख । आन = दूसरा । नै=छुककर ।

(जिस) ढार पर ढरे हैं—उसी ओर ढरते हैं, दूसरी ढार पर नहीं ढरते—जिस ढालू जर्मीन की ओर लुढ़के हैं, उसी ओर लुढ़केंगे, दूसरी ओर नहीं । किसी भी प्रकार दूसरे के मुख से (मरे) नयन छुककर नहीं लग सकते—दूसरे के मुख को नहीं देख सकते ।

नोट—‘प्रीतम’ ने इसका उद्दृश्य अनुवाद यों किया है—

दले ही ढाला को तज्जकर किसी साँचे नहीं ढलते ।

ये नैना आन आनन पर किसी सूरत नहीं चलते ॥

तृतीय शतक

चकी जकी-सी हूँ रही वूझैं बोलति नीठि ।
कहूँ डीठि लागी लगी के काहू की डीठि ॥ २०१ ॥

अन्वय—चकी जकी-सी हूँ रही वूझैं नीठि बोलति । कहूँ डीठि लागी के काहू की डीठि लगी ।

चकी=चकित, आश्र्वित । जकी=स्तंभित, किंकर्तव्यविमूढ । नीठि=कठिनता से, मुश्किल से । कहूँ=कहीं, किसी जगह । कै=या । काहू=किसी की ।

आश्र्वित और स्तंभित-सी हो रही है । पूछने पर भी मुश्किल से बोलती है । (मालूम होता है) इसकी नजर कहीं जा लगी है या किसी और ही का नजर इसे लग गई है—या तो यह स्वयं किसीके प्रेम के फंडे में फँसी है, या किसीने इसे फँसा लिया है ।

पिय कै ध्यान गही गही रही वही हूँ नारि ।

आपु आपुही आरसी लखि रीझति रिझवारि ॥ २०२ ॥

अन्वय—पिय कै ध्यान गही गही नारि वही हूँ रही । रिझवारि आपुही आपु आरसी लखि रीझति ।

गही-गही=पकड़े । आरसी=आईना । आपु आपु ही=अपने-आप । रिझवारि=मुग्धकारिणी ।

प्रीतम के ध्यान में तल्लीन रहते-रहते मायिका वही हो रही—उसे स्वयं प्रीतम होने का भान हो गया । (अतएव) वह रिझानेवाली आप ही आरसी देखती और अपने-आपपर ही रीझती है—अपने-आपको प्रीतम और अपने प्रतिविम्ब को अपनी मूर्ति समझकर देखती और मुग्ध होती है ।

हाँ ते हाँ हाँ ते इहाँ नेकौ धरति न धीर ।

निसि-दिन डाढ़ी-सी फिरति बाढ़ी-गाढ़ी पीर ॥ २०३ ॥

अन्वय—हाँ ते हाँ हाँ ते इहाँ नेकौ धीर न धरति । गाढ़ी-पीर बाढ़ी निसि-दिन डाढ़ी-सी फिरति ।

हाँ=यहाँ । ते=से । हाँ=वहाँ । नेकौ=जरा भी । डाढ़ी=एक गानेवाली जाति, जो सदा गाँवों में नाच-नाचकर बधाईं गाया करती है; पैंचरिया । डाढ़ी=दग्ध, जला हुआ । कहीं डाढ़ी भी पाठ है ।

यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ (आती-जाती रहती है) । जरा भी धैर्य नहीं धरती । कठिन पांडा बढ़ गई है (जिस कारण) रात-दिन पैंचरियों के समान (या ज़नी हुई-सी इत्तस्ततः) घूमती रहती है ।

समरस समर सकोच बस विवस न ठिकु ठहराइ ।

फिर फिरि उझकति फिरि दुरति दुरि दुरि उझकति जाइ ॥ २०४ ॥

अन्वय—समरस समर सकोच बस विवस ठिकु न ठहराइ । फिरि फिरि उझकति फिरि दुरति दुरि दुरि उझकति जाइ ।

समरस=समान रस, समान भाव । समर=स्मर=कामदेव । ठिकु ठहराइ=ठीक ठहरना, स्थिर रहना । उझकति=उचक-उचककर देखती है । दुरति=छिपती है ।

समान भाव से कामदेव और लज्जा के वश में (पड़ी है) विवश होकर कहीं भी स्थिर नहीं रह सकता । बार-बार उझक-उझककर देखती है, फिर छिप जाती है और छिप-छिपकर उझकती जाती है—अपने आभूषणों को बजाती जाती है ।

उस उरभयौ चित-चोर सौं गुरु गुरुजन की लाज ।

चढ़ैं हिंडोरै सैं हियैं कियैं बनै गृहकाज ॥ २०५ ॥

अन्वय—उस चितचोर सौं उरझयौ, गुरुजन की लाज गुरु । हिंडोरै चढ़ै हियैं सैं गृहकाज कियैं बनै ।

उर = हृदय । गुरु = मारी । गुरुजन = बड़े-बड़े ।

हृदय (तो) चितचोर से उलझा हुआ है और गुरुजनों की लज्जा भी मारी है; (अतएव) हिंडोरे पर चढ़े हृदय से—दुतरफा लिंचे हुए मन से—बर का काम करते ही बनता है ।

सख्ती सिखावति मान-चिधि सैननि वरजति बाल ।

हरए कहि मो हीय मैं सदा विहारीलाल ॥ २०६ ॥

अन्वय—सखी मान-विधि सिखावति, बाल सैननि वरजति । हरए कहि
मो हीय मैं सदा विहारीलाल ।

मान-विधि=मान करने की रीति । हरए=धीरे-धीरे ।

सखी मान करने की रीति सिखलाती है, (तो) बाला (नायिका) हशारे
से उसे मना करती है कि (ये मान की बातें) धीरे-धीरे कह; (क्योंकि) मेरे
मन में सदा विहारीलाल वास करते हैं, (ऐसा न हो कि वे कहीं सुन लें और
रुठ जायँ !)

नोट—इसी भाव का एक श्लोक ‘अमरुक शतक’ में यों है—

मुग्धे मुग्धतयैव नेतुमखिलः कालः किमारभ्यते ।

मानं धस्त्व धृतिं दधान ऋजुतां दूरि कुरु प्रेयसि ॥

सख्येवं प्रतिबोधिता प्रतिवचस्तामाह भीतानना ।

नीचैःशंस हृदि स्थितोहि ननु मे ग्राणेश्वरः श्रोष्यति ॥

उर लीनै अति चटपटी सुनि मुरली धुनि धाइ ।

हौं हुलसी निकसी सु तौ गयौ हूल-सी लाइ ॥ २०७ ॥

अन्वय—उर अति चटपटी लीनै मुरली धुनि सुनि धाइ । हौं हुलसी
निकसी सु तौ हूल-सी लाइ गयौ ।

चटपटी=व्याकुलता । धाइ=दौड़कर । हौं=मैं । हुलसी=उल्लास से
भरकर । सु तौ=सो तो, वह तो । गयौ=गया । हूल-सी लाइ=वरछी-सी
चुमोकर ।

हृदय में अत्यंत व्याकुलता फैल गई । मुरली की ध्वनि सुनते ही दौड़कर
(ज्यों ही) मैं उगंग से सरी बाहर निकली कि वह (मेरे हृदय में) वरछी
चुमोकर चल दिया ।

जौ तब होत दिखादिखी भई अझी इक आँकु ।

लगै तिरीछी डीठि अब है बीछी कौ डाँकु ॥ २०८ ॥

अन्वय—तब दिखादिखी होत जौ इक आँकु अझी भई । तिरीछी डीठि
अब बीछी कौ डाँकु है लगै ।

तव = उस समय । अमी = अमृत । इक आँकु = निश्चय । डीठि = नजर । है = होकर । डॉकु = डंक ।

उस समय देखादेखी होने पर जो निश्चय अमृत मालूम हुई थी (वही तुम्हारी) तिरछी नजर अब विच्छू का डंक होकर लगती है—विच्छू के डंक के समान व्याकुल करती है ।

लाल तुम्हारे रूप की कहौ रीति यह कौन ।

जासों लागैं पलकु दग लागत पलक पलौ न ॥ २०९ ॥

अन्वय—लाल तुम्हारे रूप की, कहौ यह कौन रीति । जासों पलकु दग लागैं पलौ पलकु न लागत ।

लाल = प्यारे, नायक, नन्दलाल श्रीकृष्ण । जासौं = जिससे । पलकु = पल + एकु = एक पल । पलौ = पल-भर के लिए भी ।

हे लाल ! तुम्हारे रूप की, बताओ, यह कौन-सा रीति है कि जिससे एक पल के लिए भी आँखें लग जाने पर—एक क्षण के लिए भी जिसे देख लेने पर—फिर पल-भर के लिए भी पलक नहीं लगती—तींद नहीं पड़ती ।

अपनी गरजनु बोलियतु कहा निहोरो तोहिं ।

तूँ प्यारो मो जीय कौ मो ज्यौ प्यारो मोहिं ॥ २१० ॥

अन्वय—अपनी गरजनु बोलियतु तांहिं निहारो कहा । तूँ मो जीय को प्यारो मो ज्यौ मोहिं प्यारो ।

गरजनु = गरज से । निहोरो = उपकार, एहसान । मो = मेरे । जीय = प्राण । ज्यौ = जीव, प्राण । मोहिं = मुझे ।

(मैं तुमसे) अपनी गरज से ही बोलती हूँ, इसमें तुम्हारे ऊपर मेरा कोई उपकार नहीं है, (क्योंकि) तुम मेरे प्राणों के प्यारे हो, और मेरे प्राण मुझे प्यारे हैं । (अतएव, अपने प्राणों की रक्षा के लिए ही मुझे बोलना पड़ता है ।)

सुख मौं बीती सब निसा मनु सोये मिलि साथ ।

मूका मेलि गहे सु छिनु हाथ न छोड़ै हाथ ॥ २११ ॥

अन्वय—सब निसा सुख मौं बीता मनु साथ मिलि सोए । मूका मेलि सु छिन गहे हाथ हाथ न छोड़ै ।

सों = से । मनु = पानो । मिलि साथ = गाढ़ालिंगन में बद्ध । मूका मेलि = मुढ़ी बाँधकर । गडे = पकड़े ।

सारी रात (स्वप्न में) सुख से बीती । मानो (नायक) साथ ही मिलकर सोया हो । (स्वप्न में ही) मुढ़ी बाँधकर जो एक क्षण के लिए पकड़ा, सो (अब नींद दूटने पर भी) हाथ को हाथ नहीं छोड़ता—(नायिका) अपने ही हाथ को प्रीतम का हाथ समझकर नहीं छोड़ती ।

नोट—स्वप्न में नायिका अपने ही हाथों को पकड़े हुई प्रियतम के आलिंगन का मजा लूट रही थी । इतने में उसकी नींद दूट गई । अब जगने पर मुढ़ी नहीं खुलती । दोनों हाथ परस्पर जकड़े हुए हैं । जागत अवस्था में भी स्वप्न का भान हो रहा है ।

देखौं जागत वैसियै साँकर लगी कपाट ।

कित है आवतु जातु भजि को जानै किहिं बाट ॥ २१२ ॥

अन्वय—जागत देखौं वैसियै कपाट साँकर लगी । कित है आवतु किहिं बाट भजि जातु को जानै ।

जागत = जगकर । साँकर = जंजीर । कपाट = किवाड़ । कित है = किस ओर होकर, किधर से । भजि = भागना । बाट = रास्ता ।

जगकर देखती हूँ तो किवाड़ में पहले की तरह ही जंजीर लगी रहती है (जैसे रात को बंद करके सोई थी), किधर से आते हैं (और) किस रास्ते माग जाते हैं, (यह) कौन जाने ?

नोट—यह स्वप्न दशा का वर्णन है । उत्ताद जौक ने लिखा है—

खुलता नहीं दिल बन्द ही रहता है हमेशा ।

क्या जाने कि आ जाता है तू इसमें किधर से ॥

गुड़ी उड़ी लखि लाल की अँगना अँगना माँह ।

बौरी लौं दौरी फिरति छुअति छबीली छाँह ॥ २१३ ॥

अन्वय—लाल की गुड़ी उड़ी लखि छबीली अँगना अँगना माँह बौरी लौं दौरी फिरति छबीली छाँह छुअति ।

गुड़ी = गुड़ी, पतंग । अँगना = ब्री । अँगना = आँगन । माँह = मै ।
चौरी = पगली । लौं = समान । छवीली = सुन्दरी ।

प्रीतम की गुड़ी उड़ती हुई देखकर (वह) सुन्दरी खी अपने आँगन में
पगली-सी दौड़ती फिरती है और (आँगन में पड़नेवाली उस गुड़ी की) छाया
को छूती फिरती है ।

नोट—गुड़ी की छाया के स्पर्श में ही प्रीतम के अंगस्पर्श का आनन्दानुभव
करती है ; क्योंकि गुड़ी का सम्बन्ध प्रीतम के कर-कमलों से है । इस दोहे पर
कृष्ण कवि ने यों टीका जड़ी है—

नन्दलला नवनागरि पै निज रूप दिखाइ ठगोरी की नाई ।

चाहर जात बनै गृह ते न विलोकिबे को अति ही अकुलाई ॥

प्यारे के चंग इते मै उड़ी लखि मोद भरी निज आँगन आई ।

होत गुड़ी की जितै जित छाँह तितै तित छूवै को डोलति धाई ॥

उनकौ हितु उनहाँ बनै कोऊ करौ अनेकु ।

फिरत काक-गोलकु भयौ दुहूँ देह ज्यौ एकु ॥ २१४ ॥

अन्वय—उनकौ हित उनहाँ बनै कोऊ अनेकु करै, दुहूँ देह एकु ज्यौ
काक-गोलकु भयौ फिरतु ।

हित=प्रीति । काक-गोलकु=कौए के नेत्रों के गढ़े । ज्यौ=जीव, प्राण ।
दुहूँ=दोनों ।

उनका प्रीति उनहाँसे सधर्ती है—(इसलिए दोनों अभिज्ञ रहेंगे ही)—
कोई हजार (निंदा) क्यों न करे । दोनों की देह में एक ही प्राण कौण के
(दोनों) गोलक (के एक ही नेत्र) की तरह संचरण करता है ।

नोट—किंवदन्ती है कि कौए के दोनों गोलकों में एक ही नेत्र होता है,
जो दोनों ओर आता-जाता रहता है । इसलिए देखने के समय कौआ सिर को
इधर-उधर बुमाता है ।

करतु जातु जंती कटनि वढ़ि रस-सरिता-सोतु ।

आलवाल उर प्रेम-तरु तितौ तितौ दृढ़ होतु ॥ २१५ ॥

अन्वय—रस-सरिता-सोतुं बढ़ि जेती कटनि करतु जानु । उर आलबाल प्रेमतरु तितौ तितौ दृढ़ होतु ।

जेती=जितनी । कटनि=कटाव । सरिता=नदी । सोत=धारा । आलबाल=थाला, वृक्ष की जड़ के पास चारों ओर से बनी हुई मैड़ । उर=हृदय । तरु=वृक्ष । तितौ तितौ=उतना ही, अधिकाधिक ।

रस-रूपी नदी का स्रोत बढ़कर जितना ही कटाव करता जाता है, हृदय-रूपी याने का प्रेम-रूपी वृक्ष (कटाव के कारण गिरने के बदले) उतना ही मजबूत होता जाता है ।

खल-बढ़ई बल करि थके कटै न कुबत-कुठार ।

आलबाल उर भालरी खरी प्रेम-तरु-डार ॥ २१६ ॥

अन्वय—खल-बढ़ई बल करि थके कुबत-कुठार न कटै । प्रेम-तरु-डार उर आलबाल खरी झालरी ।

खल=दुष्ट, निन्दक । कुबत=निंदा । कुठार=कुल्हाड़ी । झालरी=हरी-भरी, सुपल्लवित । खरी=विशेष ।

दुष्ट-रूपी बढ़ई जोर लगाकर थक गये, (किन्तु) निन्दा-रूपी कुठार से न काट सके । (वह) प्रेम-रूपी वृक्ष की डाल हृदय-रूपी थाले में और भी हरी-भरी (हो रही) है ।

छुटत न पैयतु छिनकु बसि प्रेम-नगर यह चाल ।

मारथौ फिरि फिरि मारियै खूनी फिरै खुस्याल ॥ २१७ ॥

अन्वय—छिनकु बसि छुटन न पैयतु प्रेम-नगर यह चाल । मारथौ फिरि फिरि मारियै खूनी खुस्याल फिरै ।

छुटन न पैयतु=छुटकारा नहीं पा सकते । छिनकु=क्षण + एकु=एक क्षण । खुस्याल=खुशहाल, आनन्दयुक्त । खूनी=हत्यारा ।

एक क्षण के लिए भी बसकर फिर छुटकारा नहीं पा सकते । प्रेम-नगर की यही चाल है । (यहाँ) मरे हुए को बार-बार मारा जाता है और हत्या करने-वाला स्वच्छन्द घूमता है ।

निरदय नेहु नयौ निरखि भयौ जगतु भयभीतु ।

यह न कहूँ अब लौं सुनी मरि मारियै जु मीतु ॥ २१८ ॥

अन्वय—नयौ निरदय नेहु निरखि जगत सबभीतु भयौ । यह अब लौं कहूँ न सुनी जु मीत मरि मारियै ।

निरदय=निर्दय, दयाहीन, निष्ठुर । निरखि=देखकर । लौं=तक । जु=जो । मीत=प्रेमी ।

(तुम्हारे इस) नये प्रकार के निष्ठुर प्रेम को देखकर संसार जयभीत हो गया है । यह बात तो अब तक कहीं न सुनी थी कि जो प्रेमी हो वह (स्वयं सी) मरे (और अपनी प्रेमिका को भी) मारे—आप सी विरह की आग में जले और अपनी प्रेमिका को भी जलावे ।

क्यौं बसियै क्यौं निबहियै नीति नेह-पुर नाँहि ।

लगा-लगी लोइन करै नाहक मन बैधि जाँहि ॥ २१९ ॥

अन्वय—क्यौं बसियै क्यौं निबहियै नेह-पुर नीति नाहि । लगा-लगी करै लोइन, मन नाहक बैधि जाँहि ।

नीति = न्याय । नेह-पुर = प्रेम-नगर । लगा-लगी = लाग-डॉट, मुठमेड़ । लोइन = आँखें । नाहक = बेकसूर, निरपराध ।

कैसे बसा जाय और (बसने पर) कैसे निर्वाह हो ! (इस) प्रेम-नगर में न्याय तो है ही नहीं । (देखो) परस्पर लड़ता-फगड़ता तो हैं औँखें, और बेकसूर मन कैद किया जाता है !

देह लग्यौ डिग गेहपति तऊ नेहु निरवाहि ।

नीची अँखियनु हाँ इतै गई कनखियनु चाहि ॥ २२० ॥

अन्वय—देह लग्यौ डिग गेहपति तऊ नेहु निरवाहि । नीची अँखियनु हाँ इतै कनखियनु चाहि गई ।

देह लग्यौ=देह से सदा हुआ । डिग=निकट । गेहपति=गृहपति=स्वामी । तऊ=तो भी । नेहु=प्रेम । नीची अँखियन=नीची आँखों से=नीची निगाह से । चाहि=देखना ।

देह से सटा हुआ निकट ही उसका पति था, तो भी (वह) प्रेम निचाहकर नीची निगाह से ही इधर कनखियों से देख गई ।

हौं हिय रहित हर्द छर्द नर्द जुगुति जग जोइ ।

आँखिन आँखि लगै खरी देह दूबरी होइ ॥ २२१ ॥

अन्वय—जग नर्द जुगुति जोइ हौं हिय हर्द छर्द रहति । आँखिन लगै आँखि, खरी दूबरी होइ देह ।

हौं=मैं । हर्द=आश्र्य । छर्द=छार्द हुर्द । जुगुति=युक्ति । जोइ=देखकर । आँखिन=आँखों से । खरी=अत्यन्त ।

संसार में यह नर्द युक्ति देखकर मैं तो हृदय में आश्र्य से छार्द रहती हूँ—मेरा हृदय आश्र्य में डूबा रहता है । आँखों से लगती हैं आँखें और अत्यन्त दुबली होती है देह ।

प्रेमु अडोलु डुलै नहीं मुँह बोलै अनखाइ ।

चित उनको मूरति वसी चितवनि माँहि लखाइ ॥ २२२ ॥

अन्वय—प्रेमु अडोलु डुलै नहीं मुँह अनखाइ बोलै । चित उनकी मूरति वसी चितवनि माँहि लखाइ ।

अडोलु=दड़, अटल । अनखाइ=अनखाकर, मुँशलाकर । चितवनि=आँख, नजर । लखाइ=देख पड़ती है ।

प्रेम स्थिर है, वह हिलने-दुलने का नहीं—समझाने-बुझाने से लूटने का नहीं । (प्रेम छोड़ती नहीं, उलटे) मुँह से अनखाकर बोलती है । (उसके) चित्त में उनकी—नावक की—मूर्ति वसी है (जो) उसकी आँखों में (सगष) दीख पड़ती है—उसकी प्रेमरंजित आँखों के देखते ही प्रकट हो जाता है कि वह किसीके प्रेम में फँसी है ।

चितु तरसतु न मिलतु बनत बसि परोस कै बास ।

छाती फाटी जाति सुनि टाटी ओट उसास ॥ २२३ ॥

अन्वय—चित तरसतु परोस कै बास बसि मिलतु न बनत टाटी ओट उसास सुनि छाती फाटी जाति ।

उसास=उच्छ्वास, जोर-जोर से साँस लेना ।

(मिलने के लिए) चित्त तरसता है, (किन्तु) पड़ोस के घर में रहकर—
अत्यन्त निकट रहकर—मौ मिलते नहीं बनता। टाँटी की ओट से ही उसका
(विरहजनित) उच्छ्रवास सुनकर ढारी फटी जाती है।

जाल-रंग्र-मग अँगनु कौ कछु उजास सौ पाइ ।

पीठि दिए जग त्यौं रह्यौं डीठि भरोखे लाइ ॥ २२४ ॥

अन्वय—जाल-रंग्र-मग अँगनु कौ कछु उजास सौ पाइ । जग त्यौं पीठि
दिए डीठि झरोखे लाइ रह्यौं ।

जाल-रंग्र=जाली के छेद । मग=राह । उजास=उजाला । पाइ=
पाकर । जग त्यौं=संसार की ओर । पीठि दिये रहै=(संसार से) विमुख या
उदासीन रहता है ।

(झरोखे से लगा) जाली के छेदों के रास्ते से आग का कुछ उजाला-सा
पाकर—जाली के छेदों से बाहर फूट निकलनेवाली तुम्हारी देह-युति को
देखकर—(उस नायक ने) संसार की ओर पीछे ढूँढ़ी है—संसार को भुला
दिया है (और) मदा अपनी नजर (तुम्हारे) झरोखे से लगाये रहता है ।

जद्यपि सुन्दर सुधर पुनि सगुनौ दीपक-देह ।

तऊ प्रकास करे तितैं भरियै जितैं सनेह ॥ २२५ ॥

अन्वय—जद्यपि दीपक-देह सुन्दर सुधर पुनि सगुनौ तऊ तितैं प्रकास करे
जितैं सनेह भरियै ।

सुधर=सुधङ्ग=अच्छी गढ़न का । सगुनौ=गुणयुक्त और (गुण=
डोरा) बत्ती-सहित । तऊ=तो भी । तितैं=उतना । जितैं=जितना । सनेह=
प्रेम, तेल ।

यद्यपि दीपक-रूपी शरीर सुन्दर है, सुधङ्ग है, और फिर गुणयुक्त है (दीपक-
अर्थ में—बत्ती-सहित है), तो भी वह उतना ही प्रकाश करेगा, जितना उसमें
प्रेम भरोगे (दीपक-अर्थ में—तेल भरोगे ।)

दुचितैं चित न हलति चलति हँसति न मुक्ति विचारि ।

लिखत चित्र पिड लखि चितैं रही चित्र-लौं नारि ॥ २२६ ॥

अन्वय—पित्र चित्र लिखत लग्नि नारि चित्र-लौं चितै रही । विचारि दुचित न चलति-हलति न हँसति-भुकति ।

दुचितै चित=दुविधा में पड़ा चित । हलति=हिलना-डोलना । विचारि=विचार कर । चितै=देख रही है ।

प्रीतम को किसी स्त्री का चित्र बनाते हुए देखकर वह स्त्री तसवीर-सी (अचल-अटल) होकर (प्रीतम के पांछे चुपचाप खड़ी) देख रही है । सोचती है, यह मेरा चित्र बन रहा है, या किसी अन्य स्त्री का । इस दुविधा में पड़ने से वह न आगे बढ़ती है, न हिलती-डोलती है, न हँसती है और न भुकती ही है ।

नैन लगे तिहिं लगनि जनि छुटै छुटै हूँ प्रान ।

काम न आवत एक हूँ तेरे सौक सयान ॥ २२७ ॥

अन्वय—नैन तिहिं लगन जु लगे प्राण छुटै हूँ जनि छुटै । तेरे सौक सयान एक हूँ काम न आवत ।

सौक=सौ+एक=अनेक । सयान=चतुराई ।

आँखें ऐसे (भुरे) लग्न में उनसे लगी हैं कि प्राण छूटने पर भी नहीं छूट सकतीं—(हे सखि !) तुम्हारी सैकड़ों चतुराई में एक भी काम नहीं आती—एक भी सफल नहीं होती ।

साजे मोहन-मोह कौं मोहीं करत कुचैन ।

कहा करौं उलटे परे टोने लोने नैन ॥ २२८ ॥

अन्वय—साजे मोहन मोह कौं, मोहीं कुचैन करत । कहा करौं लोने नैन दोने उलटे परे ।

मोहन = श्रीकृष्ण । मोहीं = मुझे ही । कुचैन = व्याकुल । दोने = जादू ।
लोने = लावण्यमय, सुन्दर ।

(मैंने इन्हें काजल आदि से) सजाया तो मोहन को मोहने के लिए, और मुझे ही व्याकुल बनाती हैं । क्या करूँ, इन लावण्यमयी आँखों के दोने उलटे पड़ गये ।

नोट—कहा जाता है कि जादू उलट जाने पर जादू चलानेवाले पर ही विपत्ति आती है। इस दोहे में यही बात खूबी से कहा गई है। इस दोहे से विहारी की तंत्रशास्त्र की जानकारी प्रकट होती है।

अलि इन लोइन-सरनि को खरौ विषम संचारु।

लगै लगाएँ एक-से दुहुअनि करत सुमार॥२२९॥

अन्वय—अलि इन लोइन-सरनि को संचार खरौ विषम दुहुअनि सुमार करत लगै लगाएँ एक-से।

अलि = सखि । लोइन = आँख । सरनि = बाणों । खरौ=अत्यन्त । विषम=अद्भुत । संचार=गति । अनी=बाण की नोक । सुमार=अच्छी मार, गहरी चोट ।

सर्वी ! इन नेत्र-रूपी बाणों की गति अत्यन्त अद्भुत है। (इनकी) दोनों ओर की नोकें चोट करती हैं—(बागे की निशान मारनेवाली नोक और धगुप की ढोरी से सटाकर चक्कानेवाली पीछे की नोक—दोनों शिकार करती हैं)। (अतएव) इनका लगाना और लगाना—नेत्र-रूपी बाण चक्काकर किसीको बाथक करना और किसीके नेत्र-रूपी बाण से बायक होना—(दोनों) एक से (दुःखदायी) हैं।

चब-रुचि चूरन डारि के ठग लगाइ निज साथु।

रह्यौं राखि हठि लै गयौं हथाहथी मन हाथु॥२३०॥

अन्वय—चब-रुचि चूरन डारि के ठग निज साथु लगाइ। हठि राखि रह्यौं हथाहथी मन हाथु लै गयौं।

चब-रुचि=आँखों की सुन्दरता । चूरन=बुकनी, भभूत । हथाहथी=हाथों-हाथ, अति शीघ्र ।

आँखों की सुन्दरता-रूपी भभूत डालकर उस ठग (नाथक) ने उसे अपने साथ लगा लिया, यद्यपि (मैं) हठ करती ही रह गई—रोकती ही रह गई—(किन्तु) वह हाथों-हाथ मेरे मन को हाथ (वश) में करके चलता बना।

नोट—ठग लोग मन्त्र-गढ़ी भभूत रखते हैं, जिसपर वह भभूत डालते हैं, वह उनके पीछे लग जाता है। इस दोहे में इसीका रूपक बँधा गया है।

जौ लौं लखौं न कुल-कथा तौ लौं ठिक ठहराइ ।

देखैं आवत देखिही क्यौं हूँ रह्यौं न जाइ ॥ २३१ ॥

अन्वय—जौ लौं न लखौं तौ लौं कुल-कथा ठिक ठहराइ । देखैं आवत देखिही क्यौं हूँ न रह्यौं जाइ ।

लौं = तक । लखौं = देखूँ । कुल-कथा = कुल की कथा, सतीत्व आदि की वातें । देखिही = देखने से ही । क्यौं हूँ = किसी प्रकार ।

जबतक (उन्हें) नहीं देखती हूँ, तभीतक कुल की कथा ठीक ठहरती है—अच्छी जँचती है, (किन्तु जब) वे देखने में आते हैं—वे दिखलाई पड़ते हैं (तब) देखे बिना किसी प्रकार नहीं रहा जाता—बरवस उन्हें देखना ही पड़ता है ।

बन-तन कौं निकसत लसत हँसत हँसत इत आइ ।

दग-खंजन गहि लै चल्यौ चितवनि-चैपु लगाइ ॥ २३२ ॥

अन्वय—बन तन कौं निकसत लसत हँसत-हँसत इत आइ । चितवनि-चैपु लगाइ दग-खंजन गहि लै चल्यौ ।

बन-तन = बन की ओर । इत = इधर । दग = आँख । चितवनि = नजर, दृष्टि । चैपु = लासा, गोंद ।

बन की ओर तिक्कलते समय सुशोभित हो (बन-ठन) कर हँसते हँसते इधर आये और दृष्टि-रूपी लासा लगा (मेरी) आँख-रूपी खंजन को पकड़कर ले चके ।

चितु-बितु बचतु न हरत हठि लालन-दग बरजोर ।

सावधान के बटपरा ए जागत के चोर ॥ २३३ ॥

अन्वय—चितु-बितु न बचतु हठि हरत लालन-दग बरजोर । ए सावधान के बटपरा जागत के चोर ।

चितु=मन । बितु=धन । लालन=कृष्ण । दग = आँखें । बरजोर=जबरदस्त । बटपरा=बटमार, राहजन, ठग ।

मन-रूपी धन नहीं बचता । हठ करके (वे) छीन लेते हैं । कृष्ण के नेत्र बड़े जबरदस्त हैं । ये चौकन्ने आदमी के लिए तो (भूल-भुलैया में डालकर

लूटनेवाले) ठग हैं, और लगे हुए के लिए (लुक़-छिपकर चुरानेवाले) चोर हैं।

नोट—जो चौकन्ने हैं वे नहीं ठगे जा सकते, और जो जगे हैं उनके घर में चोरी नहीं हो सकती। किन्तु नेत्र ऐसे जबरदस्त हैं कि चौकन्ने को ठगते और जगे हुए (के माल) को चुराते हैं। कितनी अच्छी कल्पना है!

सुरति न ताल रु तान की उछ्यौ न सुरु ठहराइ।

एरो रागु विगारि गौ वैरी बोलु सुनाइ॥ २३४॥

अन्वय—ताल रु तान की सुरति न उछ्यौ सुरु न ठहराइ। एरो वैरी बोलु सुनाइ रागु विगारि गौ।

सुरति = सुधि । विगारि गौ = विगाइ गया ।

ताल और तान की सुधि नहीं रही। उठाया हुआ सुर भी नहीं ठहरता। अरो (सखी) ! वह वैरी (नायक) बोली सुनाकर (सारा) राग विगाइ गया।

नोट—नायिका गौ रही थी। उसी समय उस ओर से नायक गुजरा और कुछ बोलकर चला गया। उसी पर नायिका का यह कथन है।

ये काँटे मो पाँइ गड़ि लीन्ही मरत जिवाइ।

प्रीति जतावतु भीति सौं मीतु जु काढ्यौ आइ॥ २३५॥

अन्वय—ये काँटे मो पाँइ गड़ि मरत जिवाइ लीन्ही। जु प्रीति जतावतु भीति सौं मीतु आइ काढ्यौ।

मो = मेरे । जतावतु = प्रकट करते हुए ।

अरे काँटे ! (तूने) मेरे पैर में गड़कर (मुझे) मरने से जिला लिया, (क्योंकि) प्रीति प्रकट करते हुए डरते-डरते प्रीतम ने उसे (तुम्हे) आकर निकाला ।

नोट—‘प्रीतम’ ने इसका उद्दृ-अनुवाद यों किया है—

मेरे इस खार-पा ने मुझको मरने से बचाया है।

वो गुलरू खौचने को अज रहे शफकत जो आया है॥

जात सचान अयान ढै वे ठग काहि ठगें न।

को ललचाइ न लाल के लखि ललचौहें नैन॥ २३६॥

अन्वय—सयान अयान है जात वं ठग काहि न ठगे । लाज के ललचौहें नैन लखि को न ललचाइ ।

है जात = हो जाता है, बन जाता है । सयान = चतुर । अयान = अजान, अशान, मूर्ख । काहि = किसे । ललचौहें = ललचानेवाले ।

चतुर भी मूर्ख बन जाते हैं । वे इग किसे नहीं ठगते । श्रीकृष्ण के (उन) लुभावने नेत्रों को देखकर कौन नहीं ललचता ?

जसु अपजसु देखत नहीं देखत साँवल गात ।

कहा करौं लालच-भरे चपल नैन चलि जात ॥ २३७ ॥

अन्वय—जसु अपजसु नहीं देखत, देखत साँवल गात । कहा करौं लालच-भरे चपल नैन चलि जात ।

साँवल = श्यामल । कहा = क्या । चपल = चंचल ।

यश-अपयश (कुछ) नहीं देखते—किस काम के करने से यश होगा और किस काम के करने से अपयश, यह नहीं विचारते; देखते हैं (केवल श्रीकृष्ण का) साँवला शरीर । क्या करूँ, लालच से भरे (मेरे) चंचल नयन (बरबस उनके पास) चले जाते हैं ।

नख-सिख-रूप भरे खरे तौ माँगत मुसकानि ।

तजत न लोचन लालची ए ललचौहीं वानि ॥ २३८ ॥

अन्वय—नख-सिख रूप खरे भरे तौ मुसकानि माँगत । लालचा लोचन ए ललचौहीं वानि न तजत ।

नख-सिख = नख से शिखा तक, एँड़ी से चोटी तक, समूचा शरीर । खरे = अत्यन्त, पूर्ण रूप से । ललचौहीं वानि = ललचाने की आदत ।

(श्रीकृष्ण के) नख-शिख सौंदर्य से मेरे नेत्र पूर्ण रूप से भरे हैं, तो भी मुसकुराहट माँगते हैं—श्रीकृष्ण के सम्पूर्ण शरीर की अपार शोभा देखकर भी नृस नहीं होते, उनकी मुसकुराहट देखना चाहते हैं । (मेरे) लालची नेत्र (अग्नी) वह ललचाने की आदत छोड़ते ही नहीं ।

छूवै छिगुनी पहुँचौ गिलत अति दीनता दिखाइ ।

बलि वावन की व्यौतु सुनि को बलि तुम्हैं पत्थाइ ॥ २३९ ॥

अन्वय—अति दीनता दिखाइ छिगुनी छै पहुँचौ गिलत । बलि बावन की व्यौंतु सुनि बलि तुम्हैं को पत्याइ ।

छै = छूकर । छिगुनी = कनिष्ठा अँगुली । गिलत = पकड़ लेना । बलि = पाताल के दैत्यराज । व्यौंतु = छुलमय ढंग । बलि = बलैया । पत्याइ = प्रतीति करे, विश्वास करे ।

अत्यन्त दीनता दिखाकर छिगुनी छूते ही पहुँचा पकड़ लेते हो । किन्तु बलि और बावन की कहानी सुनकर, बलैया, तुम्हें कौन पतिआय—तुम्हारा विश्वास कौन करे ?

नोट—राखिका से कृष्ण कोई मामूली चीज माँग रहे हैं । राखिका क्षिड़कती है—नहीं, ऐसा होने का नहीं, यह देते ही तुम दूसरी चीज माँगने लगोगे; यों होते-होते मेरे सारे शरीर पर ही कब्जा कर लोगे; बलि से मी तुमने महज तीन ढेग जमीन माँगी थी, और उसका सर्वस्व ही इर लिया; अँगुली पकड़कर पहुँचा पकड़ना तो तुम्हारी आदत ही है; अतएव, हयो, दूर हो ।

नैना नैकु न मानहाँ कितौ कह्यौ समुझाइ ।

तन मन हारै हूँ हँसैं तिनसौं कहा वसाइ ॥ २४० ॥

अन्वय—नैना नैकु न मानहाँ कितौ समुझाइ कह्यौ । तन मन हारै हूँ हँसैं, तिनसौं कहा वसाइ ।

नैकु = जग । कितौ = कितना भी । कह्यौ = कहा । हारै हूँ = हारने पर भी । तिनसौं = उनसे । कहा वसाइ = क्या वस चले ।

नेत्र जरा भी (मेरी बात) नहीं मानते, कितना भी समझाकर कहा । (भला) जो तन-मन हारकर भी हँसता ही रहे, उसपर (किसका) कौन वस ? —जो सर्वस्व गँवाकर भी हँसता ही रहे, उसको कौन मिखा-पड़ा सकता है ?

लटकि लटकि लटकतु चलतु डटतु मुकुट की छाँह ।

चटक भरूँ नदु मिलि गयौ अटक-भटक बट माँह ॥ २४१ ॥

अन्वय—लटकि लटकि लटकतु चलतु मुकुट की छाँह डटतु । चटक भरूँ नदु अटक-भटक बट माँह मिलि गयौ ।

लटकि लटकि लटकतु चलतु = झूमते हुए (इठलाता) चलता है । डटतु = देखता है । चटक भर्यौ = चटकीला, रँगीला । बट = बाट, रास्ता । माँह = मैं ।

झूमते-झामते हुए चलता है, चलते हुए अपने मुकुट की परिधाहीं देखता है । वह चटकीला नट (श्रीकृष्ण), अटकते-मटकते हुए, रास्ते में (मुझसे अकस्मात्) मिल गया ।

फिर फिरि वूमति कहि कहा कह्यौ साँवरे-गात ।

कहा करत देखे कहाँ अली चलो क्यौं बात ॥ २४२ ॥

अन्वय—फिरि फिरि वूमति कहि साँवरे गात कहा कह्यौ । कहा करत कहाँ देखे अली क्यौं बात चली ।

कहि = कहो । कहा = क्या । अली = सखी । साँवरे-गात = श्याम, श्रीकृष्ण ।

बार-बार पूछती है कि कहो, उस साँवरे शरीर बाले ने (तुमसे) क्या कहा ? क्या करते हुए कहाँ (तुमने उन्हें) देखा ? और, सखी ! (मेरी) बात कैसे-कैसे चली—किस प्रकार मेरी चर्चा छिड़ी ?

तो ही निरमोही लग्यौ मो ही इहैं सुभाउ ।

अनआएं आवै नहीं आएं आवतु आउ ॥ २४३ ॥

अन्वय—तो ही निरमोही मो ही इहैं सुभाउ लग्यौ । अनआएं आवै नहीं आएं आवतु आउ ।

ही = हृदय, मन । अनआएं = विना आये ।

तुम्हारा मन निदुर है (उसकी संगति से) मेरे मन का मी यही स्वभाव हो गया है—वह मी निदुर हो गया है । (इसलिए) विना (तुम्हारे) आये (मेरा मन मेरे पास) आता ही नहीं, (तुम्हारे) आने से आता है (अतएव, तुम) आओ ।

नाट—प्रीतम को बुलाने के लिए कैसा तर्क है ! वाह !!

दुखहाइनु चरचा नहीं आनन आनन आन ।

लगी फिर दूका दिये कानन कानन कान ॥ २४४ ॥

अन्वय—दुखहाइनु आनन आनन चरचा नहीं आन । कानन कानन कान दिए दूका लगी फिरे ।

दुखहाइनु = दुःख देनेवाली । आनन = मुख । आनन = अन्य लोगों की । आन = शपथ । दूका लगी = दूका लगाकर, छिपकर । कानन = बन ।

(इन) दुःख देनेवालियों के मुख में दूसरों की चर्चा नहीं रहती— (मैं यह बात) शपथ (खाकर कह सकती हूँ) । बन-बन में कान दिये ये दूका लगी फिरती हैं—विहार-स्थलों के निकट छिपकर हम दोनों की गुप्त वारें सुनने के लिए कान लगाये रहती हैं ।

वहके सब जिय की कहत ठौरु-कुठौरु लखै न ।

छिन औरै छिन और से ए छवि-छाके नैन ॥ २४५ ॥

अन्वय—वहके जिय की सब कहत, ठौरु-कुठौरु न लखै । छवि-छाके पु नैन छिन औरै छिन और से ।

छवि-छाके = श्रीभा-रूपी नशा पिये ।

बहककर जी की सारी (बातें) कह देते हैं । ठौर-कुठौर—मौका-बेमौका—कुछ नहीं देस्तते । सौंदर्य के नशे में मस्त ये नेत्र क्षण में कुछ और हैं, और (दूसरे) क्षण में कुछ और ही से हैं—प्रति क्षण बदलते रहते हैं ।

नोट—नशे में आदनी को बोलने-बतराने का शऊर नहीं रहता । प्रत्येक क्षण उसकी बुद्धि बदलती रहती है । ‘मतवाले की बहक’ प्रसिद्ध है ।

कहत सबै कवि कमल-से मो मति नैन पखानु ।

नतरुक कत इन विय लगत उपजतु विरह-कृसानु ॥ २४६ ॥

अन्वय—सबै कवि कमल-से कहत, मो मति नैन पखानु । नतरुक [इन] विय लगत विरह-कृसानु कत उपजतु ।

मो = मेरे । पखानु = पस्थर । नतरुक = नहीं तो । विय = दो ।

कृसानु = आग ।

सभी कवि (नेत्रों को) कमल के समान कहते हैं, (किन्तु) मेरे मत से ये (नेत्र) पस्थर (के समान) हैं । नहीं तो इनके—दो के—लगने से (एक दूसरे की आँखों के परस्पर टकराने से) विरहरूपी आग कैमे पैदा होती ?

नोट—पत्थर के परस्पर टकराने से आग पैदा होती है ।

लाज-लगाम न मानही नैना मो बस नाहिं ।

ए मुँहजोर तुरंग ढ्यौं एँचत हूँ चलि जाहिं ॥ २४७ ॥

अन्वय—लाज-लगाम न मानही नैना मो बस नाहिं । ए मुँहजोर तुरंग ढ्यौं एँचत हूँ चलि जाहिं ।

मो=मेरे । मुँहजोर=शोख, निरंकुश, लगाम की धाक न माननेवाला । तुरंग=घोड़ा । ढ्यौं=समान । एँचत हूँ=खींचते रहने पर भी ।

लाज-रुगी लगाम को नहीं मानते । नेत्र मेरे बश के नहीं हैं । ये मुँहजोर घोड़े की तरह (लगाम) खींचते रहने पर भी (बढ़ते ही) चले जाते हैं ।

इन दुखिया अँखियानु कौं सुखु सिरज्योई नाहिं ।

देखैं बनैं न देखतै अनदेखैं अकुलाहिं ॥ २४८ ॥

अन्वय—इन दुखिया अँखियानु कौं सुखु सिरज्योई नाहिं । देखैं न देखतै बनैं, अनदेखैं अकुलाहिं ।

सिरज्योई नाहिं=सृष्टि ही नहीं हुई, बनाया ही न गया । देखते=देखते हुए, देखने के समय ।

इन दुखिया अँखों के लिए सुख की सृष्टि ही नहीं हुई । (अपने प्रीतम को) देखते समय (तो इनसे) देखा नहीं जाता—प्रेमानन्द से इनमें आँसू ढबडबा आते हैं, फलतः देख नहीं पातीं—(और उन्हें) विना देखे व्याकुल-सी रहती है ।

नोट—भारतेन्दु हरिचन्द्र की इसपर एक कुंडलिया यों है—

विन देखे अकुलाहि, बावरी है है गोवै ।

उधरी उधरी फिरी, लाज तजि सब सुख खोवै ॥

देते श्रीहरिचन्द्र नयन भरि लखै न सखियाँ ।

कठिन प्रेमगति रहत सदा दुखिया ये अँखियाँ ॥

लरिका लैवै कैं मिसनु लंगर सो डिग आइ ।

गयौं अचानक आँगुरी छाती छैबु छुवाइ ॥ २४९ ॥

अन्वय—जरिका लैबै कै मिसनु लंगर मो ढिग आइ । छैलु ढाती अचानक आँगुरी छुवाइ गयौ ।

मिसनु = बहाने से । लंगर = टीठ । ढिग = निकट । अचानक = अकस्मात् । ढाती = ततन । छैलु = रँगरसिया नायक ।

(मेरी गोद के) बच्चे को लेने के बहाने वह ढाठ मेरे निकट आया (और बच्चे को लेते समय) वह छुवाला मेरी ढाती में अकस्मात् जँगुली छुजा गया ।

नोट—इस दोहे में विहारी ने प्रेमी और प्रेमिका के हार्दिक भावों की तस्वीर-सी खींच दी है । विद्युथ रसिक ही इस दोहे के मर्म को समझ सकते हैं ।

हुगकु डगति-सी चलि ठठुकि चितई चली सँभारि ।

लियं जाति चितु चोरटी वहै गोरटी नारि ॥ २५० ॥

अन्वय—हुगकु डगति-सी चलि ठठुकि चितई सँभारि चली वहै चोरटी गोरटी नारि चित लिये जाति ।

डगकु = डग एकु = एक डेग । डगति-सी = डगती हुई-सी, डगमगाती हुई-सी । चितई = देखकर । चोरटी = चाढ़ी, चुरानेवाली । गोरटी = गोरी ।

एक डेग डगमगाती हुई-सी चलकर ठिठक गई—ठिठककर खड़ी हो गई । (किर भुमि) देख अपनेको सँमालकर चलती वर्ना । वहाँ चाढ़ी गोरी खो (अपने इन प्रेमपूर्ण भावों को दिखाकर) चित (चुरावे) लिये जाती है ।

चिलक चिकनई चटक सौं लफति सटक लौं आइ ।

नारि सलोनी साँवरी नागिन लौं डँसि जाइ ॥ २५१ ॥

अन्वय—चिलक चिकनई चटक सौं सटक लौं लफति आइ । साँवरी सलोनी नारि नागिन लौं डँसि जाइ ।

चिलक = चमक । चिकनई = चिकनाहट । चटक = चटकालापन । लौं = सहित । सटक = बेत वा चौक की मुचायम छड़ी । सलोनी = लावण्यव्युक्त । लौं = समान ।

चमचमाहट, चिकनाहट और चटकालेपन सहित बेत की छड़ी-सी लचकती हुईं (मेरे पास) आकर वह साँवरे शरीर वाली लावण्यव्युक्ती नायिका (मुके) नागिन के समान डँस जाती है ।

रह्यौ मोहु मिलनौ रह्यौ यौं कहि गहैं मरोर ।

उत दै सखिहिं उराहनौ इत चिर्तई मो ओर ॥ २५२ ॥

अन्वय—मोहु रह्यौ मिलन रह्यौ यौं कहि मरोर गहैं । उत सखिहिं उराहनौ दै इत मो ओर चिर्तई ।

गहैं मरोर = मुड़ गई । उत = उधर । इत = इधर । चिर्तई = देखा ।

“प्रेम मी गया और मिलना मी गया”—ऐसा कहकर वह मुड़-सी गई—
अपना मुँह फेर-सा लिया । और (इस प्रकार) उधर सखी से उल्हना देकर
(पुनः) इधर मेरी ओर (कठाक्ष करते हुए) देखा ।

नहिं नचाइ चितवति दगनु नहिं बोलति मुसुकाइ ।

ज्यौं-ज्यौं रुखी रुख करति त्यौं-त्यौं चितु चिकनाइ ॥ २५३ ॥

अन्वय—दगनु नचाइ नहिं चितवति, मुसुकाइ बोलति नहिं, ज्यौं-ज्यौं
रुख रुखी करति त्यौं-त्यौं चित चिकनाइ ।

दगनु = आँखें । रुखी = उदासीन, शुष्क । रुख = चेहरा, माव ।

आँखों को नचाकर नहीं देखती—आँखों से मावमंगी नहीं करती, और
मुस्कुराकर बोलती भी नहीं । किन्तु इस प्रकार ज्यौं-ज्यौं वह अपना रुख रुखा
करती है—ज्यौं-ज्यौं वह रुखाई प्रकट करती है—त्यौं-त्यौं (मेरा) चित्त
चिकनाता ही है—प्रेम से स्तिर्घ ही होता है ।

नोट—प्रेमिका के कोध से प्रेमी असनुष्ट नहीं । रुखाई से चित्त के रुखड़े
होने की जगह चिकना होना कवि की वर्णन-चातुरी प्रकट करता है ।

सहित सनेह सकोच सुख स्वेद कंप मुसकानि ।

प्रान पानि करि आपनैं पान धरे मो पानि ॥ २५४ ॥

अन्वय—सनेह सकोच सुख स्वेद कंप मुसकानि सहित प्रान आपनैं पानि
करि, मो पानि पान धरे ।

स्वेद = पसीना । कंप = कॉपना । पानि करि = हाथ में करके । पान =
बीड़ा । मो = मेरे । पानि = हाथ ।

प्रेम, संकोच, सुख, पसीना, कंपन और मुस्कुराहट सहित—(प्रेम में
पर्गी, लाज में गड़ी, सुख में सनी, पसीने से भिगी, कॉपती और मुस्कुराती हुई)

मेरे प्राण को अपने हाथ (वश) में करके (उस नारिका ने) मेरे हाथ में पान (का बीड़ा) रखवा ।

चितवनि भोरे भाइ की गोरै सुँह मुसुकानि ।

लागति लटकि अली गरै चित खटकति नित आनि ॥ २५५ ॥

अन्वय—भोरे भाइ की चितवनि, गोरै सुँह मुसुकानि, लटकि अली गरै लगति, चित नित आनि खटकति ।

चितवनि=देखना । भाइ=भाव । नित=नित्य । आनि=आकर ।

भोलेभाले भाव से देखना, गोरे-गोरे मुख से मुस्कुराना और लचक-लचककर सखी के गले लग जाना—(उस नवयुवती की ये सारी चेष्टाएँ) मेरे चित्त में नित्य आकर खटकती हैं ।

छिनु-छिनु मैं खटकति सु हिय खरी भीर मैं जात ।

कहि जु चली अनहीं चितै ओठन ही विच बात ॥ २५६ ॥

अन्वय—खरी भीर मैं जात जु अनहीं चितै ओठन ही विच बात कहि चड़ी सु हिय छिनु-छिनु मैं खटकति ।

खरी=अत्यन्त । अनहीं चितै=विना देखे ही ।

भारी भाइ मैं जाते हुए उसका मेरी ओर विना देखे ही (और) ओठों के बीच मैं ही बात कहकर चला जाना (मेरे) हृदय में प्रत्येक क्षण खटकता है (कि न जाने उसने यों धीरे-धीरे कौन-सी गोपनीय बात कही ?)

चुनरी स्याम सतार नभ मुँह समि की उनहारि ।

नेहु दवावतु नींद लौं निरखि निसा-सी नारि ॥ २५७ ॥

अन्वय—स्याम चुनरी सतार नभ, मुख समि की उनहारि । निसा-सी नारि निरखि नींद लौं नेहु दवावतु ।

सतार=स + तार = तारा सहित । नभ=आकाश । समि = चन्द्रमा । उनहारि = समान । नेह=प्रेम । लौं=समान । निमा=रात्रि ।

काली चुनरी ही तारों से भरा आकाश है और मुखड़ा चन्द्रमा के समान है । (इस चन्द्र और तारे-मरे आकाश से युक्त) रात्रि के समान ख्री को देखकर

नींद के समान प्रेम आ द्रवोचता है— उरवस प्रेम हो ही जाता है, जैसे शत में
नींद आ ही जाती है ।

मैं लै दयौ लयौ सु कर छुवत छिनकि गौ नीर ।

लाल तिहारौ अरगजा उर है लग्यौ अबीर ॥ २५८ ॥

अन्वय—मैं कै दयौ सु कर लयौ, छुवत नीर छिनकि गौ । लाल तिहारौ
अरगजा उर अबीर है लग्यौ ।

लै = लेकर । सु = वह । छिनकि गौ = छुन-से सूख गया । अरगजा =
सुगन्धित और शीतल पदार्थों से तैयार किया हुआ एक प्रकार का लेप ।

मैंने लेकर (उसे) दिया । उसने हाथ में ले लिया । (किन्तु उसके) छूते
ही पानी छुन-से सूख गया । (यों) है लाल, तुम्हारा (मेरे द्वारा भेजा हुआ
लाल रंग का) अंगराग उस (विरहिणी) के हृदय में अबीर होकर लगा—
(विरह-उवाला के कारण पानी सूख जाने से वह लाल अरमजा का गीला छेर
सूखा अबीर बन गया ।)

तौपर वारौं उरवसी सुन राधिके सुजान ।

तू मोहन कै उर वसी है उरवसी समान ॥ २५९ ॥

अन्वय—सुजान राधिके सुन तौपर उरवसी वारौं । तू उरवसी समान है
मोहन कै उर वसी ।

वारौं = निछावर करूँ । उरवसी = उर्वशी नामक अप्सरा । सुजान = चतुर ।
उर वसी = हृदय में वसी । है = होकर । उरवसी = गले में पहनने का एक
आभूषण, हैकल, माला या हार ।

हे सुचतुरे राधिके ! सुन, (मैं) तुझपर उर्वशी (अप्सरा) को निछावर
करती हूँ—तुम्हारे सामने उर्वशी की कीमत कुछ नहीं, (क्योंकि) तू हार के
समान श्रीकृष्ण के हृदय में वसी है ।

हँसि उतारि हिय तैं दई तुम जु तिहिं दिना लाल ।

राखति प्रान कपूर ज्यौं वहै चुहटिनी माल ॥ २६० ॥

अन्वय—लाल तुम जु तिहिं दिना हँसि हिय तैं उतारि दई, वहै चुहटिनी
माल कपूर ज्यौं प्रान राखति ।

हिय = हृदय । तिहि = उस । चुहटिनी = गुंजा, करजनी ।

हे लाल ! तुमने जो उस दिन हँसकर अपने हृदय से (माला) उतारकर दी थी उसी गुंजों की माला ने उसके कपूर के समान प्राण को (विलीन होने से) बचा रखा है ।

नोट—गुंजा के साथ कपूर रखने से नहीं उड़ता ।

रही लट्टू है लाल हाँ लखि वह बाल अनूप ।

कितौ मिठास दयौ दई इतै सलोनै रूप ॥ २६१ ॥

अन्वय—लाल हाँ वह अनूप बाल लखि लट्टू है रही । दई इतै सलोनै रूप कितौ मिठास दयौ ।

लट्टू = लट्टू । हाँ = हम । बाल = नवयुवती, नायिका । सलोनै = लावण्यमय, नमकीन । मिठास = मीठापन, माधुरी ।

हे लाल ! मैं उस अनुभम बाला को देखकर लट्टू हो रही हूँ—गुग्व हो रही हूँ । ईश्वर ने इतने नमकीन रूप में—इत छोटे-से लावण्यमय शरीर में, कितनी निःशास दे दी है—कितनी माधुरी भर दी है ।

सोहति धोती सेत मैं कनक-बरन-तन बाल ।

सारद-बारद-बीजुरी-भा रद कीजति लाल ॥ २६२ ॥

अन्वय—कनक-बरन-तन बाल सेत धोती मैं सोहति । लाल सारद-बारद-बीजुरी-भा रद कीजति ।

सेत = उजला । कनक-बरन = सोने का रंग । सारद = शरत् ऋतु का । बारद = बारिद = बादल । बीजुरी = विजली । भा = आभा ।

सोने के रंग-जैसे शरीरबाली (वह) बाला उजली साढ़ी में शोन रही है । हे लाल ! (उसकी यह शोभा देखकर) शरत् ऋतु के (उजले) बादल में (चमकनेवाली) विजली की आभा को भी रद करना चाहिए—तुच्छ समझना चाहिए ।

वारों बलि तो हगनु पर अलि खंजन मृग मीन ।

आधी डोठि चितौनि जिहिं किए लाल आधीन ॥ २६३ ॥

अन्वय—तो दग्नु पर अलि खंजन मृग मीन बलि वारौं । जिहिं आधो डीठि चितौनि लाल आधीन किए ।

वारौं = निछावर करूँ । बलि = बलैया लेना । दग्नु = आँखें । अलि = भौंरा । मीन = मछली । डीठि = नजर । चितौनि = चितवन । लाल = प्रीतम ।

(मैं) बलैया (लूँ), तेरी आँखों पर मौरा-खंनरीट, हिरन और मछली— सब को—निछावर करूँ । जिन (आँखों) ने आवी नजर की चितवन से ही प्रीतम को वश में कर लिया ।

नोट—भौंरे की रसिकता और कालिमा, मृग की दीर्घनेत्रता, तथा खंजन और मीन की चंचलता से स्त्री की आँखों की उपमा दी जाती है । नवयुवती सुन्दरी नायिका की आँखें रसलुब्ध, कजरारी, बड़ी-बड़ी और चंचल होती भी हैं ।

देखत उरै कपूर ज्यौं उपै जाइ जिन लाल ।

छिन छिन जाति परी खरी छीन छबीली बाल ॥ २६४ ॥

अन्वय—लाल कपूर उरै ज्यौं देखत जिन उपै जाइ । छबीली बाल छिन-छिन खरी छीन परी जाति ।

उरै=ओराना, चुक जाना । उपै जाइ=उड़ जाय, काफूर वा गायब हो जाय । खरी=अत्यन्त । छीन=दुबली । लबीली बाल=सुन्दरी नवयुवती ।

हे लाल ! (मुझे मत है कि कहाँ वह नायिका) कपूर के समान चुकते-चुकते उड़ न जाय । (क्योंकि तुम्हारे विरह में वह) सुन्दरी युवती लण-क्षण में अत्यन्त दुबली पड़ती जाती है—दुबली होती जाती है ।

छिनकु छबीले लाल वह नहिं जौ लगि बतराति ।

ऊख महूप पियूप की तौ लगि प्यास न जाति ॥ २६५ ॥

अन्वय—छबीले लाल छिनकु वह जौ लगि बतराति नहिं तौ लगि ऊख महूप पियूप की प्यास न जाति ।

छिनकु=एक क्षण । जौ लगि=जब तक । बतराति=बातचीत करती । महूप=मधु, शहद । पियूप=अमृत ।

हे छब्बीले लाल ! एक क्षण के लिए भी वह (नायिका) जबतक बातचीत नहीं करती तबतक ऊँख, मधु और अमृत की प्यास भी नहीं जाती—(वे सब पदार्थ स्वभावतः मीठे होने पर भी उसकी बोली की मिठास के इच्छुक बने रहते हैं, उसीके मधुमय वचनों से माधुर्य प्राप्त करते हैं ।)

नोट—ऊँख, महूप, और पीवूष (की उपमा) से नायिका के वचनों में क्रमशः मधुरता, शीतलता और प्राण-संचारिणी शक्ति का भाव व्यक्त होता है ।

नागरि विविध विलास तजि वसी गँवेलिनु माहिं ।

मूढ़नि मैं गनिवी कि तूँ हूँठ्यौ दै इठलाहिं ॥ २६६ ॥

अन्वय—नागरि विविध विलास तजि गँवेलिनु माहिं वसी तूँ हूँठ्यौ दै इठलाहिं कि मूढ़नि मैं गनिवी ।

विलास=आमोद-प्रमोद । गँवेलिनु=गाँव की गँवार खियाँ । गनिवी=गिनी जायगी । हूँठ्यौ दै=गँवारपन दिखलाकर । इठलाहिं=मस्त बनी रह ।

ऐ नगर में बसनेवाली सुचतुरा स्त्री ! नामा प्रकार के (नगर-सुलभ) आमोद-प्रमोद को छोड़कर तूँ इन गाँव की गँवार खियों में आ बसी है । (इसलिए अब) तूँ भी (उन्हींके समान) गँवारपन दिखलाकर इठला—आनन्द प्रकट कर; नहीं तो (इन गँवारिनों द्वारा) मूर्खाओं में गिनी जाओगी—गँवारिन समझी जाओगी ।

पिय मन रुचि हँबौ कठिन तन-रुचि होहु सिंगार ।

लाखु करौ आँखि न बढँ बढँ बढ़ाए बार ॥ २६७ ॥

अन्वय—पिय मन रुचि हँबौ कठिन सिंगार तन रुचि होहु । लाखु करौ आँखि न बढँ बढ़ाए बार बढँ ।

तन-रुचि=शरीर की शोभा । बार=बाल, केश ।

प्रीतम के मन रुचि (पैदा) होना कठिन है—प्रीतम को अपनी ओर आकृष्ट कर लेना कठिन है । सिंगार से (तो केवल) शरीर की शोभा बढ़े । लाख भी (प्रयत्न) करो, किन्तु आँखें नहीं बढ़तीं । (हाँ,) बढ़ाने से बाल (श्रवश्य) बढ़ जाते हैं ।

नोट—सिंगार से शरीर की शोभा भले ही हो, प्रीतम का मन आकृष्ट होना कठिन है, क्योंकि वह तो प्रेम से ही वशीभूत होता है।

नहिं परागु नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहि काल ।

अली कली ही सौं वँध्यो आगैं कौन हवाल ॥ २६८ ॥

अन्वय—नहिं परागु नहिं मधुर मधु इहि काल विकास नहिं । अली कली सौं ही वँध्यो आगैं कौन हवाल ।

परागु = फूल की सुगंधित धूलि, पुण्परज । मधु = मकरंद, पुण्परस । विकास = खिलना । अली = भौंरा । वँध्यो = उलझ गया है, घायल या लुध हुआ है । हवाल = दशा ।

न (सुगंधित) पराग है, न मीठा मकरंद, इस समव तक विकास भी नहीं हुआ है -- वह खिली भी नहीं है । अरे भौंरा ! कली से ही तो तू इस प्रकार उलझ गया, फिर आगे तेरी क्या दशा होगी—(अधस्थिली कली पर यह हाल है तो जब वह कली खिलेगी, सुगंधित पराग और मधुर मकरंद से भर जायगी, तब क्या दशा होगी ।)

नोट—यही दोहा सुनकर मिर्जाँ राजा जयसिंह अपनी किशोरी रानी के प्रेम को कम कर पुनः राजकाज देखने लगे थे । इसीपर उन्होंने विहारी को एक सौ अशर्कियाँ दी थीं, और इसी ढंग के दोहे रचने के लिए प्रत्येक दोहे पर सौ अशर्कियाँ पुरस्कार देने का उत्साह देकर यह सत्तसई तैयार कराई थी । इसलिए यही दोहा सत्तसई की रचना का मूल कारण माना जाता है ।

दुनहाई सब टोल में रही जु सौति कहाइ ।

सु तैं ऐंचि प्यौ आपु त्यौं करी अदोखिल आइ ॥ २६९ ॥

अन्वय—सब टोल में जु सौति दुनहाई कहाइ रही । सु तैं आइ प्यौ आपु त्यौं ऐंचि अदोखिल करी ।

दुनहाई = जादूगरनी । टोल = टोले-महले में । जु = जो । सु = वह, उसे । तैं = तुमने । ऐंचि = खींचकर, आकृष्ट कर । त्यौं = निकट, ओर । अदोखिल = दोपरहित, कलंकरहित ।

समूचे टोले में (तुम्हारी) जो सौतिन (पति को अत्यन्त आकृष्ट करने

के कारण) जादूगरनी कहा जाती थी (कि इसने जादू करके नायक को बश में कर लिया है) उसे तुमने आकर, पति को अपनी ओर आकृष्ट कर, कलंकरहित कर दिया, (तुम्हारी सौनिन पर से जादूगरवां होने का कर्लंक हट गया) ।

नोट—अब लोग समझ गये कि सौनिन ने अपने रूप के जादू से ही नायक को बश में किया था । तुम अधिक रूपवती हो, सो तुम्हारे आने से नायक तुम्हारे रूप पर आकृष्ट हो गया है, और उतपर से दृष्टि फेर ली है ।

देखत कल्पु कौतिगु इतै देखौ नैकु निहारि ।

कब की दृक्टक डटि रही टटिया अँगुरिनु फारि ॥ २७० ॥

अन्वय—इतै कल्पु कौतिगु देखत नैकु निहारि देखौ । कब की टटिया अँगुरिनु फारि इक्टक-डटि रही ।

कौतिगु = कौतुक = तमाशा । नैकु = जरा । निहारि = गौर करके । डटि रही = देख रही है । टटिया = टटुर ।

(क्या) इस ओर कुच तमाशा देख रहे हो ? (अगर नहीं देखते तो) जरा गौर से देखो—आँखों काढ़-काढ़ कर देखो । (बह न जाने) कब से टटुर को अँगुरी से काढ़कर (तुम्हारी ओर) एक्टक से देख रही है ।

लभिव लोइन लोइननु कौं को इन होइ न आज ।

कौन गरीब निवाजिबौ कित तूऱ्यौ रतिराज ॥ २७१ ॥

अन्वय—लोइन लोइननु कौं लभिव आज को इन न होइ । कौन गरीब निवाजिबौ कित रतिराज तूऱ्यौ ।

लोइन = लावण्य, शोभा । लोइननु = आँखों । को = कौन । निवाजिबौ = कृपा होगी । कित = कहौ । तूऱ्यौ = संतुष्ट हुआ है । रतिराज = कामदेव ।

इन आँखों का लावण्य देखकर आज कौन हनका नहीं हो रहेगा ?-- कौन इन आँखों के बश में नहीं हो जायगा ? (कहो, आज) किस गरीब पर कृपा होगी, कहाँ कामदेव प्रसन्न हुआ है ? (कि तुम यों बनी-ठनी चली जा रही हो ?)

मन न धरति मेरो कहौ तूँ आपनैं सयान ।

अहे परनि पर प्रेम की परहथ पारि न प्रान ॥ २७२ ॥

अन्वय—तू आपनैं सयान मेरौ कह्हाँ मन न धरति । परनि पर प्रेम की प्रान परहथ अहे पारि न ।

सयान = चतुराई । अहे = है । परनि = पड़ना । परहथ = दूसरे के हाथ में । पारि = डालना, देना ।

तू अपनी चतुराई में (मस्त बनी) मेरा कहना मन में नहीं धरती—मेरी चात नहीं मानती । (किन्तु यह याद रख कि) दूसरे के प्रेम में पड़ना—दूसरे के प्रेम में फँसना—(यपने) प्राणों को दूसरे के हाथ में देना है, अतः (प्राण) दूसरे के हाथ में मत दे ।

बहकि न इहिं बहिनापुली जब-तब बीर बिनासु ।

बचै न बड़ी सबीलहूँ चौल-घोंसुआ मांसु ॥ २७३ ॥

अन्वय—इहिं बहिनापुली न बहकि बीर जब-तब बिनासु । बड़ी सबीलहूँ चौल-घोंसुआ मांसु न बचै ।

बहकि = बहककर, फेर में पड़कर । बहिनापुली = स्त्रियों की आपस की मैत्री । बीर = सखी । सबील = यत्न । घोंसुआ = घोंसला, खोंता ।

इस बहिनापे में मत बहको—इस कुलदा की मित्रता के घोखे में न आओ । हे सखि ! जब-तब इसमें सर्वनाश (ही हुआ) है । (देखो !) बहुत यत्न करने पर भी चील के घोसले में मांस नहीं बचता ।

नोट—कोई दुष्ट स्त्री किसी भोलीभाली नवयुवती सुन्दरी से बहिनापा जोड़कर उसे चिंगाड़ना चाहती है । इसपर नवयुवती सुन्दरी की प्यारी सखी उसे समझा रही है ।

मैं तोसौं कैवा कह्हाँ तू जिनि इन्हैं पत्याइ ।

लगालगी करि लोइननु उर में लाई लाइ ॥ २७४ ॥

अन्वय—मैं तोसौं कैवा कह्हाँ तू इन्हैं जिनि पत्याइ । लोइननु लगालगी करि उर में लाइ लाई ।

तो सौं = हुमसे । कैवा = कितनी बार । जिनि = मत । पत्याइ = प्रतीति कर । लगालगी = लग-लगाकर, एक-दूसरे से उलझकर । लोइननु = आँखें । लाई = लगा दी । लाइ = आम, लाग, सेंध ।

मैंने तुमसे कहूँ वार कहा (कि) तुम इन्हें मत पतिभाओ—इनका विश्वास न करो । (किन्तु तुमने न माना, अब देखो, इन) आँखों ने लगालगी करके—मिल-मिला करके—(तुम्हारे) हृदय में आग लगा दी—तुम्हारे हृदय में चोर पहुँचने के लिए सेंध लगा दी ।

सनु सूक्यौ वीत्यौ वनौ ऊखौ लई उखारि ।

हरी-हरी अरहरि अजौं धर धरहरि जिय नारि ॥ २७५ ॥

अन्वय—सनु सूक्यौ, वनौ वीत्यौ, ऊखौ उखारि लई; अजौं अरहरि हरी-हरी, नारि-जिय धरहरि धर ।

सूक्यौ=सूख गया । वनौ=(विनौला) कपास । अरहरि=अरहर; रहरी । अजौं=अब तक । धरहरि=धैर्य ।

सन सूख गया, कपास भी वीत चुकी, ऊख भी उखाड़ ली गई । (यो तुम्हारे गुप्त-मिलन के सभी स्थान नष्ट हो गये, किन्तु) थब तक अरहर हरी-हरा है । (इसलिए) हे बाला ! हृदय में धैर्य धारण करो (क्योंकि कम-से-कम एक गुप्त स्थान तो आमा तक कायम है ।)

नोट—सन, कपास, ऊख और अरहर की खड़ी फसल वाला खेत सूख घना और गुप्त एकान्त स्थान के समान होता है । यह देहाती नायिका मालूम होती है; क्योंकि ऐसे स्थान में देहाती नायिकाएँ ही अपना मिलन-मंदिर बनाती हैं ।

जौ बाके तन को दसा देख्यौ चाहत आपु ।

तौ बलि नैकु विलोकियै चलि अचकाँ चुपचापु ॥ २७६ ॥

अन्वय—जौ बाके तन को दसा आपु देख्यौ चाहत, तौ बलि नैकु चुपचापु अचकाँ चलि विलोकियै ।

बाके=उसके । बलि=बलैया लेती है । नैकु=जरा । विलोकियै=देखिए । अचकाँ=अचानक । चुपचापु=चोरी-चुपके से ।

यदि उसके (विरह में व्याकुल नायिका के) शरीर की (यथार्थ) दशा आप देखना चाहते हैं तो, मैं बलैया लेती हूँ, जरा चुपचाप अचानक चलकर उसे देखिए (नहीं तो आपके आगमन की बात मुनते ही वह आनन्दित हो उठेगी और आप उसकी यथार्थ अवस्था नहीं देख सकेंगे ।)

नोट—उनके देखने से जो आ जाती है मुँह पर रौनक ।

वो समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है ॥—गालिव
कहा कहाँ वाकी दसा हरि प्राननु के इस ।

विरह-ज्वाल जरिवो लखैं मरिवौ भयौ असीस ॥ २७७ ॥

अन्वय—प्राननु के इस हरि वाकी दसा कहा कहाँ, विरह-ज्वाल जरिवो लखैं
मरिवौ असीस भयौ ।

कहा = क्या । वाकी = उसकी । जरिवो = जरना । हरि = श्रीकृष्ण । लखैं =
देखकर । मरिवौ = मरना । भयौ = हुए ।

हे प्राणों के ईश्वर श्रीकृष्ण ! उसकी दशा मैं क्या कहूँ । (उसका) विरह-
ज्वाला मैं जलना देखकर—नुस्खरे विरह में अपार कष्ट सहना देखकर—मरना
ही आशीर्वाद हो गया (नृत्यु ही आशीर्वाद-सी सुखदायिनी मालूम पड़ती है ।)

नोट—छूट जायें गम के हाथों से जो निकले दम कहीं ।

खाक ऐसी जिन्दगी पर तुम कहीं औ हम कहीं ॥—ज्ञौक
नैकु न जानी परति यौं परथौ विरह तनु छामु ।

उठति दियैं लौं नाँदि हरि लियैं विहारो नामु ॥ २७८ ॥

अन्वय—नैकु न जानि परति विरह तनु छामु परथौ, हरि विहारो नामु
लियैं दियैं लौं नाँदि उठति ।

नैकु = जरा । छामु = क्षाम, क्षीण, दुबला । दियैं = दीपक । लौं = समान ।
नाँदि उठति = प्रकाशित हो उठती है । विहारो = तुम्हारा ।

जरा भी नहीं जान पड़ती—नहीं दीख पड़ती, विरह से (उसका) शरीर
यों दुबला हो गया है । हे हरि ! तुम्हारा नाम केते ही वह दीपक के समान
प्रकाशित हो उठती है । (इससे मालूम पड़ता है कि वह वर्तमान है, विलान
नहीं हुई है ।)

दियौ सु सोस चढ़ाइ लै आछी भाँति अएरि ।

जापै सुखु चाहतु लियो ताके दुखहिं न फेरि ॥ २७९ ॥

अन्वय—आछी भाँति अएरि दियौ सु सीस चढ़ाइ लै जापै चाहतु सुखु
लियौ ताके दुखहिं न फेरि ।

आछी भाँति = अच्छी तरह । अएरि = अंगीकार करके । जापै = जिसपर, जिसके द्वारा । चाहतु = मन-चाह । ताके = उसके ।

अच्छी तरह अंगीकार करके (जो कुछ उसने) दिया है, सो शीश पर चढ़ा ले—दुःख ही दिया तो क्या हुआ, उसे भा अंगीकार कर ले । जिससे मनचाहा सुख लिया, उसके (दिये हुए) दुःख को भा मत फेर—वापस न कर ।

कहा लड़ैते दग करे परे लाल बेहाल ।

कहुँ मुरली कहुँ पीतपटु कहुँ मुकुट बनमाल ॥ २८० ॥

अन्वय—दग कहा लड़ैते करे लाल बेहाल परे, कहुँ मुरली कहुँ पीतपटु कहुँ मुकुट बनमाल ।

कहा = कैसा । लड़ैते = लड़ाकू । लाल = नन्दलाल, श्रीकृष्ण । बेहाल = व्याकुल । कहुँ = कही । पीतपटु = पीताम्बर ।

(तुमने अपने) नेत्रों को कैसा लड़ाकू बना लिया है ? वे कैसे ऊधमी हो गये हैं ? (देखो ! उसकी मार रो) श्रीकृष्ण व्याकुल होकर (बायल-से) पड़े हैं । कहीं मुरली (पड़ा) है, कहीं पीताम्बर (पड़ा) है, कहीं मुकुट (लुड़क रहा) है, और कहीं बनमाला (लोट रहा) है—(उन्हें किसीकी सुषिर नहीं !)

तूँ मोहन मन गड़ि रही गाढ़ी गड़िनि गुवालि ।

उठै सदा नटसाल ज्यौं सौतिनु के उर सालि ॥ २८१ ॥

अन्वय—गुवालि तूँ मोहन मन गाढ़ी गड़िनि गड़ि रही । सौतिनु के उर नटसाल ज्यौं सदा सालि उठै ।

गाड़ि गड़िनि = अच्छी तरह थे, मजबूती के साथ । गुवालि = ग्वालिन । नटसाल = तीर की चोखी नोक जो टूटकर शरीर के भीतर ही रह जाती है और पीड़ा देती है । ज्यौं = समान, जैसे । सालि = कसक ।

अर्रा ग्वालिन ! तूँ मोहन के मन में भर्ता भाँति गड़ रही है—श्रीकृष्ण के हृदय में तूने अच्छी तरह घर कर लिया है । (यह देखकर) सौतिनों के हृदय में तीर की टूटी हुई नोक की पीड़ा के समान सदा कसक उठती रहती है ।

बड़े कहावत आप सौं गरुवे गोपीनाथ ।

तौं बदिहौं जौ राखिहौ हाथनु लखि मनु हाथ ॥ २८२ ॥

अन्वय—गरुवे गोपीनाथ आप सौं बड़े कहावत, बदिहौं तौं जौ हाथनु लखि मनु हाथ राखिहौ ।

आपसौं = अपने को । गरुवे = भारी, प्रतिष्ठित । तौ = तब । बदिहौं = यथार्थ में समझूँ गी । हाथनु = हाथों को ।

प्रतिष्ठित गोपीनाथजी ! (आप) अपनेको बड़े तो कहलवाते हो । किन्तु मैं बढ़ूँगी तब—मैं यथार्थ में प्रतिष्ठित और बड़ा समझूँगी तब—जब (इस नायिका के) हाथों को देखकर (अपना) मन वश में रख लोगे—अपनेको काढ़ू में रख सकोगे ।

रही दहेंडी ढिग धरी भरी मथनियाँ बारि ।

फेरति करि उलटी रई नई विलोवनिहारि ॥ २८३ ॥

अन्वय—दहेंडी ढिग धरी रही ; मथनियाँ बारि भरी, रई उलटी करि नई विलोवनिहारि फेरति ।

दहेंडी = दही रखने का वर्तन, कहतरी, मटकी । ढिग = निकट । मथनिया = जिसमें दही रखकर मथा जाता है, माठ, कूँड़ा । रई = जिससे दही मथा जाता है, रही, मथनी । नई विलोवनिहारि = दही मथनेवाली नवयुवती, नई-नवेली गवालिन ।

(दही से भरी हुई) मटकी निकट ही रखती रह गई और (दही मथनेवाले) माँड़ में केवल पानी भर दिया । (किर) मथनी उलटकर (प्रीतम—श्रीकृष्ण—के ध्यान में पगली बनी हुई वह) नई दही मथनेवाली फेर (मथ) रही है—उलटी मथनी से ही माँड़ के पानी को मथ रही है । (श्रीकृष्ण के प्रेम में बेसुध है)

कोरि जतन कीजै तऊ नागरि नेहु दुरै न ।

कहैं देत चितु चीकनौ नई रुखाई नैन ॥ २८४ ॥

अन्वय—कोरि जतन कीजै तऊ नागरि नेहु न दुरै । नैन नई रुखाई चितु चीकनौ कहैं देत ।

कोरि = करोड़ । तऊ = तो भी । नागरि = चतुरा । दुरै न = नहीं दुरता, नहीं छिपता । चीकनौ = प्रेम । रुखाई = क्रोध ।

करोड़ों यत्करो तो भी हे सुचतुर ! प्रेम नहीं छिपता । आँखों की नई रुखाई ही—कृत्रिम रुक्षता (क्रोध) ही—हृदय की चिकनाहट—(स्नेहशीलता) —कहे देती है ।

नोट—प्रेम छिपाये ना छिपै जा घट परगट होय ।

जो पै मुख बोलै नहीं आँख देति है रोय ॥—कवीरदास
पूछै क्यौं रुखी परति सगिवगि गई सनेह ।

मनमोहन छवि पर कटी कहै कँद्यानी देह ॥ २८५ ॥

अन्वय—पूछै रुखी क्यौं परति सनेह सगिवगि गई मनमोहन छवि पर कटी, कँद्यानी देह कहै ।

रुखी परति = अनखाती, कुपित होती । सगिवगि गई = शराबोर हो गई, तज्जीन या मस्त हो रही । मनमोहन = श्रीकृष्ण । छवि पर कटी = रूप पर मुरध । कँद्यानी = कंटकित, रोमांचित ।

पूछने से कोधित क्यों होती हो ? स्नेह से तो शराबोर हो रही हो । श्रीकृष्ण के रूप पर लट्ठ हुई हो, (यह बात तुम्हारी) रोमांचित देह ही कह रही है ।

तूँ मति मानै मुकुर्तई कियैं कपट चित कोटि ।

जो गुनही तौ राखिये आँखिन माँहि अँगोटि ॥ २८६ ॥

अन्वय—कोटि कपट चित कियैं तूँ मुकुर्तई मति मानै । जो गुनही तौ आँखिनु माँहि अँगोटि राखिये ।

मुकुर्तई = मुक्ति, छुटकारा । चित = मन । कोटि = करोड़ों । गुनही = गुनहगार, दोषी, अपराधी । अँगोटि = बन्द कर, कैद कर ।

करोड़ों कपट मन में रखने से तू अपना छुटकारा न समझ—झूठमूठ मुझे दोषी बतलाने से मैं तेरा पिंड छोड़ दूँगा, ऐसा मत समझ । (हाँ,) यदि (सचमुच मुझे) गुनहगार समझती है, तो अपनी आँखों में मुझे कैद कर रख ।

नोट—नाथिका को किसी तरह नायक छोड़ना नहीं चाहता । अपने ऊपर किये गये आज्ञेय या आरोप को वह पहले तो शूद्र बतला रहा है, और सत्य

होने पर भी सजा चाहता है—नायिका की आँखों में कैद होना ! कविवर रहीम ने भी भगवान् श्रीकृष्ण से कहा है कि मैं नट के समान चौरासी लाख रूप बनाकर तुम्हारे निकट आया, अगर मेरे इन रूपों पर तुम प्रसन्न हो तो मुझे मनन्वाही (मुक्ति) दो, नहीं, कहो तो मैं इन रूपों को ही न बनाऊँ, और यों चौरासी के फेर से बचूँ। कैसी विलक्षण उक्ति है—आनीता नटवन्मया तत्र पुनः श्रीकृष्ण या भूमिका, व्योमाकाश खलांवराविधि वसुवत् त्वत्प्रीतपेद्यावधि; ग्रीतस्त्वं यदि चेन्निरीद्य भगवान् स्वप्रार्थितं देहि मे, नोचेद्वृहि कदापि मानय पुनस्वेतादशी भूमिका”—रहीम काव्य ।

बाल-बेलि सूखी सुखद इहिं रुखी-रुख-घाम ।

फेरि डहडही कीजियै सुरस सींचि घनस्याम ॥ २८७ ॥

अन्वय—इहि रुखी-रुख-घाम सुखद बाल-बेलि सूखी । घनस्याम सुरस सींचि फेरि डहडही कीजियै ।

बेलि=लता ; रुखी-रुख=कोधभाव । घाम=रौद, धूप । डहडही=हरी-भरी । सुरस=(१) सुन्दर प्रेम (२) सुन्दर जल । घनस्याम=(१) श्रीकृष्ण (२) श्यामल मेघ ।

इस क्रोध-भाव-रुग्णी घाम से (वह) सुख देनेवाली बाला-रुपी छता सूख गई है । (अतएव) हे घनस्याम ! सुन्दर (प्रेम-रुग्णी) जल से सींचकर इसे पुनः हरी-भरी कर दीजिए ।

हरि हरि वरि वरि उठति है करि करि थकी उपाइ ।

वाकौ जुरु बलि बैदजू तो रस जाइ तु जाइ ॥ २८८ ॥

अन्वय—हरि हरि वरि वरि उठति है, उपाइ करि करि थकी । बैदजू, बलि, वाको जुरु तु रस जाइ तो जाइ ।

बरि-वरि=जल-जलकर । वाको=उसको । जुरु=ज्वर, बुखार । बलि=बलैया लेना । रस=(१) मकरध्वज आदि रासायनिक औषधि (२) प्रेम, मिलन-जनित आनन्द ।

हे हरि ! (विरह-ज्वाला में) जल-जल (वह) उठती है । (मैं) उपाय कर-करके थक गई । हे बैद्य महाराज, मैं बलैया लेती हूँ, उसका (विरह-रुग्णी),

ज्वर आपके 'रस' (श्रौपध) से जाय तो जाय (नहीं तो कोई दूसरा उपाय नहीं ।)

तूँ रहि हौं ही सखि लखौं चढ़ि न अटा बलि बाल ।

सबही विनु ससि ही उदै दीजतु अरबु अकाल ॥ २८९ ॥

अन्वय—सखि तूँ रहि हौं ही लखौं बाल बलि अटा न चढ़ि । सबही विनु ससि उदै ही अकाल अरबु दीजतु ।

हौं=मैं । अटा=अटारी, कोठा । बलि=बलैया लेना । बाल=बाला, नायिका । अरबु=अर्ध्य । अकाल=असमय, वेवक्त ।

सखि ! तू रह, मैं ही देखताँ हूँ । बाले ! मैं बलैया लेती हूँ, तू कोठे पर न चढ़ । (नहीं तो कोठे पर तुम्हारा सुख देख उसे चन्द्रमा समझ) समीं विना चन्द्रमा के उदय हुए ही, असमय मैं ही, अर्ध्य देने बगेंगे ।

नोट—इसी भाव का एक श्लोक महाकवि कालिदास के शृंगारतिलक में है, जिसमें चंद्रानना नायिका को ग्रहण-काल में झटपट घर में बुसने को कहा गया है । कारण, कहीं उसे पूर्णचन्द्र समझकर राहु ग्रस न ले—ज्ञातिति प्रविश रोहे मा वृदिस्तिष्ठ कान्ते, ग्रहणसमय वेळा वर्तते शीतरश्मेः; तवमुखनकलंक वीक्ष्य नूनं स राहुः, ग्रसति तव मुखेन्दुं पूर्णचन्द्रं विदाय ।

दियौ अरबु नीचौं चलौ संकटु भानै जाइ ।

सुचिती है औरौ सबै मसिहिं विलोकै आइ ॥ २९० ॥

अन्वय—अरबु दियौ नीचौं चलौ, जाइ संकटु भानै औरौ सबै सुचिती है ससिहिं आइ विलोकै ।

संकटु=संकट-चतुर्थी का व्रत । भानै=तोड़े । सुचिती है=सुचित (स्थिरचित्त) होकर, द्विघा को छोड़कर । ससिहिं=चन्द्रमा को । विलोकै=देखें ।

अर्ध्य दे चुकी, (अब) नीचे चलो । चज्जकर संकट चौथ का व्रत तोड़े—संकट-चतुर्थी के व्रत का पारण करें । (ताकि) अन्य सब (मियाँ) मी सुचित होकर—दुविघा छोड़कर—चन्द्रमा को आकर देखें ! (क्योंकि कोठे पर

रहने से तुम्हारे मुखचन्द्र को देखकर सब अम में पढ़ जाती हैं कि इस चौथ को
यह पूर्णचन्द्र कहाँ से आया !)

वे ठाढ़े उमदाहु उत जल न बुझै बड़वागि ।

जाही सौं लाग्यौ हियौ ताही कै हिय लागि ॥ २९१ ॥

अन्वय—वे ठाढ़े उत उमदाहु, जत बड़वागि न बुझै । जाही सौं हियौ
लाग्यौ ताही कै हिय लागि ।

उमदाहु=मदमाती-सी चेष्टा करो, अँठिलाओ । उत=उधर । बड़वागि
=समुद्र की बड़वा नामक अग्नि । जाही सौं=जिससे । ताही कै=उसी के ।
लागि लगो ।

(देख) वे खड़े हैं, उधर ही उन्मत्त-सी चेष्टा करो—उन्हीं से लपटो-
भपटो । जल से बड़वाग्नि नहीं बुझती—मुझसे तुम्हारी ज्वाजा शान्त न होगी ।
जिससे हृदय लगा है, उसी के हृदय से जा लगो । (निकट खड़े ही हैं, फिर
देरी क्यों ?)

अहे कहै न कहा कह्यो तो सौं नन्दकिसोर ।

बड़बोला बलि होति कत बड़े दगनु कै जोर ॥ २९२ ॥

अन्वय—अहे कहै न तो सौं नन्दकिसोर कहा कह्यौ । बड़े दगनु कै जोर
बलि कत बड़बोली होति ।

अहे=अरी । कहा=क्या । नन्दकिसोर=नन्दनन्दन श्रीकृष्ण । बड़बोली=
बढ़-बढ़कर बातें करनेवाली । बलि=बलैया लेना ।

अरी ! कह न, तुझसे श्रीकृष्ण ने क्या कहा है ? बड़ी-बड़ी आँखों के बड़
पर, बलैया जाऊँ, तू क्यों बड़-बड़कर बातें करती है ?

मैं यह तोही मैं लखी भगति अपूर्व बाल ।

लहि प्रसाद-माला जु भौ तनु कदम्ब की माल ॥ २९३ ॥

अन्वय—बाल, मैं तोही मैं यह अपूर्व भगति लखी, जु प्रसाद-माला
लहि तनु कदम्ब की माल भौ ।

बाल=बाला, नवयुवती । लहि=पाकर । भौ=हुई । तनु कदम्ब की
माल=जैसे कदम्ब के सुन्दर फूल में पीले-पीले सुकोमल अँकुरे निकले रहते हैं,

जैसे ही गोरी गोपी के गात में रोमांच उठ आये । (कोमलांगी के रोमांच की उपमा कदम्ब कुमुम से देते हैं, जैसे वीरों के रण-रोमांच की पनस-फल से)

हे बाले ! मैंने तुम्हाँ में ऐसी अपूर्व मक्कि देखी है । (क्योंकि ठाकुरजी की) प्रसाद की माला पाकर तुम्हारी देह का कदम्ब की माला (रोमांचित) हो गई !

नोट - नायक ने चुपके-से अपनी माला मेजी, जिसे नायिका ने सखियों के सामने ठाकुरजी की प्रसाद की माला कहकर पहन लिया । माला पहनते ही शरोर पुलांकित हो उठा । इसपर चतुर सखों चुटकी लेती है कि ऐसी अपूर्व ईश्वर-भक्ति किसी और नवयुवती में नहीं देखी गई; क्योंकि नवयुवती में तो पतिप्रेम ही होता है, ईश्वर-प्रेम तो वृद्धा में देखा जाता है ।

ढोरी लाई सुनन की कहि गोरी मुसकात ।

थोरो-थोरो सकुच सौं भोरी-भोरो बात ॥ २९४ ॥

अन्वय—थोरो-थोरो सकुच सौं भोरी-भोरी बात कहि गोरी मुसकात, सुनन की ढोरी लाई ।

ढोरी लाई = आदत लगा ली । सकुच = लाज । सौं = से ।

थोड़ी-थोड़ी, लज्जा से, भोली-भोली बातें कहकर वह गोरी मुसकाता है— लज्जा के कारण अधिक कह नहीं सकती, अतएव भोली-भोली बातें थोड़ी-थोड़ी कहकर हीं सुस्कुरा पड़ती है । (इस चेष्टा से कहीं गई उसकी बातें) सुनने की मैंने आदत-सी लगा ली है—विना सुने चैन ही नहीं पड़ता ।

चितु दै चितै चकोर त्याँ तीजै भजै न भूख ।

चिनगी चुगै अंगार को चुगै कि चन्द-मयूख ॥ २९५ ॥

अन्वय—चकोर त्याँ चितु दै चितै, भूख तीजै न भजै ! अंगार की चिनगी चुगै कि चन्द-मयूख चुगै ।

चितै=देखो । तीजै=तीसरे को । भजै न भूख=भूख लगने पर भी (किसी और को) ध्यान में नहीं लाता । मयूख=किरण ।

चकोर (मुखचन्द्र-प्रेमी नायक) की ओर चित देकर देखो—उसकी दशा पर अच्छी तरह विचार करो । वह भूख लगने (तीब्र मिलनोक्कंठा होने) पर भी नीमरे को नहीं भजता । या तो आग (विरहाभिन्न) की चिनगारी नुगकर खाता

है—या चन्द्रमा की किरण (मुखचन्द्र-छवि) को त्रुगता है—(किसी तीसरे के पास नहीं जाता ।)

कब की ध्यान लगी लखौं यह घर लगिहै काहि ।

डरियतु भूंगी-कीट लौं मति वहई है जाहि ॥ २९६ ॥

अन्वय—लखौं कब की ध्यान लगी, यह घर काहि लगिहै । डरियतु भूंगी-कीट लौं मति वहई है जाहि ।

यह घर काहि लगिहै=यह घर कौन सुधार सकेगी । भूंगी-कीट = भूंगी नामक एक छोटा-सा कीढ़ा, जो दूसरे छोटे-छोटे कीढ़ों को अपने घर में ले जाकर उनके निकट इतना भनभनाता है कि वे भी उसीके संगीत में लीन होकर भूंगी ही बन जाते हैं । लौं=समान । मति = बुद्धि । वहई = वही ।

देखो, कब से ध्यान लगाये हुई है । भला, यह घर कौन सुधार सकेगा—इसे कौन समझा-तुझा सकेगा । मैं तो डरती हूँ कि भूंगी-कीट-न्याय से कहीं उस (नायिका) की बुद्धि भी वही न हो जाय ।

नोट—नायिका भी कहीं नायक के ध्यान में निमग्न होकर नायक ही बन गई, तो भय है कि घर-गिरस्ती कौन सँभालेगा ।

रही अचल-सी है मनौ लिखी चित्र की आहि ।

तजैं लाज डरु लोक कौ कहौ विलोकति काहि ॥ २९७ ॥

अन्वय—अचल-सी है रही मनौ चित्र की लिखी आहि । लोक कौ लाज डरु तजैं कहौ काहि विलोकति ।

अचल = स्थिर । आहि = है । विलोकति = देखती हो । काहि = किसे ।

निश्चल-सी हो रही हो—जरा भी हिलती-डुलती नहीं—मानो चित्र की-सी लिखी (तस्वीर) हो । इस प्रकार संसार की लाज और डर छोड़कर, कहो, तुम किसे देख रही हो ?

ठाढ़ी मंदिर पै लखै मोहन-दुति सुकुमारि ।

तन थाकै हूँ ना थकै चख चित चतुर निहारि ॥ २९८ ॥

अन्वय—मंदिर पै ठाढ़ी सुकुमारि मोहन-दुति लखै । तन थाकै हूँ चख चित ना थकै, चतुर निहारि ।

मंदिर = अटारी । दुति = छवि । चख = आँख । निहारि = देख ।

कोठे पर खड़ी हो वह सुकुमारी (नायिका) श्रीकृष्ण की शोभा देख रही है (अत्यन्त सुकुमार होने के कारण) शरीर यक जाने पर भी (उसके प्रेम-प्लत) नेत्र और मन नहीं थकते । अरी चतुर सर्वा ! तमाशा तो देख ।

पल न चलैं जकि-सी रही थकि-सी रही उसास ।

अबहीं तनु रितयौ कहौ मनु पठयौ किहिं पास ॥ २९९ ॥

अन्वय—पल न चलैं जकि-सी रही, उसास थकि-सी रही । अबहीं तनु रितयौ कहौ मनु किहिं पास पठयौ ।

जकि-सी = स्तम्भित-सी, जइ-तुल्य, दक्षा-चक्षा, किंकर्तव्यविमूढ़ । उसास = उच्छृंवास = साँस । रितयौ = खालो करके ।

पलके नहीं चलती—एक-टक देख रही हो । दक्षा-चक्षा हो गई हो (पत्थर की मूरत बन गई हो) । साँस भी थक-सी गई है—साँस भी नहीं चलती—रुक-सी गई है । असी से—इस किशोर अवस्था में ही—शरीर को इस प्रकार खालो कर लिया, कहो, मन किसके पास भेज दिया ?

नाक चढ़ै सीधी करै जितै छ्रीवाली छैल ।

फिरि-फिरि भूलि वहै गहै प्यौ कँकरीली गैल ॥ ३०० ॥

अन्वय—छ्रीवाली छैल जितै नाक चढ़ै सीधी करै, प्यौ फिरि-फिरि भूलि वहै कँकरीली गैल गहै ।

नाक चढ़ै=नाक चढ़ाकर । सीधी=सीत्कार, सी-सी करना । छैल=नायिका । गहै=पकड़ता है । प्यौ=पिय, नायक । गैल=राह ।

वह सुन्दरी नायिका जहाँ पर (अपने को मन चरणों में कठोर कंकड़ियों के गड़ने से) नाक चढ़ाकर सी-सी करती है (उस समय की उसकी अलौकिक सात्र-भंगी पर मुख्य होकर) प्रीतम पुनः-पुनः भूलकर उसी कँकरीली राह को पकड़ता है—बार-बार उसे उसी राह पर ले जाता है (कि वह पुनः नाक सिकोड़कर 'सी-सी' करे !)

चतुर्थ शतक

हितु करि तुम पठयौ लगैं वा विजना की बाइ ।

टली तपनि तन की तऊ चली पसीना न्हाइ ॥ ३०१ ॥

अन्वय—तुम हितु करि पठयौ, वा विजना की बाइ लगै तन की तपनि टली, तऊ पसीना न्हाइ चली ।

पठयौ=पठाया, भेजा । विजना=पंखा । बाइ=इवा । टली=दूर हुई । तपनि=जलन, ताप । तऊ=तो भी । न्हाइ चली=शराबोर हो गई ।

तुमने हित करके (पंखा) भेजा । उस पंखे की इवा लगने से (उसके) शरीर की जलन तो दूर हो गई—शरीर की (विरहाङ्गि) जबाला तो शान्त हो गई, तो भी (तुम्हारा प्रेम स्मरण कर) वह पसीने से नहा गई—प्रेमावेश में उसका शरीर पसीने से तर हो (पसीज) गया ।

नाँड़ सुनत ही है गयौ तनु औरै मनु और ।

दबै नहीं चित चढ़ि रखौ अबै चढ़ाएं त्यौर ॥ ३०२ ॥

अन्वय—नाँड़ सुनत ही तनु औरै मनु और है गयौ । चित चढ़ि रखौ अबै त्यौर चढ़ाएं नहीं दबै ।

दबै=छिपे । चित चढ़ि रखौ=हृदय में रम रहा है । चढ़ाएं त्यौर=त्यौरियाँ (भौंह) चढ़ाने से, क्रोध प्रकट करने से ।

(नायक का) नाम सुनते ही (तुम्हारा) शरीर कुछ और हो गया, मन कुछ और हो गया—शरीर और मन (दोनों) में विचित्र परिवर्तन हों गया । वह चित में चढ़े हुए (नायक) का प्रेम अब त्यौरियाँ चढ़ाने से (क्रोध दिखलाने से) नहीं छिप सकता ।

नैकौ उहिं न जुदी करी हरपि जु दी तुम माल ।

उर तैं बास छुद्यौ नहीं बास छुटै हूँ लाल ॥ ३०३ ॥

अन्वय—हरपि जु तुम माल दी, उहिं नैकौ जुदी न करी । लाल बास छुटै हूँ उर तैं बास नहीं छुद्यौ ।

नैकौ = तनिक भी । उहिं = उसे । जुदी करी = अलग किया, जुदा किया ।
दरपि जु दी तुम = तुमने जो प्रसन्न होकर दी । बास = बसेरा । बास = गंध ।

प्रसन्न होकर जो तुमने (उसे अपनी) माला दी, वह उसे जरा भी अलग
नहीं करती । हे जाल ! गन्ध के नष्ट हो जाने पर भी (उस माला का) हृदय
का बास (स्थान) नहीं छूया—सूखकर निर्गन्ध हो जाने पर भी वह माला
उसके गले में ही विराज रही है ।

परसत पोँछत लखि रहतु लगि कपोल के ध्यान ।

कर लै प्यौ पाटल विमल प्यारी पठए पान ॥ ३०४ ॥

अन्वय—प्यौ विमल पाटल कर लै, प्यारी पान पठए । परसत पोँछत
कपोल के ध्यान लगि लखि रहतु ।

परसत = स्पर्श करता है, छूता है । लखि रहत = देखता रहता है । ध्यान
लगि = ध्यान करके । कर = हाथ । प्यौ = प्रीतम । पाटल = गुलाब का फूल ।
विमल = स्वच्छ, सुन्दर । पठए = भेजा ।

प्रीतम ने (प्यारी का भेजा हुआ) सुन्दर गुलाब का फूल हाथ में लेकर
(बढ़े में) प्यारी के पास पान भेज दिया । (और इधर प्रेम-बश उस गुलाब
के फूल को वह) स्पर्श करता है, पोँछता है और (प्यारी के) गालों का ध्यान
करके (उसे एकटक) देखता है ।

नोट—नायिका ने गुलाब का फूल भेजा कि इसी गुलाब के रंग के समान
में तुम्हारे प्रेम में रँगी हूँ । नायक ने उत्तर में पान भेजा कि यद्यपि बाहर से
प्रकट नहीं है, तथापि इस पान के छिपे रंग के समान मैं भी तुम्हारे प्रेम-रंग में
शराबोर हूँ । प्रेम का रंग लाल (खूनी) माना जाता है ।

मनमोहन सौं मोहु करि तूँ घनस्याम निहारि ।

कुंजविहारी सौं विहरि गिरिधारी उर धारि ॥ ३०५ ॥

अन्वय—तूँ मनमोहन सौं मोहु करि घनस्याम निहारि । कुंजविहारी सौं
विहरि गिरिधारी उर धारि ।

निहारि = देखना । विहरि = विहार करना । धारि = धारण करना ।

(मोह—प्रेम—ही करना है तो) तू मनमोहन से मोह (प्रेम) कर ।
 (देखना ही चाहती है तो) घनश्याम को देख । (विहार ही करना चाहती है तो) कुंजविहारी के साथ विहार कर और (धारण ही करना चाहती है तो) गिरिधारी को हृदय में धारण कर ।

नोट—मनमोहन, घनश्याम, कुंजविहारी, गिरिधारी आदि श्रीकृष्ण के नाम हैं । सभी नाम उपयुक्त स्थान पर प्रयुक्त हैं—प्रेम करने के लिए मनमोहन, देखने के लिए श्यामसुन्दर, विहार करने के लिए बृन्दावनविहारी और धारण करने के लिए गिरिधारी—कैसा चमत्कार है !

मोहिं भरोसौ रीझिहैं उझकि झाँकि इक बार ।

रूप रिझावनहारु वह ए नैना रिझवार ॥ ३०६ ॥

अन्वय—मोहिं भरोसौ रीझिहैं इक बार उझकि झाँकि । वह रूप रिझावनहारु ए नैना रिझवार ।

उझकि=उचककर, जरा उठकर । रिझावनहार=चित्त को आकृष्ट करनेवाले । रिझवार=रीझनेवाले, रूप देखकर लुब्ध होनेवाले ।

मुझे (पूरा) मरोता है कि (तुम देखते ही) रीझ जाओगी—(आसन्न हो जाओगी) । एक बार उचककर झाँको—जरा सिर उठाकर देखो तो सही । (नायक का) वह रूप रिझानेवाला है—आसन्न (मोहित) करनेवाला है, और तुम्हारी ये आँखें रीझनेवाली हैं—आसन्न (मुग्ध) हो जानेवाली हैं ।

कालवूत-दूती चिना जुरै न और उपाइ ।

फिरि ताकैं टारै बनै पाकैं प्रेम लदाइ ॥ ३०७ ॥

अन्वय—कालवूत-दूती चिना और उपाइ न जुरै, फिरि प्रेम लदाइ पाकैं ताकैं टारै बनै ।

कालवूत = मेहराव बनाने के समय उसके नीचे इंट, लकड़ी आदि का दिया हुआ भराव जो मेहराव के पुखता हो जाने पर हटा दिया जाता है । जुरै = छुटे, जमे । और = दूसरा । टारै बनै = अलग करना ही पड़ता है । पाकैं = पक जाने पर, पकका हो जाने के बाद । लदाइ = मेहराव का लदाव ।

कालवृत्-रूपी दूर्ती के बिना दूसरे उपाय से (प्रेम) नहीं जुड़ता । फिर प्रेम-रूपी लदाव (मेहराव) के पक जाने पर—मली भाँति जुट जाने पर—उसे (मराव-रूपी दूर्ती को) अलग करना ही पड़ता है (अर्थात् जब तक पूर्ण रूप से प्रेम स्थापित नहीं हो जाता, तभी तक दूर्ती की आवश्यकता रहती है ।)

गोप अथाइनु तैं उठे गोरज छाई गैल ।

चलि बलि अलि अभिसार को भली सँझौखै सैल ॥ ३०८ ॥

अन्वय—गोप अथाइनु तैं उठे गैल गोरज छाई । अलि बलि चलि अभिसार की सँझौखै सैल भली ।

गोप=ग्वाले । अथाइनु=बाहर की बैठक । गोरज=गोधूलि, सँझ समय गौओं के घर लौटते समय उनके खुर-प्रहार से उड़नेवाली धूलि । गैल=राह । बलि=बलैया लेना । अभिसार=वह समय जब नायिका छिपकर अपने प्रेमी से संकेतस्थल पर मिलने जाती है । सँझौखै सैल=Sंध्या समय की सैर ।

गोप लोग (बाहर की) बैठकों से उठ गये । राह में गोधूलि छा गई । सर्खी ! मैं बलैया जाऊँ, चलो, अभिसार के लिए सँझ समय की सैर बड़ा अच्छी होती है — (कोई देखने-मुननेवाला रह ही न गया, रास्ता भी गोधूलि से अंधकारमय हो गया, अतपुर ग्रीतम से मिलने का यह बड़ा अच्छा अवसर है ।)

सघन कुंज घन घन तिमिर अधिक अँधेरी राति ।

तऊ न दुरिहै स्याम वह दीप-सिखा-सी जाति ॥ ३०९ ॥

अन्वय—कुंज सघन, घन घन अँधेरी राति । तिमिर अधिक । तऊ स्याम वह दीप-सिखा-सी जाति न दुरिहै ।

सघन=घना । घन=मेघ । घन=घना । तिमिर=अंधकार । तऊ=तो भी । दुरिहै=छिपेगी । दीप-सिखा=दिये की लौ ।

कुंज सघन हैं—अन्यन्त घने हैं । मेघ भी घने हैं—बादल भी खूब उमड़ रहे हैं । फलतः इस अँधेरी रात में अंधकार और भी अधिक हो गया है । तो भी है इयाम ! वह दीपक की लौ के समान (चमकती हुई नायिका) जाती

हुई न छिप सकेगी—इतने अंधकार में भी इसकी देह की द्युति देखकर लोग जान ही जायँगे कि वह जा रही है ।

फूली-फाली फूल-सी फिरति जु विमल विकास ।

भोरतरैयाँ होहु तै चलत तोहि पिय पास ॥ ३१० ॥

अन्वय—जु फूली-फाली फूल-सी विमल विकास फिरति । तोहि पिय पास चलत तै भोरतरैयाँ होहु ।

फूली-फाली=विकसित और प्रफुल्लित । विमल=स्वच्छ । भोर=प्रातःकाल, उपाकाल । तरैया=तारे, तारिकाएँ ।

जो (तारिकाएँ) फूल के समान विकसित और प्रफुल्लित स्वच्छ प्रकाश के साथ (आकाश में) फिर रही हैं । प्रीतम के पास तुम्हारे चलते ही (वे सब) भोर की तारिकाएँ हो जायँगी—तुम्हारे मुख्यचन्द्र के प्रकाश से वे सब फीकी पड़ जायँगी ।

उयौ सरद-राका-ससी करति क्यौं न चितु चेतु ।

मनौ मदन-छितिपाल कौ छाँहगीरु छवि देतु ॥ ३११ ॥

अन्वय—सरद-राका-ससी उयौ चितु चेतु क्यौं न करति । मनौ=मदन-छितिपाल कौ छाँहगीरु छवि देतु ।

उयौ=उगा । सरद-राका-ससी=शरद की पूर्णिमा का चन्द्र । मदन=कामदेव । छितिपाल=राजा । छाँहगीरु=छत्र । छवि=शोभा ।

शरद ऋतु का पूर्ण चन्द्र उग आया । (फिर भी) चित्त में चेत क्यों नहीं करती—होश में आकर मान क्यों नहीं छोड़ती ? (वह चन्द्रमा ऐपा मालूम होता है) मानो मदन-रूपी राजा का छत्र शोभ रहा हो ।

निसि अँधियारी नील-पटु पहिरि चली पिय-गेह ।

कहौ दुराई क्यौं दुरै दीप-सिखा-सी देह ॥ ३१२ ॥

अन्वय—अँधियारी निसि नील-पटु पहिरि पिय-गेह चली । कहौ दीप-सिखा-सी देह दुराई क्यौं दुरै ?

पटु=वस्त्र, साड़ी । गेह=घर । दुराई=छिपाने से । दीप-सिखा=दीप-शिखा=दीये की लौ ।

झंधेरी रात में नीली साड़ी पहनकर (गुप्त रूप से मिलने के लिए) प्रीतम के घर को चली, किन्तु कहो तो (उसकी) दीये की लौ के समान (प्रकाशवान्) वेह छिपाने से कैसे छिपे ?

नोट—दोहा सं० ३०६ के अर्थ से इसके भाव का मिलान कीजिए ।

छिपै छपाकर छिति छुवै तम ससिहरि न सँभारि ।

हँसति हँसति चलि ससिमुखी मुख तै आँचरु टारि ॥ ३१३ ॥

अन्वय—छपाकर छिपै छिति तम छुवै न ससिहरि सँभारि । ससिमुखी मुख तै आँचरु टारि हँसति हँसति चलि ।

छिपै=छिप गया । छपाकर=चन्द्रमा । छिति=पृथ्वी । छुवै=छू गया । तम=अंधकार । ससिहरि न=सिहर मत, डर मत । सँभारि=सँभलकर । यारि=हटाकर ।

चन्द्रमा छिप गया । पृथ्वी को अंधकार छू रहा है । (किन्तु इससे अँधेरा हुआ जानका) तू डर मत, सँभल जा । अरी चन्द्रमुखी ! मुख से धूँवट हटाकर हँसती हँसती चल (तेरे मुख और दाँतों की चमक से आप ही पथ में उजाला हो जायगा ।)

नोट—यह शुक्लाभिसारिका नायिका है । किन्तु कृष्णाभिसारिका नायिका पर कुछ इसी भाव का एक कवित्त द्विजदेव कवि का है । उसके अन्तिम दो चरण देखिए—“नागरी गुनागरी मु कैसे डरै रैनि डर जाके अंग सोहैं ये सहायक अनंद री । वाहन मनोरथ अमा है सँगवारी सखी मैनमद सुभट मसाल मुखचंद री ।”

अरी खरी सटपट परी चितु आधैं मग हेरि ।

संग लगे मधुपनु लई भागनु गला अँधेरि ॥ ३१४ ॥

अन्वय—अरी आधैं मग चितु हेरि खरी सटपट परी । संग लगे मधुपनु भागनु गला अँधेरि लई ।

खरी=अत्यन्त, अधिक । सटपट परी=सकपकाहट में पड़ गई । मग=रास्ता । हेरि=देखकर । मधुपनु=मधुपों से, मधुपों के कारण । भागनु=भाग्य से । अँधेरि लई=अँधियारी हो गई ।

अरी ! आधी राह पर चन्द्रमा को देखकर तुम बहुत सकपकाहट में क्यों पढ़ गई हो—ज्योही आवी राह खतम हुई कि चन्द्रोदय देखकर असमंजस में पढ़ गई (कि मैं जाऊँ या नहीं, और यदि जाऊँ, तां कैसे जाऊँ, कहीं कोई देख न ले) किन्तु (शरीर की सुगंध के लोम से) साथ लगे हुए भौंरों के कारण मामय से हाँ गली में अँधियारी छा गई । (जिससे तुम्हें कोई नहीं देख सकेगा ।) ॥ ३१४ ॥

जुवति जोन्ह मैं मिलि गई नैंकु न होति लखाइ ।

सौंधे कै डौरैं लगी अली चली सँग जाइ ॥ ३१५ ॥

अन्वय—जुवति जोन्ह मैं मिलि गई, नैंकु न लखाइ होति । सौंधे कै डौरैं लगी अली सँग चली जाइ ।

जुवति = जवान लड़ी । जोन्ह = चाँदनी । नैंकु = तनिक । सौंधे = सुमंध । डौरैं लगी = डोर पकड़े, डोस्तियाई हुई, आश्रय (सहारे) से । अली = सखी ।

नवयौवना (नायिका) चाँदनी में मिल गई—उसका प्रकाशवान् गौर शरीर चन्द्रमा की उज्ज्वल किरणों में साफ मिल गया—जरा भी नहीं दीख पड़ी ! (अतएव, उसकी) सखी सुगंध की डोर पकड़े—उसके शरीर की सुगंध का सहारा लेकर—(पीछे-पीछे) साथ में चली गई ।

ज्यों ज्यों आवति निकट निसि त्यों त्यों खरी उताल ।

भमकि भमकि टहलैं करै लगी रहँचटैं बाल ॥ ३१६ ॥

अन्वय—ज्यों ज्यों निसि निकट आवति त्यों त्यों खरी उताल रहँचटैं लगी बाल भमकि झमकि टहलैं करै ।

निसि = रात । खरी = अत्यन्त, अधिक । उताल = उतावली, जलदीवाजी । टहलैं = कामकाज । रहँचटैं-लगी = लगन-लगी, प्रेम-पगी ।

ज्यों-ज्यों रात निकट आती है—ज्यों-ज्यों दिन बीतता जाता और रात पहुँचती जाती है—त्यों-त्यों अत्यन्त उतावली से वह प्रेम में पगी बाला (प्रियतम के मिलन का समय निकट आता जान) भमक-झमककर (ताबड़तोड़) घर की टहलैं करती है ।

झुकि-झुकि भपकौहैं पलनु फिरि-फिरि जुरि जमुहाइ ।

बींदि पियागम नींद मिसि दीं सब अली उठाइ ॥ ३१७ ॥

अन्वय—पियागम बींदि झपकौहैं पलनु झुकि-झुकि फिरि-फिरि जुरि जमुहाइ, नींद मिसि सब अली उठाइ दीं ।

झपकौहैं = झपकती (ऊँघती) हुई । पलनु = पलकों से । जमुहाइ = ज़माई (अँगड़ाई) लेकर । बींदि = (संस्कृत 'विदु' = जानना) जानकर । पियागम = प्रीतम का आगमन । मिसि = बहाना ।

(उस नायिका ने) प्रीतम के आगमन (का समय) जान झपकती हुई पलकों से झुक-झुककर और बार-बार मुड़ती हुई ज़माई लेकर नींद के बहाने सब सखियों को उठा (जगाकर हटा) दिया (सब सखियाँ उसे ऊँघती हुई जानकर चली गईं) ।

अँगुरिन उचि भरु भोति दै उलमि चितै चख लोल ।

रुचि सौं दुहूँ दुहूँन के चूमे चारु कपोल ॥ ३१८ ॥

अन्वय—अँगुरिन उचि, भोति भरु दै, उलमि लोल चख चितै, दुहूँ रुचि सौं दुहूँन के चारु कपोल चूमे ।

उचि = उचककर । भरु = भार । भोति = भित्ति, दीवार । उलमि = उशक-कर । चख = आँख । लोल = चंचल । रुचि = प्रेम । दुहूँ = दोनों । चारु = सुन्दर । कपोल = गाल ।

(पैर का) अँगुलियों पर उचक—अँगुलियों पर खड़ा हो—दीवार पर शरीर का भार दे और उफककर चंचल आँखों से (इधर-उधर) देखकर दोनों ने प्रेम से दोनों के सुन्दर गालों का (परस्पर) चुम्बन किया ।

नोट—नायिका और नायक के बीच में उन दोनों से कुछ ऊँची दीवार थी । उस समय उन दोनों ने जिस कौशल से परस्पर चुम्बन किया था, उसी का वर्णन इस दोहे में है ।

चाले की बातैं चलाँ सुनत सखिनु कैं टोल ।

गोएहू लोचन हँसत बिहँसत जात कपोल ॥ ३१९ ॥

अन्वय— सखिनु के टोल चाले की बातें चर्लीं सुनत गोएँहू कोचन हँसत कपोल बिहँसत जात ।

चाले=गौना । बातें चर्लीं=चर्चा छिड़ी । टोल=टोली, गोष्ठी, झुंड । गोएँहू=छिपाने पर भी । लोचन=आँखें । बिहँसत=खिलते ।

सखियों की टोली में 'गौने की बातचीत चल रही है'—यह खबर सुनकर (प्रसन्नता को) छिपाने (की चेष्टा करने) पर भी (प्रीतम के मिलन के उत्साह में नायिका की) आँखें हँसती हैं, और गाल खिलते जाते हैं—यद्यपि लाज के मारे खुलकर नहीं हँसती, तथापि उसकी आँखों में और गालों पर आनन्द का प्रभाव (विकास) स्पष्ट दीख पड़ता है ।

मिसि हीं मिसि आतप दुसह दई और बहकाइ ।

चले ललन मनभावतिहिं तन की छाँह छिपाइ ॥ ३२० ॥

अन्वय— मिसि-हीं-मिसि दुसह आतप और बहकाइ दई, ललन मनभाव-तिहिं तन की छाँह छिपाइ चले ।

मिसि=बहाना । आतप=धूप । और=ओरों को । दुसह=नहीं सहने योग्य । मनभावतिहिं=चहेती छीं के पास । छाँह=छाया ।

बहाने-ही-बहाने में (उस) कढ़ी धूप में दूसरी (सखियों) को बहका दिया—उस स्थान से हटा दिया । फिर ललन (श्रीकृष्ण) प्यारी (राधिका) को शरीर की छाया में छिपाकर (जिससे उसे धूप न लगे) चल पड़े । (अद्भुत आज्ञिगत !)

लाई लाल विलोकियैं जिय की जीवन-मूलि ।

रही भौन के कोन मैं सोनजुही-सी फूलि ॥ ३२१ ॥

अन्वय— लाल, लाई जिय की जीवन-मूलि बिलोकियैं । भौन के कोन मैं सोनजुही-सी फूलि रही ।

लाई=ले आई । जिय=प्राण । जीवन-मूलि=संजीवनी बूटी । भौन=धर । सोनजुही=पीली चमेली । फूलि=प्रफुल्ल, प्रसन्न ।

हे लाल ! मैं बुला लाई हूँ, अपने प्राण की संजीवनी बूटी को देखिए—जिसके किष्ट आपके प्राण निकल रहे थे, उस (प्राण-संचारिणी) नवयुवती को

देखिए । (उधर) घर के कोने में वह पीढ़ी चमेली के समान फूल रही है— पीढ़ी चमेली के समान देह वाली वह युवती आश्की प्रतीचा में आनन्द-विसोर हो खड़ी है ।

नहि हरि-लौं हियरो धरौ नहि हर-लौं अरधंग ।

एकत ही करि राखियै अंग-अंग प्रत्यंग ॥ ३२२ ॥

अन्वय—नहि हरि लौं हियरो धरौ नहि हर-लौं अरधंग । प्रत्यंग अंग-अंग एकत करि ही राखियै ।

हरि=विष्णु । लौं=समान । हियरो=हृदय में । हर=महादेव । अरधंग =आधा अंग । एकत=एकत्र । प्रत्यंग=प्रति अंग ।

न तो विष्णु के समान (इस नायिका को लक्ष्मी की तरह) हृदय से लगाकर रख्न्हो, और न शिव के समान (इसे पार्वती की भाँति) अर्द्धाङ्गिनी (बनाकर रख्न्हो) । (वरन् इसके) प्रत्येक अंग को (अपने) अंग-अंग से एकत्र (सटा) करके ही रख्न्हो (इसे अपने में इस प्रकार लीन बना लो कि इसका अस्तित्व ही न रह जाय) ।

रही पैज कीर्ना जु मैं दीनो तुमहि मिलाइ ।

राम्बहु चम्पक-माल लौं लाल हियैं लपटाइ ॥ ३२३ ॥

अन्वय—मैं जु पैज कीर्ना रही, तुमहि मिलाइ दीनी । लाल चम्पक-माल लौं हियैं लपटाइ रख्न्हो ।

पैज=प्रतिशा । चम्पक=चम्पा । हियैं=हृदय में ।

मैंने जो प्रनिज्ञा की थी सां रह गई—पूरी हो गई—तुमसे (इस नायिका को) मिला दिया । अब हे लाल ! इसे चम्पा की माला के समान अपने गले में लिपटाकर रख्न्हो ।

रही फेरि मुँह हेरि इत हितु-समुहैं चितु नारि ।

डीठि परत उठि पीठ की पुलकैं कहैं पुकारि ॥ ३२४ ॥

अन्वय—मुँह फेरि इत हेरि रही नारि चितु हितु-समुहैं डीठि परत पीठि की गुलक उठि पुकारि कहैं ।

हेरि=देखना । इत=इधर, मेरी ओर । हितु-समुहैं=प्रेमी के सामने ।
चित=हृदय । डीठि=दृष्टि, नजर । पुलकैं=रोमांच ।

मुँह फेरकर इधर देख रही हो, (किन्तु) हे बाले ! (तुम्हारा) चित तो
अपने प्रेमी के सामने है । यद्यपि तुम मेरी ओर देख रही हो, किन्तु तुम्हारा
मन सामने खड़े हुए नायक की ओर है । (नायक को) नजर पड़ते ही (प्रेमा-
वेश में तुम्हारी) पीठ की पुलकें उठकर (पीठ के रोंगटे खड़े होकर) यह
आत पुकार-पुकारकर कह रही हैं ।

दोऊ चाह भरे कछू चाहत कछौ कहैं न ।

नहि जाँचकु सुनि सूम लौं वाहिर निकसत वैन ॥ ३२५ ॥

अन्वय—दोऊ चाह भरे कछू कछौ चाहत, कहैं न, जाँचकु सुनि सूम लौं
वाहिर वैन नहिं निकसत ।

चाह = प्रेम । सूम = कंजमू, कृपण, वरकट । जाँचकु = भिक्षुक, मँगता ।
लौं = समान । वैन = वचन ।

दोनों चाह से भरे—प्रेम में पगे—(एक दूसरे को) कुछ कहना चाहते हैं
किन्तु कह नहीं सकते । याचक के आने की खबर सुनकर सूम के समान उनके
वचन बाहर नहीं निकलते—जिस प्रकार याचक के आने की खबर सुनकर सूम
घर से बाहर नहीं निकलता, उसी प्रकार उन दोनों के वचन भी मुख से बाहर
नहीं होते ।

लहि सूनै घर करु गहत दिखादिखी की ईठि ।

गड़ी सुचित नाहीं करति करि ललचौंही डीठि ॥ ३२६ ॥

अन्वय—दिखादिखी की ईठि सूने घर लहि करु गहत । डीठि ललचौंही
करि नाहीं करति सुचित गड़ी ।

लहि = पाकर । सूने = शून्य, एकान्त, अकेला । करु = हाथ । ईठि = इष्ट,
प्रेम । ललचौंही = ललचानेवाली ।

(उसकी मेरी) देखादेखी की ही प्रीति थी—बातें तक नहीं हुई थीं, केवल
वह मुझे देखती थी और मैं उसे देखता था, इसी में प्रेम हो गया था । (एक

दिन) सूने घर में (उसे) पाकर (मैंने उसकी) बाँह पकड़ी । उस समय वह आँखों ललचौंही बनाकर 'नाहीं-नाहीं' करती हुई मेरे चित्त में गड़ गई—बाँह पकड़ते ही अभिलाषा-मरी आँखों से उसने जो 'नहीं-नहीं' की सो हँदय में गड़ रही है ।

गली अँधेरी साँकरी भौ भटभेरा आनि ।

परे पिछानै परसपर दोऊ परस पिछानि ॥ ३२७ ॥

अन्वय—साँकरी अँधेरी गली आनि भटभेरा भौ । परस पिछानि दोऊ परसपर पिछाने परे ।

साँकरी = तंग, पतली । भौ भटभेरा = मुठमेड़ हुई, टक्कर लड़ी । आनि = आकर । पिछाने = पहचाने । परस पिछानि = स्पर्श की पहचान से ।

(नायिका नायक से मिलने जा रही थी और नायक नायिका से मिलने आ रहा था कि इतने ही में) पतली और अँधेरी गली में आकर (दोनों का) मुठमेड़ हो गई—एक दूसरे से टकरा गये । (और टकराते ही शरीर के) स्पर्श की पहचान से दोनों परसपर पहचान गये—एक दूसरे को स्पर्श करके हाँ एक दूसरे को पहचान गया ।

हरपि न बोली लखि ललनु निरसि अमिलु सँग साथु ।

आँखिनु ही मैं हँसि धर्यौ सासि हियै धरि हाथु ॥ ३२८ ॥

अन्वय—सँग साथु अमिलु निरखि ललनु लखि हराप बोली न । आँखिनु मैं ही हँसि हाथु हियै धरि सासि धर्यौ ।

ललन = प्यारे, श्रीकृष्ण । अमिल = बेमेल, अनज्ञान । हियै = हँदय ।

संगी-साथियों को अपरिचित जान श्रीकृष्ण को देखकर प्रसन्न होने पर भी कुछ बोली नहीं । हाँ आँखों में ही हँसकर (अपना) दाथ (पहले) हँदय पर रख (फिर उसे) सिर पर रक्खा—(अर्थात्) हँदय में बसते हो, प्रणाम करती हूँ ! (स्वासी सलामी दर्गी !)

भंटत बनै न भावतो चितु तरमतु अति प्यार ।

धरति लगाइ-लगाइ उर भूपन बसन हथ्यार ॥ ३२९ ॥

विहारी-सतर्सई

अन्वय— मावतो भेटत न बनै अति प्यार चितु तरसतु, भूषन बसन हथ्यार उर लगाह-लगाइ धरति ।

मावतो = प्यारे । तरसतु = ललचता है । बसन = कपड़े । उर = हृदय ।

अपने प्यारे से भेटते नहीं बनता—दिन होने के कारण गुरुजनों के सम्मुख में नहीं कर पाती—और अत्यन्त प्रेम के कारण चित्त तरस रहा है । (अतएव उनके) गहनों, कपड़ों और हथियारों को हृदय से लगा-लगाकर रखती है ।

नोट— सैनिक पति बहुत दिनों पर घर लौटा है । दिन होने के कारण वह बाहर की बैठक में ही रह गया और अपने आभूषण, बस्त्र और अस्त्र-शस्त्र घर भेज दिये । उस समय उसकी स्त्री की दशा का वर्णन इस दोहे में है ।

कोरि जतन कोऊ करौ तन की तपनि न जाइ ।

जौ लौं भीजे चीर लौं रहै न प्यौ लपटाइ ॥ ३२० ॥

अन्वय— कोरि जतन कोऊ करौ तन की तपनि न जाइ जौ लौं भीजे चीर लौं प्यौ लपटाइ न रहै ।

कोरि = करोड़ । तपनि = ताप, ज्वाला । जौ लौं = जब तक । भीजे चीर = तर या गीला कपड़ा । लौं = समान । प्यौ = प्रिय, प्रीतप ।

करोड़ों यत्न कोई क्यों न करो, किन्तु उस (विचोगिनी) के शरीर की ज्वाला न जायगी—(विरहाङ्गि) नहीं शान्त होगी । जबतक कि भींगे हुए चीर के समान (उसका) प्रीतम (उससे) लिपटकर न रहे ।

तनक भूँठ नसवादिली कौन बात परि जाइ ।

तिय मुख रति-आरम्भ की नहिं भूठियै मिठाइ ॥ ३२१ ॥

अन्वय— तनक भूठ नसवादिली बात पर कौन जाइ तिय मुख रति-आरम्भ की नहिं भूठियै मिठाइ ।

तनक = थोड़ा । नसवादिली = निस्वादु, बेमजा । तिय = स्त्री । रति = समागम, सम्भोग । मिठाइ = मीठी लगती है । भूठियै = भूठी भी ।

“योड़ा भूठ भी बेमजा है”—(इस) बात पर कौन जाय—कौन भूँड़े । झाँड़ी के मुख से समागम के आरम्भ में (निकली हुई) ‘नहीं’ झाँड़ी भी माड़ी लगती है ।

नोट—दुलहिन की 'नाहीं' पर कविवर दूलह कहते हैं—धरी जब बाहीं तब करी तुम नाहीं पाय दियो पलँगाही नाहीं-नाहीं कै सुहाई है। खोलत में नाहीं, पट खोलत में नाहीं, 'कवि दूलह' उछाहीं लाख भाँतिन लखाई है। चुम्बन में नाहीं, परिरंभन में नाहीं, सब हासन विलासन में नाहीं ठकीठाई है। मेलि गलबाही केलि कीन्हीं चितचाहीं, यह 'हाँ' ते भली 'नाहीं' सो कहाँ ते सीख 'आई हौ ?'

भौंहनु त्रासति मुँह नटति आँखिनु सौं लपटाति ।

ऐचि छुड़ावति करु इँची आगै आवति जाति ॥ ३३२ ॥

अन्वय—भौंहनु त्रासति मुँह नटति आँखिनु सौं लपटाति, ऐचि करु छुड़ावति इँची आगै आवति जाति ।

त्रासति = डरवाती है । नर्ति = नहीं-नहीं (इनकार) करती है । ऐचि = लींचकर । इँची = लिंचती । आगे आवति जाति = सामने वा पास चली आती है ।

मौँहों से डरवाती है—मौँहें टेढ़ी कर कोध प्रकट करती है । मुख से 'नहीं-नहीं' करती है । आँखों से जिपटनी है—प्रेम प्रकट करनी है (और) लींचकर (अपना) हाथ (मेरे हाथ से) कुड़ाती हुई भी (वह स्वयं) लिंचती हुई आगे ही आती-जाती है—यद्यपि वह बाँह छुड़ाकर सामने का बडाना करती है, तो भी नेरी ओर बढ़ती आती है ।

दीप उज्जरै हू पतिहि दरत बसनु रति काज ।

रही लिपटि छवि की छटनु नेकौं छुटी न लाज ॥ ३३३ ॥

अन्वय—दीप-उज्जरै हू रति-काज पतिहि बसनु दरत, छवि की छटनु लिपटि रही, लाज नेकौं न छुटी ।

उज्जरै हू = उजाले में भी । बसनु = बस्त्र, साढ़ी । रति-काज = सहवास (समागम) के लिए । छटनु = छदा से । नेकौं = जरा भी ।

दीपक के उजाले में भी समागम के लिए पात उसके बन्ध हरण कर रहा है—शरीर से कपड़े हटा रहा है । किन्तु, सौंदर्य की छदा से—शरीर भी शोभा-जनित आभा से किपटी रहने के कारण उसकी लाज जरा भी न छुटी (यद्यपि

वस्त्र हटा दिया गया, तो भी उसके शरीर की द्युति में नायक की आँखें चौधिया गईं, जिससे उसे नगनता की लाज न उठानी पड़ी !)

लखि दौरत पिय-कर-कटकु बास छुड़ावन काज ।

बरुनी बन गाढ़ै दग्नु रही गुदौ करि लाज ॥ ३३४ ॥

अन्वय—बास छुड़ावन काज पिय-कर-कटकु दौरत लखि लाज बरुनी गाढ़ै बन दग्नु गुदौ करि ।

कर = हाथ । कटकु = सेना । बास = (१) वस्त्र (२) निवास-स्थान ।
बरुनी = पलक के बाल । गाढ़ै = सघन । दग्नु = आँखों । गुदौ करि = किला बनाकर ।

वस्त्र (रूपी निवास-स्थान या देश) छुड़ाने के लिए प्रीतम के हाथ-रूपी सेना को दौड़ाते (तावड़तोड़ वस्त्रहरण करते) देखकर (नायिका की) लज्जा बरुनी-रूपी सघन बन में (बने हुए) आँखों को किला बनाकर छिप रही— (समूचे शरीर से सिमटकर लाज आँखों में आ छिपी !)

नोट—अत्यन्त लज्जा से लियाँ आँखें बन्द कर लेती हैं । जवरदस्ती नगन किये जाने पर स्वभावतः उनकी आँखें बन्द हो जाती हैं ।

सकुचि सरकि पिय निकट तै मुलकि कछुक तनु तोरि ।

कर आँचर की ओट करि जमुहानी मुँह मोरि ॥ ३३५ ॥

अन्वय—सकुचि पिय निकट तै सरकि तनु तोरि कछुक मुलकि कर आँचर की ओट करि मुँह मोरि जमुहानी ।

सकुचि = लजाकर । सरकि = सरककर, हटकर । मुलकि = मुस्कुराकर । तनु तोरि = अँगड़ाई लेकर । कर = हाथ । जमुहानी = जँमाई ली, देह को ऐंठा । मुख मोरि = मुँह फेरकर ।

(समागम के बाद) लजाकर प्रीतम के निकट से कुछ दूर हट, अँगड़ाई लेकर कुछ मुस्कुराई तथा हाथ और आँचल की ओट कर, मुख फेरके जँमाई ली ।

सकुच सुरत आरंभ हीं विछुरी लाज लजाइ ।

ढरकि ढार दुरि ढिग भई ढीठि ढिठाई आइ ॥ ३३६ ॥

अन्वय— सकुच सुरत आरंभ हीं लाज लजाइ बिल्कुरी ढीठि डिठाई आइ
दार दुरि दरकि दिग भई—अथवा—ढाठि डिठाई दरकि दार दुरि आइ दिग भई।

सकुच=(१) सकुचाकर (२) कुच-सहित । दरकि=दरककर,
खिसककर । दार दुरि=अनुकूल या प्रसन्न हो ।

(१) सकुचाकर समागम के आरम्भ में ही (वह नायिका) लाज से
लजाकर दूर हट गई; किन्तु ढीठ डिठाई के आगे पर वह सहर्ष खिसककर
निकट आ गई—(पहले लजावश अलग हट गई; पर जब डिठाई ने उत्साहित
किया, तब पास चली आई) । अथवा—(२) कुच स्पर्श के साथ समागम के
आरम्भ होते ही लजा (वेचारी) लजाकर दूर हो गई (लाज जाती रही)
और धृष्ट धृष्टता खिसककर, प्रसन्न हो, निकट आकर उपस्थित हुई—(लजीली
लाज भरी और शोख डिठाई सामने आई) ।

पति रति की वतियाँ कहीं सखी लखी मुसकाइ ।

कै कै सबै टलाटली अली चलीं सुख पाइ ॥ ३३७ ॥

अन्वय— पति रति की वतियाँ कहीं सखी मुसकाइ लखा सबै अली
टलाटली कै कै सुख पाइ चलीं ।

रति=समागम । लखी=देखी । टलाटली=टालमटूल, बहाना । अली=
खिल्लियाँ । मुख पाइ=मुखी (प्रसन्न) होकर ।

पति ने (इधारे से) रति की बाने कहीं, (इमवर नायिका ने) सखियाँ
की ओर मुस्कुराकर देखा । (मर्म समझकर) सब सखियाँ टालमटूल कर-करके
प्रसन्न हो (वहाँ से) चल दीं ।

चमक तमक हाँसी ससक मसक झपट लपटानि ।

ए जिहि रति सो रति मुकुति और मुकुति अति हानि ॥ ३३८ ॥

अन्वय— (ज्यों का ज्यों)

चमकना और तमकना—कभी चिह्नें उठना और कभी क्रोधित हो जाना,
हँसना और खिसकना—कभी मज्जा पाने पर हँस पड़ना और कभी जोर पड़ने
पर कष से सी-सी करना; मसकना और झपटकर जिपटना—शर्रार के मदित

किये जाने पर बार-बार गले से लिपट जाना; ये सब मावमंगियाँ जिस समागम में हों, वही समागम (वास्तव में) मोक्ष है (मोक्ष-नुल्य आनन्दप्रद है), और प्रकार के मोक्ष में तो अत्यन्त हानि (बड़ा घाटा) है ।

नोट--विहारी ने इसमें समागम-समय की पूरी तस्वीर तो खींच ही दी है, साथ ही शब्द-संगठन ऐसा रखा है कि यह योगियों के ब्रह्मानन्द पर भी पूर्ण रूप से घटता है । योगी भी ब्रह्मानन्द में मस्त हो कभी चौंक उठते हैं, कभी उत्तेजित हो जाते हैं, कभी हँस पड़ते हैं, कभी रो पड़ते हैं और कभी भाव-विहळता के कारण श्लिष्टकर (ध्यानस्थ इष्टदेव से) लिपटने की चेष्टा करते हैं । वही परमानन्दमय 'कैवल्य-परमपद' वास्तविक मोक्ष है, अन्य प्रकार के मोक्ष व्यर्थ हैं ।

जदपि नाहिं नहीं बदन लगी जक जाति ।

तदपि मौह हाँसी-भरिनु हाँ सीयै ठहराति ॥ ३३९ ॥

अन्वय—जदपि बदन नाहिं नहीं जक लगी जाति तदपि हाँसी-भरिनु मौह हाँ-सीयै ठहराति ।

बदन = मुख । जक = रठन, आदत । हाँसी भरिनु मौह = प्रसन्न मौह, आनन्दयोतक भौंह । हाँ सीयै = हाँ के समान ही । ठहराति = जान पड़ती है ।

यद्यपि (नायिका के) मुख में 'नहीं-नहीं-नहीं' की ही रट लग जाती है— वह सदा 'नहीं-नहीं' (इनकार) ही करती जाती है, तथापि हाँसी-मरी हुई (विक्सित) मौहों के कारण ('नहीं-नहीं' भी) 'हाँ' के समान ही जान पड़ती है— 'हाँ' के समान ही सुखदायक मालूम होती है ।

पस्यौ जोह विपरीत-रति रुपी सुरति रनधीर ।

करत कुलाहलु किंकिनी गद्यौ मौनु मंजीर ॥ ३४० ॥

अन्वय—विपरीत-रति जोह पस्यौ, धीर सुरति रन-रुगी किंकिनी कुलाहलु करत मंजीर मौनु गद्यौ ।

विपरीत रति = (समागम काल में) नायक नीचे और नायिका ऊपर । रुपी = पैर रोपे (जमाये हुई है, डटी है । सुरति = समागम । रन = युद्ध । किंकिनी = कमर में पहनने का एक दुँघरुदार आभूषण, करघनी । मौन गद्यौ =

मौनावलम्बन, चुप साधे रहना । मंजीर = पाँवों में पहनने का एक रुनझुनकारी गहना, नूपुर ।

विपरीत रति में खूब जोर पढ़ रहा है—जोरों के साथ विपरीत रति जारी है । वह धीरा समागम-रुग्णी युद्ध में डटी है । (अतएव, कमर की) किंकिणी शोर कर रही है, और (पाँवों के) नूपुर मौन पकड़े हुए (चुप) हैं ।

नोट—पिपरीत-रति में नायिका की कटि चंचल (क्रियाशील) है, इसलिए किंकिणी वज रही है, और पैर (जमे हुए) स्थिर हैं, इसलिए नूपुर चुप हैं ।

विनती रति विपरीत को करो परसि पिय पाइ ।

हँसि अनबोलै ही दियौ ऊतरु दियौ बुताइ ॥ ३४१ ॥

अन्वय—पिय पाइ परसि विपरीत रति की विनती करी, अनबोलै ही हँसि दियौ बुताइ ऊतरु दियौ ।

परसि = स्पर्श कर, छूकर । प्रिय = प्रीतम । पाइ = पैर । अनबोलै ही = विना कुछ कहे ही । ऊतरु दियौ = जवाब दिया । दियौ बुताइ = दीपक चुम्फाकर ।

प्रीतम ने (नरविका के) पैर छूकर विपरीत रति के लिए विनती की । (इसपर नायिका ने) विना कुछ मुँह से बोके ही (केवल) हँसकर दीपक चुम्फाकर उत्तर दे दिया (कि मैं तैयार हूँ, लाजिए—चिराग भी गुल हुआ !)

मेरे वूफत बात तूँ कत बहरावति बाल ।

जग जानी विपरीत रति लखि विंदुली पिय भाल ॥ ३४२ ॥

अन्वय—मेरे वूफत बाल तूँ कत बात बहरावति पिय-भाल विंदुल लखि जग विपरीत रति जानी ।

कत = क्यों । बहरावति = बहलाती है, चकमा देती है । जग जानी=दुनिया जान गई । विंदुली = टिकुली, चमकी या सितारा ।

मेरे पूछने पर भरी बाला ! तूँ क्यों चकमा देती है ? प्रीतम के ललाट में (तेरी) टिकुली देखकर संसार जान गया कि (तुम दोनों ने) विपरीत रति की हैं ।

नोट—विपरीत-रति में ऊपर रहने के कारण नायिका की ठिकुली गिरकर नीचे पड़े हुए नायक के ल्लाट पर सट गई ।

राधा हरि हरि राधिका बनि आए संकेत ।

दम्पति रति-विपरीत-सुखु सहज सुरत हूँ लेत ॥ ३४३ ॥

अन्वय—संकेत राधा हरि, हरि राधिका बनि आए सहज सुरत हूँ दम्पति विपरीत रति(सुखु) लेत ।

बनि आए=बनकर आये, रूप धरकर आये । संकेत=गुप्त मिलन का पूर्व-निश्चित स्थान । दम्पति=स्त्री-पुरुष दोनों, संयुक्त । सहज=स्वाभाविक । सुरत=समागम । हूँ=भी ।

गुप्त मिलन के स्थान पर राधा कृष्ण का (रूप धरकर आई) और कृष्ण राधा का रूप धरकर आये (अतएव, इस रूप-बदलौअल के कारण) स्वाभाविक समागम में दम्पति (राधा और कृष्ण —दोनों) विपरीत रति का सुख के रहे हैं ।

नोट—कृष्ण के वेप में राधा ऊपर और राधा के वेप में कृष्ण नीचे हैं । परिवर्तित रूप के अनुसार तो स्वाभाविक रति है । पर वास्तव में विपरीत रति ही है ।

रमन कह्यो हठि रमनि कौं रति विपरीत विलास ।

चितई करि लोचन सतर सलज सरोस सहास ॥ ३४४ ॥

अन्वय—रमन हठि विपरीत-रति विलास रमन कौं कह्यो लोचन सतर सलज सरोस सहास करि चितई ।

सतर=तिरछी । सलज=लज्जा-सहित, लजीली । सरोस=कोध-सहित, रोपीली, लाल । सहास=हास-युक्त, हँसीली, प्रफुल्ल ।

रमण (श्रीकृष्ण) ने हठ करके (राधा से) विपरीत-रति के विलास में (रमने) कहा । (इसपर राधा ने) अपनी आँखों को तिरछी, लजीली, रोसीली और हँसीली बनाकर (श्रीकृष्ण) को ओर देखा ।

रँगी सुरत-रँग पिय-हियै लगी जगी सब राति ।

पैँड़-पैँड़ पर ठढुकि कै एँड़-भरी एँड़ाति ॥ ३४५ ॥

अन्वय— सुरत-रँग-रँगी पिय-हियै लगी सब राति जगी । पैँड़-पैँड पर ठुकिके ऐँड़-मरी ऐँड़ाति ।

सुरत=समागम, राति । हियै लगी=हृदय से सटी हुई । पैँड़-पैँड=पग-पग पर । ठुकिके=ठिठककर, रुक-रुककर । ऐँड़-मरी=सौभाग्य-गर्व से भरी । ऐँड़ाति=अँगड़ाई लेती है, देह ऐँठती है ।

समागम के रँग में रँगी, प्रीतम के हृदय से लगी सारी रात जगी है ।
(अतएव, दिन में आलस के मारे) पग-पग पर ठिठक-ठिठककर गर्व से अँगड़ाई के रही है ।

लहि रति-सुखु लगियै हियै लखो लजौंही नीठि ।

खुलत न मो मन बँधि रही वहै अधखुली डाठि ॥ ३४६ ॥

अन्वय— रति-सुखु लहि हियै लगियै लजौंही नीठि लखा, वहै अधखुली डाठि मो मन बँधि रही खुलत न ।

रति-सुखु=समागम का सुख । हियै=हृदय में । लजौंही=लजीती । नीठि=मुश्किल से । मो=मेरे । मन बँधि रही=मन में बस रही है ।

समागम का सुख पाकर हृदय से लग गई और लजीती (आँखों से) मुश्किल से (मेरा ओर) देखा । उस समय की उसकी वह अधखुली नजर मेरे मन से बँध रही है, खुलती नहीं—उसका वह लजीती और अधखुली नजरों से देखना मुझे नहीं भूलता ।

कहु उठाइ बूँबढु करत उभरत पट गुझरौट ।

सुख मोटै लूटी ललन लगिव ललना की लौट ॥ ३४७ ॥

अन्वय— कहु उठाइ बूँबढु करत गुझरौट पट उझरत, ललना की लौट लगिव ललन सुख मोटै लूटी ।

उझरत=सरक जाने से । पट गुझरौट=सिकुड़ा हुआ वस्त्र । मोटै=गठरियाँ । ललन=नायक । ललना=नायिका । लौट=अदा से वूम जाना ।

हाथ उठाकर बूँबढ करते समय मिकुड़े हुए कपड़ों के सरक जाने से नायिका का (नायक से लगाकर) वूम जाना देखकर नायक ने सुख की मोटरियाँ लूटी—(सुख का खजाना पा लिया) ।

हँसि ओठनु बिच कर उचै कियै निचौंहै नैन ।

खरैं अरैं पिय कैं प्रिया लगी विरी मुख दैन ॥ ३४८ ॥

अन्वय—ओठनु बिच हँसि कर उचै, नैन निचौंहै कियै प्रिया खरैं अरैं
पिय कैं मुख विरी देन लगी ।

उचै=ऊँचा कर । निचौंहै=नीचे की ओर । खरे=अत्यन्त । अरे=हठ
किये (अडे) हुए । विरी=पान का बीड़ा । दैन लगी=देने लगी ।

(प्रीतम ने प्यारी के हाथों से पान खाने का हठ किया, इसपर) ओढ़ों के
बीच में हँसकर—कुछ मुस्कुराकर—हाथ ऊँचा कर और आँखें नीची किये प्यारी
अत्यन्त हठ किये हुए प्रीतम के मुख में पान का बीड़ा देने लगी ।

नाक मोरि नाहीं ककै नारि निहोरै लेइ ।

छुवत ओंठ विय आँगुरिनु विरी बदन प्यौ देइ ॥ ३४९ ॥

अन्वय—नाक मोरि नाहीं ककै नारि निहोरै लेइ आँगुरिनु विय ओंठ छुवत
प्यौ बदन विरी देइ ।

नाक मोरि=नाक सिकोड़कर । ककै=करके । नारि=स्त्री, नायिका ।
निहोरै=आग्रह या अनुनय-विनय करने पर । विय=दोनों । विरी=पान का
बीड़ा । बदन=मुख । प्यौ=प्रीतम, नायक ।

नाक सिकोड़कर नहीं-नहीं करके नायिका निहोरा करने पर (बीड़ा) लेती है,
और नायक अँगुलियों से दोनों ओंठ छूते हुए नायिका के मुख में पान का बीड़ा
देता है ।

नोट—दोनों नजाकत से भरे हैं । नायिका लेते समय नहीं-नहीं करती है,
तो नायक देते समय उसके कोमल गुलाबी ओढ़ों को ही छू लेता है ।

सरस सुमिल चित तुरँग की करि-करि अभित उठान ।

गोइ निवाहैं जीतियै प्रेम-खेलि चौगान ॥ ३५० ॥

अन्वय—सरस सुमिल चित तुरँग की अभित उठान करि करि गोइ निवाहैं
प्रेम-खेलि चौगान जीतियै ।

सरस=‘प्रेम’ के अर्थ में ‘रसयुक्त’ और ‘घोड़े’ के अर्थ में ‘पुष्ट’ । सुमिल
=(१) मिलनसार (२) जो सवार के इच्छानुसार दौड़े । अभित=अनेक ।

उठान = धावा । गोइ निचाहैं = (१) छिपाकर निचाहने से (२) छिपाकर 'गोल' (लक्ष्य) तक ले जाने से । चौगान खेल = घोड़े पर चढ़कर गेंद खेलना ।

रसयुक्त (पुष्ट) और मिळनसार चित्त-रूपी घोड़े के अनेक अनेक धावे करके छिपा-छिपाकर निर्वाह करने ('गोल' लक्ष्य तक ले जाने) से ही प्रेम-रूपी चौगान के खेल में जीत सकोगे ।

हग मिहचत मृगलोचनी भज्यौ उलटि भुज बाथ ।

जानि गई तिय नाथ के हाथ परस ही हाथ ॥ ३५१ ॥

अन्वय—हग मिहचत मृगलोचनी भुज उलटि बाथ भस्यौ हाथ परस ही तिय जानि गई नाथ के हाथ ।

टग = आँख । मिहचत = मूँदना । मृगलोचनी = वह स्त्री जिसके नेत्र मृग के नेत्र से बड़े-बड़े हों । बाथ = अँकवार । परस = त्पर्श ।

आँखों मूँदते ही—ज्यों ही प्रीतम ने पांछे से आकर उसकी आँखों बन्द की—त्यों ही उस मृगलोचनी ने (अपनी) भुजाएँ उलटकर उसे (निस्संकोच) अँकवार में भर लिया । (क्योंकि) हाथों के स्पर्श होते ही युवती जान गई कि (ये) प्रीतम के ही हाथ हैं ।

प्रीतम हग मिहचत प्रिया पानि-परस सुखु पाइ ।

जानि पिछानि अजान लौं नैकु न होति जनाइ ॥ ३५२ ॥

अन्वय—प्रिया हग मिहचत पानि-परस सुखु पाइ प्रीतम जानि पिछानि आन लौं नैकु न जनाइ होति ।

पानि-परस = पाणि-स्पर्श, हाथ का त्पर्श । पिछानि = पहचानकर । अजान = अश्व, अनभिज्ञ । लौं = समान । नैकु = जरा, तनिक । न होति जनाइ = प्रकट नहीं करता, परिचय नहीं बतलाता ।

प्रिय (नायिका) द्वारा आँखों के बन्द किये जाने पर (उसके कोमल) हाथों के स्पर्श का सुन्न पाकर प्रीतम (उसे भजी भाँति) जान और पहचानकर मी अजान के समान तनिक प्रकट नहीं होता (वह प्रकट नहीं करता कि तू कौन है, क्योंकि कर-स्पर्श-जन्य सुख मिल रहा है ।)

कर मुँदरी की आरसी प्रतिविम्बित प्यौ पाइ ।

पीठ दियै निधरक लखै इकटक डीठि लगाइ ॥ ३५३ ॥

अन्वय—कर मुँदरी की आरसी प्यौ प्रतिविम्बित पाइ पीठ दियै इकटक डीठि लगाइ निधरक लखै ।

मुँदरी=अङ्गूठी । आरसी=दर्पण, नगीना । प्यौ=पिया, प्रीतम । पीठ दियै=मुँह फेरकर बैठी हुई । निधरक=वेधरक, स्वच्छन्दता से ।

अपने हाथ की अङ्गूठी के (उज्वल) नगीने में प्रीतम का प्रतिविम्ब देख (वह नायिका, प्रीतम की ओर) पीठ करके एकटक दृष्टि लगाकर (उस नगीने में झलकती हुई प्रीतम-छुबि को) वेधइक देख रही है—नगीने में प्रतिविम्बित प्रीतम की मूर्ति देखकर ही प्रिय-दर्शन का आनन्द लृट रही है ।

नोट—नायिका बैठी थी, नायक चुपकाप आकर उसके पीछे खड़ा हो गया । उसी समय का वर्णन है । ‘रामचरित-मानस’ में भी इसी प्रकार का एक वर्णन है—

निज-पानि-मनि महैं देखि प्रति-मूरति सु कृपानिधान की ।

चालति न भुज-बछड़ी-विलोकनि विरह-वस-भइ जानकी ॥

मैं मिसहा सोयौ समुझि मुँह चूम्यौ ढिग जाइ ।

हँस्यौ खिस्यानी गल रह्यौ रहा गरैं लपटाइ ॥ ३५४ ॥

अन्वय—मैं मिसहा सोयौ समुझि ढिग जाइ मुँह चूम्यौ, हँस्यौ खिस्यानी गल रह्यौ, गरैं लपटाइ रही ।

मिसहा=मिस करनेवाला, वहानेवाज, छली । ढिग=निकट । खिस्यानी=लजित हो गई । गल रह्यौ=गलबहियाँ डाल दी । गरैं=गले से ।

मैंने उस छलिये को सोया हुआ जान निकट जाकर उसका सुँह चूमा । इतने ही में वह (जगा होने के कारण) हँस पड़ा, मैं लजित हो गई, उसने गलबाहीं डाल दी । (तो हार-इँव मैं भी) उसके गले से लिपट गई ।

मुँहु उघारि पिउ लखि रह्यौ रह्यौ न गौ मिस-सैन ।

फरके ओठ उठे पुलक गए उघारि जुरि नैन ॥ ३५५ ॥

अन्वय—सुँहु उधारि पिय लखि रह्हौ, मिस-सैन रह्हौ न गौ ओठ फरके, पुलक उठै, नैन उधरि जुरि गए ।

उधारि = खोलकर । मिस-सैन = बहानेवाजी की नींद, बनावटी सोना (शयन) । पुलक = रोमांच । जुरि = मिलना ।

सुँहु उधारकर—सुँह पर से आँचल हटाकर—प्रीतम देख रहा था, अतः उस (नायिका) से झँठ-मूठ सोया न गया—आँखें मूँदकर जो सोने का बहाना किये हुए थी, सो बैसी न रह सकी । (पहले) ओठ फ़इकने लगे (फिर) रोमांच उठ आये (और अन्त में) आँखें खुलकर (नायक की आँखों से) मिल गईं ।

बतरस-लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ ।

सौंह करै भौंहनु हँसै दैन कहै नटि जाइ ॥ ३५६ ॥

अन्वय—बतरस-कालच लाल का मुरली लुकाइ धरी सौंह करै भौंहनु हँसै, दैन कहै, नटि जाइ ।

बतरस = बातचीत का आनन्द । लुकाइ धरी = छिपाकर रखा । सौंह = शपथ । नटि जाइ = नाहीं (इनकार) कर देती है ।

बातचीत का मजा केने के लोम से श्रीकृष्ण की मुरली छिपाकर रख दी । (अब श्रीकृष्ण के माँगने पर) शपथ खाती है, मौह से हँसती है (मौहों को नचा-नचाकर प्रसन्नता जताती है), देने को कहती है देने पर तैयार होती है, (और पुनः) नाहीं कर देती है ।

नैकु उतै उठि बैठियै कहा रहे गहि गेहु ।

छुटी जाति नहँ दी छिनकु महँदी सूकन देहु ॥ ३५७ ॥

अन्वय—नैकु उतै उठि बैठियै, कहा गेहु गहि रहे ? नहँ दी छुटी जाति छिनकु महँदी सूकन देहु ।

उतै = उधर । गहि = पकड़े । छुटी जाति = धुली या धुली जाती है । नहँ दी = नखों में दी या लगाई हुई । छिनकु = एक क्षण ।

जरा उधर (अक्लग) उठकर बैठो । क्या वर को पकड़े रहते हो; क्या सदा वर में बैठे (धुसे) रहते हो ? (देखो, तुम्हारे निकट रहने से प्रेमावेश के पसीने

के कारण इसके) नेंह में जगाई गई (मेहँदी) छुटी जाती है, एक क्षण के लिए भी तो इस मेहँदी को सूखने दो।

बाम तमासो करि रही विवस बारुनी सेइ ।

भुकति हँसति हँसि हँसि भुकति भुकि भुकि हँसि हँसि देइ ॥ ३५८ ॥

अन्वय—बारुनी सेइ विवस बाम तमासो करि रही। भुकति हँसति हँसि हँसि भुकति भुकि भुकि हँसि हँसि देइ ।

बाम = युवती ल्ली । तमासो = तमाशा, भावभंगी । बारुनी = मदिरा ।
सेइ = सेवन कर, पीकर । भुकि-भुकि = लचक के साथ गिर-गिरकर ।

शराब पीकर बेवस हो वह युवती तमाशा कर रही है—विचित्र हावमाव दिखा रही है। (नशे के झोंक में) भुकतां (लड़खड़ाकर गिरती) है, हँसती है, (फिर) हँस-हँसकर भुकती और भुक-भुककर हँस-हँस (खिलखिला) पड़ती है।

हँसि-हँसि हेरति नवल तिय मद के मद उमदाति ।

बलकि-बलकि बोलति बचन ललकि ललकि लपटाति ॥ ३५९ ॥

अन्वय—मद के मद उमदाति नवल तिय हँसि-हँसि हेरति बलकि बलकि बचन बोलति, ललकि ललकि लपटाति ।

हेरति = देखती है। मद के मद = शराब के नशे में। उमदाति = भूमकर, देखती है। बलकि-बलकि = उबज-उबलकर, उत्तेजित हो-होकर ।

शराब के नशे में वह उन्मादिनी (मस्तानी) नवयुवती हँस-हँसकर देखती है। उमंग से मर-मरकर (अंटसंट) बातें करती है, और ललक-ललककर (उकंठपूर्वक) लिपट जाती है।

खलित बचन अधखुलित दग ललित स्वेद-कन जोति ।

अरुन बदन छवि मदन की खरी छवीली होति ॥ ३६० ॥

अन्वय—खलित बचन अधखुलित दग स्वेद-कन जोति ललित बदन असन मदन की छवि खरी छवीली होति ।

खलित = स्वखलित, स्फुट, अस्पष्ट। स्वेद-कन = पसीने की बूँदें। असन = लाल। खरी = अत्यन्त। मद छकी = शराब के नशे में चूर ।

अस्पष्ट बातें, अधखुली अँखें, (शरीर में) पसीनों के सुन्दर कणों की ज्योति और गुलाला चेहरे की शोभा—(इन लक्षणों से युक्त वह नायिका) कामदेव की-सी शोभावाली अत्यन्त सुन्दरी हो जाती है ।

निपट लज्जीली नवल तिय वहकि बास्नी सेइ ।
त्यौं-त्यौं अति मीठी लगति ज्यौं-ज्यौं ढीछ्यो देइ ॥ ३६१ ॥

अन्वय—निपट लज्जीली नवल तिय वहकि बास्नी सेइ ज्यौं-ज्यौं ढीछ्यो देइ त्यौं-त्यौं अति मीठी लगति ।

निपट = अत्यन्त । नवल = तिय = नवयुवती । वहकि = वहकावे (मुलावे) में आकर । मीठी = भली, प्यारी, लुभावनी, सुस्वादु । ढीछ्यो देइ = ढिठाई दिखाती है ।

अत्यन्त लज्जावती उस नवयुवती ने भुलावे में आकर शराब पी ली—नायक ने शर्वत आदि के बहाने उसे शराब पिला दी; सो (नशे के कारण) ज्यौं-ज्यौं वह (लज्जा छोड़कर) धृष्टा (शोभी) दिखलाती है, त्यौं-त्यौं अत्यन्त मीठी (मनमावनी) लगती है ।

बढ़त निकसि कुच-कोर-रुचि कढ़त गौर भुज-मूल ।

मनु लुटिगौ लोटनु चढ़त चौटत ऊँचे फूल ॥ ३६२ ॥

अन्वय—ऊँचे फूल चौटत कुच-कोर-रुचि निकसि बढ़त, गौर भुज मूल कढ़त लोटनु चढ़त मनु लुटिगौ ।

कुच = स्तन । कोर = बेग, किनारा, मंडल । रुचि = शोभा । भुज-मूल = ऊँचे का मूल-स्थान, पख्तीग । लोटनु = त्रिवली, पेटी । चौटत = चुनते (तोड़ते) समय । ऊँचे फूल = ऊँची डाल के फूल ।

ऊँची डाल से फूल तोड़ते समय (हाथ ऊँचा करने के कारण) उसके कुचमण्डल की शोभा (कंचुकी से) निकलकर बढ़ रही है, तथा (सुन्दर) गोरे पख्तौरे मी (कपड़े हट जाने से) बाहर निकल गये हैं । (इन शोभाओं को देख-कर तो मन मुख्य था ही कि उसका) त्रिवली (की तीन सीढ़ियों) पर चढ़कर मन लुट गया ।

नोट—ऊँचे फूल तोड़ते समय स्वभावतः, पीन कुच की कोर कंचुकी से बाहर दीख पड़ेगी, और लिंचाव के कारण बल्ल हट जाने से पखौरे औरति बली के भी दर्शन हो जायेंगे। सप्तम शतक का ६०८ वाँ दोहा देखिए।

घाम घरीक निवारियै कलित ललित अलि-पुंज ।

जमुना-तीर तमाल-तरु मिलित मालतो-कुंज ॥ ३६३ ॥

अन्वय—जमुना-तीर तमाल-तरु मिलित ललित अलि-पुंज कलित मालती-कुंज घरीक घाम निवारियै ।

घाम = धूप । घरीक = एक घड़ी । निवारियै = गँवाइये, ब्रिताइये । तमाल = एक प्रकार का सुहावना इग्रामल-वृक्ष । मालती-कुंज = मालती-लता-मण्डप ।

यमुना के तीर पर, तमाल तरु से मिलकर बनी हुई सुन्दर भौंरों से सुशो-मित मालती-कुंज में, एक घड़ी धूप गँवा लीजिए ।

चलित ललित स्वम स्वेदकन कलित अरुन मुख तैं न ।

बन-विहार थाकी तरुनि खरे थकाए नैन ॥ ३६४ ॥

अन्वय—चलित ललित स्वम स्वेदकन अरुन मुख तैं कलित बन-विहार थाकी तरुनि नैन खरे न थकाए ।

चलित = चंचल । ललित = सुन्दर । स्वम = परिश्रम । स्वेदकन-कलित = पसीने की बूँदों से शोभित । अरुन = ललाई, अत्यन्त लाल । बन-विहार = बन में किये गये आमोद-प्रमोद । तरुनि = तरुणी, युवती ।

चंचल और सुन्दर श्रम (स्वच्छन्द बन-विहार-जनित श्रान्ति) के पसाने की बूँदोंवाले (गुप रूप से) बन में आमोद-प्रमोद करने से थकी हुई उस युवती के काल मुखड़े से नायक की आँखें नहीं थकतीं (उसकी वह शोभा देखते-देखते नायक के नेत्र नहीं थकते ।)

नोट—कविवर ‘शीतल’ ने श्रम-बिन्दु पर क्या खूब कहा है—“मुख-सरदचंद पर स्वम-सीकर जगमगै नखत गन-जोती से, कै दल गुलाब पर शबनम के हैं कन के रूप-उदोती से, हारे की कनियाँ मन्द लगै हैं सुधा किरन के गोती-से, आया है मदन आरती को घर कनक-थार में मोती-से ।”

अपनै कर गुहि आपु हठि हिय पहिराई लाल ।

नौलसिरी औरै चढ़ी बौलसिरी की माल ॥ ३६५ ॥

अन्वय—लाल अपनै कर बौलसिरी की माल गुहि हठि आपु हिय पहिराई औरै नौलसिरी चढ़ी ।

गुहि = गूँथकर । आपु = आप ही, स्वयमेव । हिय = हृदय । नौलसिरी = नवलश्री = नवीन शोभा । औरै = विलक्षण, विचित्र, निराली । बौलसिरी = मौलिश्री, मौलसिरी का फूल ।

लाल (नायक) ने अपने ही हाथों से मौलसिरी की माला गूँथकर और हठ करके स्वयं ही उस (नायिका) के गले में पहनाई । (फिर तो नायक द्वारा पहनाई गई उस मौलसिरी की माला ने नायिका के सुन्दर शरीर पर) और ही तरह की (अपूर्व) नवीन शोभा चढ़ (ढा) गई ।

लै चुभकी चलि जाति जित-जित जलकेलि अर्धीर ।

काजत केसरि-नीर से तित-तित के सरि-नीर ॥ ३६६ ॥

अन्वय—जलकेलि अर्धीर चुभकी लै जित-जित चलि जाति तित-तित के सरि-नीर केसरि-नीर से कीजत ।

लै चुभकी = डुबकी लगाकर । जित = जहाँ । जल-केलि = जलकीड़ा । केसरि-नीर = केसर मिश्रित जल । सरि-नीर = नदी का पानी ।

जल-विहार में चंचल बर्ना नायिका डुबकी मारकर जहाँ-जहाँ चली जाती है, वहाँ-वहाँ की नदी के (स्वच्छ) जल को (अपने केवरिया रंग के शरीर की पीली प्रभा से) केसर-मिश्रित जल के समान (पीला) कर देती है ।

नोट—कविवर पद्माकर की विवेणी विद्यायिका नायिका का जल-संतरण वा जल-विहार भी देखिए—“जाहिरे जागति-सी जमुना जब बूँदै-बैहै उमझै उहि बेनी, त्यो पदमाकर हीरो के दारनि गंग तरंगन-सी सुखदेनी; पायन के रँग सो रँगि जात सो भाँति ही भाँति सरस्वती-सेनी, तैरे जहाँ ई जहाँ वह बाल तहाँ तहाँ ताल में होत विवेनी ।”

छिरके नाह नवोढ़-हग कर-पिचकी जल जोर ।

राचन रँग लाली भई विय तिय लोचन-कोर ॥ ३६७ ॥

कलन्दय—वाह नवोदय करने विद्या के द्वारा जल छिरके, विष लिय लेजने के द्वारा दोन्हराहृष्ट लासी जाई ।

वाह = नव, ग्रीष्म । नवोद्धा = नववैचरण । कल-विद्या = दोन्हों हृष्टों को एक नव जल में दबाकर विचकारी की वाह जल की पान उछालना । देवन = देवता । विष = हृष्टी । विष = ताड़ी ।

प्रीतम ने दध नवयुवकों की जाँचों में हाथ की विद्या के द्वारा जल छिरका । (वह देवकर) हृष्टी जी (योग) की जाँचों की जोर में देवतों के रैम की जांकी आ गई—जोर ये जाँचे जान-जाल हो गई ।

हेरि हिंडोरे-राम तै रहो रही-ही दूटि ।

बहु बाय विष बोच हौं करो खरो रस-दूटि ॥ ३६८ ॥

कलन्दय—हेरि हिंडोरे राम है रही-ही दूटि रही, विष बाहु बोच ही रही, रही रस दूटि रही ।

हेरि = देवकर । रही = अरका । दूटि रही = देवकर हृष्ट रही । रही = लूत ही, अच्छी लूत ही । रस-दूटि = रस की लूट ।

(प्रीतम को) देखते ही (प्रीतमेश में देसु वह मुन्दी विषका) कल-करी भाकर मेरी के पातान हृष्ट रही—जैसे हठांच अस्त्रा असारु मेरी जैसे, जैसे ही वह हिंडोरे मेरे विष रही । (विन्दु दमे विषे देव) प्रीतम न देहकर बोच ही मेरकड़ विष (योर की वाह जल-ही-जाल योर विष) हृष्टी यह बही विषे विष—जैसे लूट ही रस की लूट ही ।

नोट—विषुवों के नाथ नविका हृष्ट मूल रही थी । हृष्टने में नायक अपहृता उनको देवकर नविका उत्तरायन भावने के विषेश हिंडोरे ने हृष्ट रही । नायक ने बोच ही मेरकरक भाविकन का लूत लूट विष ।

दरजे हृष्टी हृटि चहै ना सकुर्चे न सकाइ ।

हृटन कोट हुमचो लचक लचकि लचकि बोच जाइ ॥ ३६९ ॥

कलन्दय—बरजे हृष्टी हृटि चहै न सकुर्चे न सकाहु हुमचो कटि लचक हृटन लचकि लचकि बोच जाइ ।

ब्रह्म = भना करने पर । लकुचै = लजाना । सदाइ = हरना । दूजची = पतली डाल । मचक दृढ़ते = लचकन या बक्कल लगाकर दृढ़ते से ।

भना करते से (उमे) दूना हठ चढ़ जाता है—न रक्खती है, न दूरती है । पतली जाता के समान (उमकी) करने लचककर दृढ़ते से लचक-लचककर बच जाती है ।

तोट—मौके से छूते पर भूलती हूड़ नायिका का बदन !

दोऊ चोर-निहीचनी लेनु त लेलि अचान ।

दुरत हियैं लपटाइ के छुवत हियैं लपटान ॥ ३०५ ॥

अन्वय—दोऊ चोर-निहीचनी लेनु लेचि त अचान । हियैं लपटाइ के दुरत, छुवत हियैं लपटात ।

चोर-निहीचनी = चोरिया-तुकिया नाम का लेल विसें पछ छिना है और दूसरा उनको हूँदा ता है, उशा-छिनी का लेल । अचान = दून होने, परम् आकन्द दृढ़ते हैं । दुरत = छिना हियैं = हठय ।

(नायक-नायिका) दोऊ चोरिया-तुकिया लेल लेलकर नहीं लडते । यसका हठय से लिपटकर छिनते हैं और पुनः छूते के अन्य यसका हठय से लिपट जाते हैं ।

लालि लालि अंखियनु अथनुछिनु आँगु नोरि झैरिगाइ ।

आयिक रठि लेटिलि लटोक आलम भरी लपटाइ ॥ ३०६ ॥

अन्वय—अधनुछिनु अंखियनु लालि लालि आँगु नोरि झैरिगाहु झैरिक रठि लटकि केटकि आलम नहीं लम्हाइ ।

आँगु = अंग, शरीर । नोरि = नरोदकर । लैरिगाइ = लैरिगाही है । लटकि = लटका या लड़काकर । झैरिक = झैरिक ।

(नायक-नायिका से लिपट करने के कारण ग्राम-काल) लवनुदो लैरिको से (हैरन-हैरन) देख देखकर शरीर को नोरिकर लैरिगाही लैरिगाही है । (किंवितु-कर से) जाती हठ (किं दून) लपटाकर केट जाती है और आकर से जाती हठ से जाती है ।

नीठि नीठि उठि वैठि हूँ प्यौ प्यारी परभात ।

दोऊ नींद भरै खरै गरै लागि गिर जात ॥ ३७२ ॥

अन्वय—प्यौ प्यारी परभात नीठि नीठि उठि वैठि हूँ दोऊ खरै नींद भरै गरै लागि गिर जात ।

नीठि नीठि = बड़ी मुश्किल से । प्यौ = पिय, प्रीतम । परभात = प्रभात, प्रातः । खरै = अत्यन्त । गरै लागि = गले से लिपटकर ।

प्रीतम और प्यारी (दोनों) प्रातः काल बड़ी-बड़ी मुश्किल से उठ वैठते भी हैं । (और पुनः) दोनों अत्यन्त नींद में भरे होने के कारण (परस्पर) गले से लिपटकर (सेज पर) गिर जाते हैं ।

नोट—नेवाज कवि भी एक ऐसे ही सुरति-श्रान्त दम्पति का वर्णन करते हैं—“ठतिया छतिया सौं लगाये दोऊ दोऊ जी मैं दुहूँ के समाने रहैं, गई बीत निसा पै निसा न गई नये नेह मैं दोऊ चिकाने रहैं; पट खोलि ‘नेवाज’ न भोर भये लखि द्योस को दोऊ सकाने रहैं, उठि जैवे को दोऊ डराने रहैं लपटाने रहैं पट ताने रहैं ।”

लाज गरब आलस उमग भरे नैन मुसुकात ।

राति रमी रति देति कहि औरै प्रभा प्रभात ॥ ३७३ ॥

अन्वय—लाज गरब आलस उमग भरे नैन मुसुकात प्रभात औरै प्रभा, राति रमी रति कहि देति ।

गरब = अभिमान । उमग = उत्साह । राति रमी रति = रात में किया गया समागम । औरै = और ही, विचित्र, अनोखा । प्रभा = छुचि-छुदा ।

लज्जा, अभिमान, आलस्य और उमग से भरे (तुम्हारे) नेत्र मुसकुरा रहे हैं । प्रातः काल की (तुम्हारी) यह अनोखी छटा रात में किया गया समागम (स्पष्ट) कहे देती है ।

कुंज-भवनु तजि भवनु कौं चलियै नंदकिसोर ।

फूलति कली गुलाव की चटकाहट चहुँ ओर ॥ ३७४ ॥

अन्वय—नंदकिसोर कुंज-भवनु तजि भवनु कौं चलियै गुलाव की कली फूलति चटकाहट चहुँ ओर ।

कुंज-भवन=बृन्दावन का केलि-मंदिर । चटकाहट=चटक + आहट = कलियों के चिटखने का शब्द । चहुँ और = चारों तरफ ।

हे नंदकिशोर (श्रीकृष्ण जी) ! कुंजमत्तन को छोड़कर अब वर चढ़ाए, (व्यांकि) गुलाब की कली खिल रही है (और उसकी) चटक चारों ओर सुन पड़ रही है—(अर्थात् अब प्रातःकाल हुआ, रास-विलास छोड़िये ।)

नटि न सीस सावित भई लुटी सुखनु की मोट ।

चुप करि ए चारी करति सारी परी सरोट ॥ ३७५ ॥

अन्वय—नटि न सीस सावित भई सुखनु की मोट लुटी चुप करि पु सारी परी सरोट चारी करति ।

नटि=नहीं-नहीं करना । सीस सावित भई=तेरे ऊर प्रमाणित हो गई । मोट=मोटरी, गठरी । चारी=चुपली । सारी=साड़ी, चुनरी । सरोट=सिकुइन, शिकन ।

नहीं-नहीं मन कर । अब तेरे मध्ये यह चात सावित हो गई कि तूने सुखों की मोटरी लूटी है । चुप हो जा, तेरी ये साड़ी में पड़ी हुई बिकुइन ही चुगली कर रही है (कि यह किसी के द्वारा रोंदी गई है—व्यांक रति-काल में स्वभावतः साड़ी मसल जाती है ।)

मो सौं मिलवति चातुरी तूँ नहिं भानति भेड़ ।

कहे देत यह प्रगट हीं प्रगद्यौ पूस पसेउ ॥ ३७६ ॥

अन्वय—मो सौं तूँ चातुरी मिलवति भेड़ नहिं भानति पूस पसेउ प्रगद्यौ यह प्रगट हीं कहे देत ।

मो सौं=मुझसे । मिलवति चातुरी=चतुराई भिड़ा रही है, चालाकी कर रही है । भानति=(संखृत 'भन्'=कहना) कहती है । भेड़=भेद, रहस्य । पसेउ=पसीना । प्रगट हीं=स्पष्ट, प्रत्यक्ष ।

मुझसे तू चतुराई की बातें कर रही हैं, भेद नहीं बतलाती । किन्तु (कहाँके का जाड़ा पड़नेवाले इस) पूस महीने में पर्मीना प्रगट होकर यह स्पष्ट कहे देता है (कि तू किसीके साथ समागम कर आई है ।)

सही रँगीलैं रतजगैं जगी पगी सुख चैन ।

अलसौंहैं सौंहैं कियैं कहैं हँसौंहैं नैन ॥ ३७७ ॥

अन्वय—रँगीलैं सही रतजगैं जागी सुख चैन पगी हँसौंहैं नैन अलसौंहैं सौंहैं कियैं कहैं ।

रतजगैं=किसी व्रत में रात-भर जागना । अलसौंहैं=अलसाये हुए । सौंहैं=शपथ, करम । हँसौंहैं=हँसीले ।

अरी रँगीली ! (तेरा कहना) सही है । (तू व्रत के) रतजगे में ही जागी है (तभी तो) सुख और चैन में पगी है—आनन्द और उत्साह में मस्त है । (और, तेरे ये) हँसीले नेत्र भी, आलस में मस्त बने, शपथ खाकर यही कह रहे हैं ।

नोट—नायिका गत रात्रि के अवने समागम की बात छिपाती है, इसपर सखी चुटकी लेती है ।

यौं दलमलियतु निरदई दई कुसुम सौं गातु ।

करु धरि देखौ धरधरा उर कौ अजौं न जातु ॥ ३७८ ॥

अन्वय—दई निरदई कुसुम सौं गातु यौं दलमलियतु, करु धरि देखौ अजौं उरकौ धरधरा न जातु ।

दलमलियतु=मसलना, रैंदना । दई=दैव । करु=हाथ । धरधरा=धड़कना । अजौं=अभी तक । उर=हृदय ।

हाय रे दई ! उस निर्दीयी (नायक) ने इसके फूल के ऐसे शरीर को यौं मसल दिया है कि हाथ धरके देखो, अभीतक इसके हृदय से धड़कन नहीं जाती—अभीतक भय और पीड़ा से इसकी छाती धड़क रही है ।

छिनकु उघारति छिनु छुवति राखति छिनकु छिपाइ ।

सबु दिनु पिय-खंडित अधर दरपन देखत जाइ ॥ ३७९ ॥

अन्वय—छिनकु उघारति छिनु छुवति छिनकु छिपाइ राखति सबु दिनु पिय-खंडित अधर दरपन देखत जाइ ।

छिनकु=छिन + एकु=क्षण । अधर=ओठ । दरपन=दर्पण, आईना ।

क्षण में उघारती है, क्षण में छूती है और पुनः क्षण में छिपा रखती है

(कि कोई देख न ले ।) यों उसका सारा दिन प्रीतम द्वारा खंडित किये गये अधर को दर्पण में देखने ही में बीतता है ।

नोट—प्रीतम ने रति-रण-रंग-रस-मत्त होकर चुम्बन करते समय तुकोमल अधर पर दाँत गड़ा दिये थे, जिससे वह खंडित (रदच्छत) हो गया था ।

और ओप कनीनिकनु गनी घनी सिरताज ।

मनी धनी के नेह की बनीं छनीं पट लाज ॥ ३८० ॥

अन्वय—कनीनिकनु ओप और घनी सिरताज गनी लाज पट छनीं धनी के नेह की मनी बनीं ।

ओप=कान्ति । कनीनिकनु=आँखों की पुतलियाँ । गनी=गिनी है; मानी हैं । घनी=सब्जों में, बहुतेरों में । मनि=मणि, तेजस्विता । धनी=प्रीतम, नायक । पट=वस्त्र ।

(तुम्हारी आँखों की) पुतलियाँ में आज कुछ दूसरी ही कान्ति है, (इसीलिए तो मैंने इन्हें) सब्जों में सिरताज माना है । लाज-रुपी वस्त्र से छनकर ये प्रीतम के (निर्मल) नेह की माण बनी हुई है—यद्यपि लज्जा से ढँकी हुई है, तो भी इनसे, नायक का प्रेम, कपड़े से ढँकी हुई (दिव्य) मणि की (उज्ज्वल) आभा के समान, प्रकट हो (झलक) रहा है ।

कियौ जु चिबुक उठाइकै कम्पित कर भरतार ।

टेढ़ीयै टेढ़ी फिरति टेढ़े तिलक लिलार ॥ ३८१ ॥

अन्वय—कम्पित कर भरतार चिबुक उठाइकै जु कियौ लिलार टेढ़े तिलक टेढ़ीयै टेढ़ी फिरति ।

चिबुक = हुड्डी । कर = हाथ । भरतार = पति । तिलक = टीका । टेढ़ीयै टेढ़ी फिरति = ऐंठती हुई ही धूमती फिरती है । लिलार = ललाट ।

(प्रेमांश से) कांपते हुए हाथों से पति ने जो हुड़ूं उठाकर (टीका) कर दिया, सो ललाट में उस टेढ़ी टीका को ही लगाये हुए वह टेढ़ी-ही-टेढ़ी बनी फिरती है—घमंड में ऐंठती हुई चलती है ।

वेई गड़ि गाड़ैं पराँ उपस्थौ हारु हियैं न ।

आन्यौ मोरि मतंगु-मनु मारि गुरेनु मैन ॥ ३८२ ॥

अन्वय—मैन गुरेरनु मारि मतंगु-मनु मोरि आन्यौ, बेंडे गड़ि गाड़ परीं, हारु हियैं न उपच्छौ ।

गाड़ि=गड़कर, गड़ने से । गाड़ैं=गड़दे । उपच्छौ=गड़कर गहरा दाग उखड़ आना । आन्यौ मोरि=मोड़ लाया । मतंगु=मतवाला हाथी । मनु=मन । गुरेरनु=गुलेल, गुलेती । मैन=कामदेव ।

कामदेव गुलेलों से मार-मारकर तुम्हारे मन-रूपी मतवाले हाथी को इस और मोड़ (फेर) लाया है, उन्हीं (गुलेल की गोलियों) के गड़ने से ये गड़दे पड़ गये हैं । (दूसरी खी के साथ समागम करते समय) उसका हार तुम्हारे हृदय में नहीं उपटा है— (ये गड़दे हार की मणियों के गड़ने से नहीं बने हैं ।)

नोट--नायक दूसरी खी के साथ विहार करके आया है । नायिका उपालम्भ देती है । अगले कई दोहों में ऐसे उपालम्भ मिलेंगे ।

पलनु पीक अंजनु अधर धरे महावरु भाल ।

आजु मिले सु भरी करी भले बने हौ लाल ॥ ३८३ ॥

अन्वय—पलनु पीक अधर अंजनु भाल महावरु धरे; आजु मिले सु भरी करी लाल भक्ते बने हौ ।

पलनु=पलकों में । अधर=ओठ । भाल=ललाट ।

पलकों में (पान का) पीक है—भर-गत कहीं दूसरी खी के साथ जगे हो, उसीकी लाली है । अधरों पर अंजन लगा है—किसी मृगनींकी के कजरारे नयनों को चूमा है, उन्हीं का अंजन लग गया है और ललाट पर महावर धारण किये हुए हो—किसी मानिनी को पैरों पड़कर मनाया है, उसीका मढ़ावर लग गया है । आज (इस बाने से) मिले हो, सो अच्छा ही किया है (क्योंकि) हे लाल ! (आज तुम) बड़े अच्छे बने हो—आज का तुम्हारा यह रूप बहुत बढ़िया दीख पड़ता है !

गहूकि गाँसु औरै गहै रहे अधकहे वैन ।

देखि खिसौहैं पिय नयन किए रिसौहैं नैन ॥ ३८४ ॥

अन्वय—गहकि और गाँसु गहे अधकहे बैन रहे, पिथ खिसौंहें नयन देखि बैन रिसौंहें किए।

गहकि=कोधित होकर। गाँसु=वैमनस्य, अनख। अधकहे बैन=अधूरे बचन। खिसौंहें=लज्जित। रिसौंहें=रोपयुक्त।

कोधित होकर अधिक शत्रुता पकड़ लीं—खूब उत्तेजित हो गई। आधे कहे हुए बचन मुख में ही रह गये। प्रीतम की लज्जित आँखें देखकर (उन्हें मर-रात दूसरी ओं के संग रहा समझकर, नायिका ने) अपनी आँखों रोपयुक्त कर लीं।

तेह तरेरौ त्यौरु करि कत करियत दग लोल।

लीक नहीं यह पीक की सुति-मनि-झलक कपोल ॥ ३८५ ॥

अन्वय—तेह तरेरौ त्यौरु करि दग कत लोल करियत कपोल यह पीक की लीक नहीं, सुति-मनि-झलक।

तेह=कोध। तरेरौ त्यौरु करि=त्यौरियाँ चढ़ाकर। लोल=चंचल। लीक=रेखा। सुति-मनि=कर्ण-भूषण की मणि। कपोल=गाल।

कोध से त्यौरियाँ चढ़ाकर आँखों क्यों चंचल कर रही हो ? गालों पर यह पीक की रेखा नहीं है—किंवा दूसरे ने चुम्बन किया है, उसके अधरों की लाली नहीं है (वरन्) कर्ण-भूषण की मणि की (लाल) झलक (प्रतिबिम्ब) है। दर्पणोउच्चल कपोलों में कर्णकूज-मणि की अस्त्र आमा प्रतिफलित हो रही है।)

बाल कहा लाली भड़ लोइन कोइनु माँह।

लाल तुम्हारे दगनु की परी दगनु मैं छाँह ॥ ३८६ ॥

अन्वय—बाल लोइन कोइनु माँह लाली कहा भड़, लाल तुम्हारे दगनु की छाँह दगनु मैं परी।

लोइन=आँखें। कोइनु=आँखों के भीतर का उजला हिस्ता। माँह=मैं। दगनु=आँखें। छाँह=छाया।

हे बाल ! तुम्हारी आँखों के कोशों में काली क्यों छा गई है ? हे लाल ! तुम्हारी आँखों की छाया ही मेरी आँखों में पड़ गई है—(तुम जो रात-मर

किसी कामिनी के पास जगकर अपनी आँखों लाल-लाल बना लाये हो, उन्होंकी छाया मेरी आँखों में पड़ी है !)

नोट—नायिका ने परब्बी-संगी नायक को देखते ही कुद्द होकर आँखें लाल कर ली हैं। नायक इसका कारण पूछता है। नायिका अनुकूल जवाब देती है। बड़ी अनोखी सूझ है।

तरुन कोकनद वरन बर भए अरुन निसि जागि ।

वाही कै अनुराग दग रहे मनो अनुरागि ॥ ३८७ ॥

अन्वय—निसि जागि तरुन कोकनद वर वरन अरुन भए। मनो वाही कै अनुराग दग अनुरागि रहे।

तरुन = नवीन, विकसित। कोकनद = लाल कमल। वरन = रंग। अरुन = लाल। अनुरागि रहे = रंग रहे।

रात-मर जगने से नये लाल कमल के सुन्दर रंग के समान नेत्र लाल हो गये हैं मानो उसी (अन्य स्त्री) के प्रेम में आपके नेत्र अनुरंजित हो रहे हैं—रंग गये हैं।

केसर केसरि-कुसुम के रहे अंग लपटाइ ।

लगे जानि नख अनखुली कत बोलति अनखाइ ॥ ३८८ ॥

अन्वय—केसरि-कुसुम के केसर अंग लपटाइ रहे, अनखुली नख लगे जानि कत अनखाइ बोलति।

केसर = पराग-तन्तु (जो लाल पतले डोरे के समान होता है), किंजलि । अनखुली = अनखानेवाली, कोधिता ।

केसर के फूल के पराग-तन्तु (नायक के) शरीर से लिपट रहे हैं। अरी कोधिता ! उसे (दूसरी स्त्री के) नख लगा जानकर—परब्बी-समागम के समय का नख-क्षत समझकर—तू क्यों अनखा (कोध से झुँकला) कर चोल रही है ?

सदन सदन के फिरन की सद न छुटै हरिराइ ।

रुचै तितै विहरत फिरौ कत विदरत उरु आइ ॥ ३८९ ॥

अन्वय—हरिराइ सदन सदन के फिरन की सद् न छुटै रुचै तितै बिहरत
फिरौ आइ उरु कत चिदरत ।

सदन = घर । सद = आदत । हरिराइ = श्रीकृष्णचन्द्र । रुचै = भावे, नीक
लगे, अच्छा जँचे । तितै = वहाँ । बिहरत फिरौ = मौज करते फिरो । चिदरत =
विदीर्ण करते हो । उरु = हृदय । आइ = आकर ।

हे कृष्णचन्द्र (तुम्हारी) वर-वर फिरने की आदत नहीं छूटती ? खेर,
जहाँ मन भावे, वहाँ बिहरते फिरो । (किन्तु) मेरे पास आकर (मेरी) छाती
क्यों विदीर्ण करते हो ? (तुम्हें देख और तुम्हारी करतूत याद कर मेरी छाती
फटने लगती है ।)

पट के ठिग क़ ढाँपियत सोभित सुभग सुवेखु ।

हद रद्छद छवि देत यह सद रद्छद की रेखु ॥ ३९० ॥

अन्वय—पट ठिग के कत ढाँपियत सुभग सुवेखु सोभित सद रद्छद
की रेखु यह रद्छद हद छवि देत ।

पट = कपड़ा । के = करके । ठिग = निकट । सुवेखु = सुन्दर रूप से ।
रद्छद = ओढ़ों । छवि = शोभा । सद = सद्यःकाल का, तुरत का । रद्छद =
ओढ़ों पर दाँत का बाव । रेख = रेखा, लकीर ।

कवड़ निकट करके क्यों ढक रहे हो ? सुभग और सुन्दर रूप से तो शोभ
रहा है ! दाँतों के बाव की ताजी रेखा से यह अधर बेहद शोभा दे रहा है—
तुरत ही किसी ची ने तुम्हारे अधर का चुम्बन करते समय दाँत गड़ाये हैं,
जिसका चिह्न अत्यन्त शोभ रहा है ।

मोहूँ सौं बातनु लगै लगी जीभ जिहि नाँझ ।

सोई लै उर लाइयै लाल लागियतु पाँझ ॥ ३९१ ॥

अन्वय - मोहूँ सौं बातनु लगै जीभ जिहि नाँझ लगी, सोई लै उर लाइयै
लाल पाँझ लागियतु ।

मोहूँ सौं = मुझसे भी । नाँझ = नाम । उर = हृदय ।

मुझसे भी बातें करते समय (तुम्हारी) जान जिसके नाम पर लगी है—

भक्तस्मात् जिसका नाम तुम्हारे मुख से निकल गया है—उसीको केकर हृदय से लगाओ। हे लाल ! मैं तुम्हारे पाँव लगती हूँ—पैरों पड़ती हूँ।

लालन लहि पाएँ दुरै चोरी सौंह करै न।

सास चढ़े पनिहा प्रगट कहैं पुकारै नैन ॥ ३९२ ॥

अन्वय—लालन लहि पाएँ सौंह करै चोरी न दुरै नैन पनिहा सीसी चढ़े पुकारै प्रगट कहैं।

लहि पाएँ=पकड़े जाने पर। दुरै=छिपै। सौंह=शपथ। पनिहा=चोर पकड़नेवाले तांत्रिक। सीस चढ़े पुकारै=विना पूछे ही आप-से-आप बता रहे हैं।

हे लाल ! पकड़े जाने पर शपथ करने से भी चोरी नहीं छिपती। ये तुम्हारे नेत्र पनिहा के समान सिर चढ़कर पुकार-पुकार स्पष्ट कह रहे हैं—तुम्हारे अलसाये हुए नेत्र देखने से ही सब बातें प्रकट हो जाती हैं (कि तुम कहीं रात-मरमे हो)।

तुरत सुरत कैसैं दुरत मुरत नैन जुरि नीठि ।

डौङ्डी दै गुन रावरे कहति कनौङ्डी ढीठि ॥ ३९३ ॥

अन्वय—तुरत सुरत कैसैं दुरत नैन नीठि जुरि मुरत कनौङ्डी ढीठि डौङ्डी दै रावरे गुन कहति।

सुरत=समागम, मैथुन। मुरत=मुइते हैं। नीठि=मुश्किल से। डौङ्डी दै=दोल बजाकर। रावरे=आपके। कनौङ्डी=लजित, अधीन। ढीठि=दृष्टि।

तुरत किया हुआ समानगम कैसे छिप सकता है ? (प्रमाण लीजिष्—आपके अलसाये हुए) नेत्र मुश्किल से (मेरे नेत्रों से) जुड़ते हैं, और (फिर तुरत ही) मुड़ जाते हैं—मेरे सामने मुश्किल से आपकी अँखें बराबर होती हैं। आपका यह लजित दृष्टि ही दोल बजा-बजाकर आपके गुणों को कह रही है।

मरकत-भाजन-सलिल गत इंदु-कला कै वेख।

भीन भगा मैं भलमलत स्यामगात नख-रेख ॥ ३९४ ॥

अन्वय—स्यामगात नख-रेख मरकत-भाजन-सलिल गत इंदु-कला के बेख
झीन झगा मैं भलमलत ।

मरकत = नीलमणि । भाजन = वर्तन । सलिल = जल । गत = मैं, अदर
बेख = बेष = रूप, यहाँ समानता-सूचक है । झीन = महीन, बारीक । झगा =
जामा, अँगरखा । नख-रेख = नख की रेखा, नख की खरौंठ ।

(श्रीकृष्ण के) साँवले शरीर में (समागम के समय राधा द्वारा ढी गई)
नख की रेखा नीलमणि के बर्तन में भरे हुए जल में द्वितीया के चन्द्रमा के
प्रतिबिम्ब के समान, महीन जामे के भीतर से झलमला रही है ।

नोट—श्यामसुन्दर का श्याम शरीर नीलमणि का पात्र है । बारीक श्वेत
चब्ब का जामा उस (मणि-पात्र) में रक्खा गया (स्वच्छ) जल है और नख
की रेखा दूज का चाँद है ।

वैर्सायै जानी परति झगा ऊजरे माँह ।

मृगनैनो लपटी जु हिय बैनी उपटी बाँह ॥ ३९५ ॥

अन्वय—मृगनैनी हियं लपटी जु बाँह बैनी उपटी ऊजरे झगा माँह वैर्सायै
जानि परति ।

बैनी = लम्बी चोटी । उपटी = दबकर दाग पड़ गया ।

मृगनैनी (नायिका) के हृदय में लिपटने से बाँह में जो (उपटी) वैर्णी
का निशान पड़ गया है, सो उज्ज्वल जामे के अन्दर से बैसे ही सरष जान
पड़ता है—दीख पड़ता है ।

बाही की चित चटपटी धरत अटपटे पाइ ।

लपट बुझावत विरह की कपट भरेऊ आइ ॥ ३९६ ॥

अन्वय—चित बाही की चटपटी पाइ अटपटे धरत, कपट भरेऊ आइ
विरह की लपट बुझावत ।

चटपटी = चाह । अटपटे = उलटे-सीधे । लपट = ज्वाला ।

चित में तो उसी (अन्य स्त्री) की चाह लगी है । अतएव, पैर अटपटे
पड़ते हैं—यथास्थान ठंक नहीं पड़ते । यों कपट से भरा हुआ भी—(यथापि

मन दूसरी स्त्री से लगा है, तो भी केवल तस्छी देने के लिए ही)—आकर (वह नायक) विरह की ज्वाला उद्घाटा जाता है ।

कत वेकाज चलाइयति चतुराई की चाल ।

कहे देति यह रावरे सब गुन निरगुन माल ॥ ३९७ ॥

अन्वय—कत वेकाज चतुराई की चाल चलाइयति, यह निरगुन माल रावरे सब गुन कहे देति ।

कत = क्यों । वेकाज = व्यर्थ । निरगुन माल = विना डोरे की माला । चतुराई की चाल चलाइयति = चालाकी-भरी बातें करते हो ।

क्यों व्यर्थ चतुराई की बातें करते हो ? यह विना डोरे को माला ही आपके सब गुणों को कहे देती है (कि आपने किसी अन्य स्त्री का गाढ़ालिंगन किया है, जिससे उसकी छाती की माला का निशान विना डोरी की माला के ऐसा आपकी छाती में पड़ गया है ।)

पावक सो नयननु लगै जावक लाग्यौ भाल ।

मुकुरु होहुगे नैकु मैं मुकुरु विलोकौ लाल ॥ ३९८ ॥

अन्वय—माल जावक लाग्यौ नयननु पावक सो लगै । लाल मुकुरु विलोकौ नैकु मैं मुकुरु होहुगे ।

पावक = आग । जावक = महावर । मुकुरु होहुगे = मुकर (नठ) जाओगे । नैकु = जरा, तुरत, एक क्षण में । मुकुरु = आईना ।

आपके मस्तक में लगा हुआ (किसी दूसरी स्त्री के पैर का) महावर (मेरे) नेत्रों में आग के समान (लाल) मालूम पड़ता है । एक क्षण में ही तुम मुकर (इन्कार कर) जाओगे, अतएव है लाल ! आईने में देख लो ।

रही पकरि पाटी सु रिस भरै भौंह चितु नैन ।

लखि सपने पिय आन-रति जगतहुँ लगत हियैं न ॥ ३९९ ॥

अन्वय—पाटी पकरि रही भौंह चितु नैन सु रिस भरै सपने पिय आन-रति लखि जगतहुँ हियैं न लगत ।

रिस = क्रोध । आन-रति = पर-स्त्री-प्रसंग करते हुए । हियै = हृदय से ।

पलँग की पाटी पकड़कर रह गई । मौंह, मन और नेत्र कोध से मर गये —
मौंह तिरछी दुर्दृश, मन रोपयुक्त हुआ और आँखें लाल हो गई । स्वम में प्रीतम
को दूसरी स्त्री से समागम करते देख जगने पर भी (निकट ही सोये हुए
प्रीतम के) हृदय से नहीं लगती ।

रह्यौ चकित चहुँधा चितै चितु मेरो मति भूलि ।

सूर उयै आए रही दगनु साँझ-सी फूलि ॥ ४०० ॥

अन्वय—चकित चहुँधा चितै रह्यौ मेरो मति भूलि, सूर उयै आए दगनु
साँझ-सी फूलि रही ।

चहुँधा = चारों ओर । सूर = सूर्य । दगनु = आँखें ।

ये (नायक) चकित होकर चारों ओर देख रहे हैं—भेद खुलने के भय
से इधर-उधर ताक-झाँक कर रहे हैं । हे मेरे चित ! तुम मत भूलो । देखो, ये
सूर्योदय के समय तो आये हैं, किन्तु इनकी आँखें संध्या-सी फूल रही हैं—
लाल-लाल हो रही हैं । (अतएव, निससंदेह रात-मर कहीं जगे हैं ।)

पंचम शतक

अनत बसे निमि की रिसनु उर वरि रही विसेखि ।

तऊ लाज आई झुकत खरे लजौहैं देखि ॥ ४०१ ॥

अन्वय—निमि अनत बसे की रिसनु उर बिसेखि वरि रही—तऊ खरे
लजौहैं झुकत देखि लाज आई ।

अनत = दूसरी जगह । रिसनु = कोध से । वरि रही = जल रही । झुकत =
झुकते, पैरों पइते । खरे लजौहैं = अत्यन्त लजित ।

रात में दूसरी जगह रहने के कारण कोध से (नायिका का) हृदय विशेष
रूप से जल रहा था । किन्तु (प्रीतम को इसके लिए) अत्यन्त लजित और

बिहारी-सतसई

पैरों पड़ते देखकर (उसके हृदय में भी) लाज उभड़ आई—वह भी लजित हो गई ।

सुरँग महावर सौति-पग निरखि रही अनखाइ ।

पिय अँगुरिनु लाली लखैं खरी उठी लगि लाइ ॥ ४०२ ॥

अन्वय—सौति-पग सुरँग महावर अनखाइ निरखि रही । पिय अँगुरिनु लाली लखैं खरी लाइ लगि उठी ।

सुरँग = लाल । अनखाइ = अनखाकर, अनमनी होकर । खरी = अत्यन्त ।
लगि लाइ उठी = आग-सी लग उठी = जल उठी । लाइ = आग ।

सौतिन के पैर का लाल महावर अनखा (अनमनी हो) कर देख रही थी ।
(इतने में) प्रीतम की अँगुलियों में लाली देखकर वह अत्यन्त जल उठी
(इसकिए कि सौतिन के पैर में इन्हींने महावर लगाया है) ।

कत सकुचत निधरक फिरौ रतियौ खोरि तुम्हैं न ।

कहा करौ जो जाइ ए लगैं लगौंहैं नैन ॥ ४०३ ॥

अन्वय—सकुचत कत निधरक फिरौ तुम्हैं रतियौ खोरि न, जो ए लगौंहैं
नैन लगैं जाइ कहा करौ ।

कत = क्यों । रतियौ = रत्ती-भर भी । खोरि = दोष । कहा = क्या ।
लगौंहैं = लगनेवाले, लगीले, फँसनेवाले, लगन-भरे ।

सकुचाते क्यों हो ? बेघड़क वूमो । तुम्हारा तनिक भी दोष नहीं है । यदि
ये लगीले नेत्र जाकर (किसी अन्य स्त्री से) लग जाते हैं, तो तुम क्या करोगे—
तुम्हारा इसमें क्या दोष है ? (दोष तो है आँखों का !)

प्रानप्रिया हिय मैं बसै नख-रेखा-ससि भाल ।

भलौ दिखायौ आइ यह हरि-हर-रूप रसाल ॥ ४०४ ॥

अन्वय—प्रानप्रिया हिय मैं बसै नख-रेखा-ससि भाल । यह हरि-हर रसाल
रूप आइ भलौ दिखायौ ।

ससि = चन्द्रमा । भाल = मस्तक । रसाल = रसीला, सुन्दर । हरि-हर =
विष्णु और शंकर ।

(विष्णु के हृदय में बसी हुई लक्ष्मी के समान) तुम्हारो प्रियतमा तुम्हरे

हृदय में बस रही है, और (शिव के ललाट पर शोभित चंद्रेखा के समान) उस प्रियतमा के नख की रेखा-रूपी (द्वितीया का) चन्द्रमा शीश पर है । यह हरि-हर का सुन्दर (संयुक्त) रूप लाकर (प्रातःकाल ही) अच्छा दिखलाया !

नोट—नायक भर-रात किसी दूसरी यां के साथ विहार कर प्रातःकाल नायिका के पास आया है । उसके सिर पर उस यां के नख को खरोंट है । इसपर नायिका व्यंग्य और उपालभ्म सुनाती है ।

ह्याँ न चलै बलि रावरी चतुराई की चाल ।

सनख हियैं खिन-खिन नटत अनख बढ़ावत लाल ॥ ४०५ ॥

अन्वय — रावरीं चतुराई की चाल बलि ह्याँ न चलै, सनख हियैं खिन-खिन नटत लाल अनख बढ़ावत ।

ह्याँ = यहाँ । बलि = बलिहारी । रावरी = आपकी । सनख = नखसहित । खिन-खिन = क्षण-क्षण । नटत = नहीं (इन्कार) करना । अनख = क्रोध । लाल = प्रीतम ।

आपकी चतुराई की चाल, बलिहारी है, यहाँ न चलेगी । नख-रेखायुक्त चक्रःस्थल होने पर भी—छाती पर किसी दूसरी यां के नख की खरोंट होने पर भी—जल-क्षण में इन्कार करके, हे लाल ! क्यों अनख बढ़ा रहे हो—सुझे कोधित कर रहे हो ?

न करु न डरु सबु जगु कहतु कत विनु काज लजात ।

सौहैं कीजै नैन जौ साँचौ सौहैं खात ॥ ४०६ ॥

अन्वय—न करु न डरु सबु जगु कहतु विनु काज कत लजात जौ साँचौ सौहैं खात नैन सौहैं कीजै ।

कत = क्यों । वेकाज = व्यर्थ । सौहैं = समुख, सामने । कीजै = कीजिए । सौहैं = शपथ, कसम ।

“न करो तो न डरो”—सारा ससार यही कहता है । (फिर) आप व्यर्थ क्यों करते हैं ? (यदि) आप सच्ची कसम खाते हैं—यदि आप सचमुच आज रात को किसी दूसरी यां के पास नहीं गये थे, तो आँखें सामने (वरावर) कीजिए—दीठ होकर इधर ताकिए ।

कत कहियत दुखु देन कौं रचि-रचि बचन अलीक ।

सबै कहाउ रहौ लखै भाल महाउर लोक ॥ ४०७ ॥

अन्वय—दुख देन कौं रचि-रचि अलीक बचन कत कहियत । भाल महाउर लीक लखे सबै कहाउ रहौ ।

कत = क्यों । रचि-रचि = बना-बनाकर, गढ़-गढ़कर । अलीक = झट ।
कहाउ = कहना, कथन । भाल = मस्तक । लीक = रेखा ।

दुख देने के लिए रच-रचकर झटी बातें क्यों कह रहे हो ? तुम्हारे मस्तक पर (किसी दूसरी स्त्री के पैर के) महावर की रेखा देखने से ही सब कहना (यों ही) रह जाता है—सब कहना झट सावित हो जाता है ।

नख-रेखा सौहैं नई अलसौहैं सब गात ।

सौहैं होत न नैन ए तुम सौहैं कत खात ॥ ४०८ ॥

अन्वय—नख नई रेखा सौहैं, सब गात अलसौहैं, ए नैन सौहैं न होत, तुम कत सौहैं खात ।

नख-रेखा = नख की खरोंट, नख-क्षत । सौहैं = शोभती है । अलसौहैं = अलसाया हुआ । सौहैं = सामने । सौहैं = शपथ । कत = क्यों ।

(हृदय पर किसी दूसरी स्त्री द्वारा दी गई) नख की नई रेखा शोभा दे रही है । (संमोग करने के कारण) सारा शरीर अलसाया हुआ है । (लज्जा से तुम्हारी) ये आँखें भी सामने नहीं होतीं । फिर तुम क्यों (व्यर्थ) शपथ खा रहे हो ? (कि मैं किसी दूसरी स्त्री के पास नहीं गया था ।)

लाल सलोने अरु रहे अति सनेह सौं पागि ।

तनक कचाई देत दुख सूरन लौं मुँह लागि ॥ ४०९ ॥

अन्वय—लाल सलोने अरु अति सनेह सौं पागि रहे, तनक कचाई सूरन लौं मुँह लागि दुख देत ।

सलोने = (१) लावण्ययुक्त (२) लवण-युक्त । सनेह सौं पागि = (१) प्रेम में शारीर (२) तेल में तला हुआ । कचाई = (१) बात का हल्कापन (२) कच्चपन । सूरन = एक प्रकार की तरकारी, ओल, जिसकी बड़ी-बड़ी गोल-मटोल गाँठें जमीन के अन्दर पैदा होती हैं; वह नमक और तेल में तला हुआ

होने पर भी जरा-सा कच्चा रह जाने पर मुँह में सुरसुराइट और खाज-सी पैदा करता है। लैं=समान। मुँह लागि=(१) मुँह से लगकर, जबान पर आकर (२) मुँह में खुजलाइट पैदा कर।

हे लाल ! आर लावण्ययुक्त हैं, और स्नेह में अत्यन्त शराबोर भी हैं। इन्तु आपकी जरा-सी कच्चाई भी सूखन के समान मुख से लगकर दुःख देती है।

कत लपटइयतु मो गरैं सो न जु ही निसि सैन ।

जिहि चंपकवरनी किए गुल्लाला रँग नैन ॥ ४१० ॥

अन्वय—मो गरैं कत लपटइयतु सो न जु निसि सैन हा, जिहि चंपकवरनी नैन गुल्लाला रँग किए।

सो=वह। जु=जो। ही=थी। सैन=शब्दन। जिहि=जिस। चंपक-वरनी=चम्पा के फूल के समान सुनहली देहवाली। गुल्लाला=एक प्रकार का लाल फूल।

मेरे गले से क्यों लिपटते हो ? मैं वह नहीं हूँ, जो रात में साथ सोई थी, और जिस चम्पकवरणी ने तुम्हारी आँखों को गुलजाला के रंग का कर दिया था—रात-भर जगाकर लाल कर दिया था।

पल सोहैं पर्गि पीक रँग छुल सोहैं सब बैन ।

बल सौहैं कत कीजियत ए अलसौहैं नैन ॥ ४११ ॥

अन्वय—पल पीक रँग पर्गि सोहैं, सब बैन छुल सोहैं। ए अलसौहैं नैन बल सौहैं कत कीजियत।

पल=पलक। सोहैं=शोभते हैं। पर्गि=पगकर, शराबोर होकर। पीक रँग=लाल रंग। छुल सोहैं=छुल से भरी हैं। बल=जबरदस्ती। सौहैं=सामने। अलसौहैं=अलसाये हुए।

तुम्हारी पलकें पीक के रंग से शराबोर होकर शोन रही हैं—रात-भर जगने में आँखों लाल हो गई हैं और, तुम्हारी मारी बानें छुल से (भरी) हैं। फिर, इन अलसाई हुई आँखों को जबरदस्ती मानने (करने की चेष्टा) क्यों कर रहे हो ?

भये बटाऊ नेहु तजि बादि बकति वेकाज ।
अब अलि देत उराहनौ अति उपजति उर लाज ॥ ४१२ ॥

अन्वय—नेहु तजि बटाऊ भये वेकाज बादि बकति । अलि अब उराहनौ देत उर अति लाज उपजति ।

बटाऊ=बटोही, रमता जोगी, विरागी । बादि=व्यर्थ, वेकार । वेकाज=बेमतलच, निष्प्रयोजन । अलि=सखी । उराहनौ=उलहना ।

प्रेम छोड़कर ये बटोही हो गये, किर व्यर्थ क्यों निष्प्रयोजन बकती हो ? अरी सखी ! अब इन्हें उलहना देने में भी हृदय में अत्यन्त लाज उपजती है—बड़ी लज्जा होती है ।

नोट—बटोही से भी कोई करता है प्रीत !

मसल है कि जोगी हुए किसके मीत ॥ — मीर हसन
सुभर भरथौ तुव गुन-कननु पकयौ कपट कुचाल ।
क्यौंधौं दारथ्यौ ज्यौं हियौं दरकतु नाहिन लाल ॥ ४१३ ॥

अन्वय—तुव गुन-कननु सुभर भरथौ कपट कुचाल पकयौ, लाल क्यौंधौं दारथ्यौं ज्यौं हियौं नाहिन दरकतु ।

सुभर भरथौ=अच्छी तरह भर गया है । कननु=दानों से । पकयौ=पका दिया है । दारथ्यौ=दाङ्डिम=अनार । दरकतु=फटता है ।

तुम्हारे गुण-रूपी दानों से अच्छी तरह भर गया है, और तुम्हारे कपट और कुचाल ने उसे पका भी दिया है; तो भी है लाल ! न मालूम क्यों अनार के समान मेरा हृदय फट नहीं जाता ?

नोट—दाने भर जाने और अच्छी तरह पक जाने पर अनार आप-से-आप फट जाता है । हृदय पकने का भाव यह है कि कपट-कुचाल सहते-सहते नाकों दम हो गया है । असह्य कष्ट के अर्थ में ‘छाती पक जाना’ मुहावरा भी है ।

मैं तपाइ त्रय-ताप सौं राख्यौ हियौ-हमामु ।
मति कबहूँ आवै यहाँ पुलकि पसीजै स्यामु ॥ ४१४ ॥

अन्वय—मैं हियौ-हमामु त्रय-ताप सौं तपाइ राख्यौ, मति कबहूँ पुलकि पसीजै स्यामु यहाँ आवै ।

तपाइ = गर्म करके । त्रय-ताप = तोन ताप = कामाग्नि, विरहाग्नि और उद्दीपन-ज्वाला । इमासु = हम्माम, स्नानागार । मति = संभावना-सूचक शब्द, शायद । पुलकि पसीजै = रोमांचित और पसीने से भीजे हुए ।

मैंने अपने हृदय-रूपी स्नानागार को तीन तापों से तपाकर (इसलिए) रखवा है कि शायद कमी (किसी दूसरी प्रेमिका से समागम करने के पश्चात्) रोमांचित और पसीने से तर होकर कृष्णचन्द्र यहाँ आ जावे (तो स्नान करके थंकावट मिटा लें) ।

नोट—कृष्ण के प्रति राधा का उपालभ्म । जिस तरह हम्माम में तीन ओर से (छन से, नीचे से तथा दीवारों से) पानी में गर्मी पहुँचाई जाती है, उसी प्रकार मैंने भी अपने हृदय को उक्त तीन तापों से गर्म कर रखवा है ।

आज कठू औरै भए छण नए ठिकठैन ।

चित के हित के चुगुल ए नित के होहिं न नैन ॥ ४१५ ॥

अन्वय—नए ठिकठैन छण आज कठू औरै भए, चित के हित के चुगल ए नैन नित के न होहिं ।

नए ठिकठैन छए = नये ठीकठाक से ठये, नवीन सज्जधन से सजे । चित के हित के = हृदय के प्रेम के । चुगुल = चुगलखोर । नित = नित्य ।

नवीन सज्जधन से सजे आज ये कुछ और हाँ हो गये हैं । चित के प्रेम की चुगली करनेवाले ये नेत्र नित्य के-से नहीं हैं—जैसे अन्य दिन ये, वैसे आज नहीं हैं । (निस्मंदेह आज किसीसे उलझ आये हैं ।)

फिरत जु अटकत कटनि चिनु रसिक सुरस न खियान ।

अनत-अनत नित-नित हितनु चित सकुचत कत लाल ॥ ४१६ ॥

अन्वय—चिनु कटनि जु अटकत फिरत रसिक सुरस खियाल न, नित-नित अनत-अनत हितनु लाल चित कत सकुचत ।

अटकत फिरत = समय गँवाते फिरते हो । कटनि = आसक्ति । खियाल = विचार, तमीज । अनत-अनत = अन्यत्र, दूसरी-दूसरी जगहों में । सकुचत = लजाते हो ।

विना आसन्नि के ही जो अटकते फिरते हो—जिस-तिस से उलझते फिरते हो—सो, हे रसिक ! क्या तुम्हें रस का कुछ विचार नहीं है ? नित्य ही जहाँ-तहाँ प्रेम करके, है लाल ! तुम मन में क्यों लजा रहे हो ? (तुम्हारी यह घर-घर प्रीति करते चलने की आदत देखकर मुझे भी लज्जा आती है ।)

जो तिय तुम मनभावती राखी हियै बसाइ ।

मोहि झुकावति दग्नु है वहिई उभकति आइ ॥ ४१७ ॥

अन्वय—जो तिय तुम मनभावती हियै बसाइ राखी, वहिई दग्नु है आइ उझकति मोहि झुकावति ।

तुम = तुम्हारी । मनभावती = प्रियतमा । झुकावति = चिढ़ाती है । दग्नु है = आँखों की राह से । वहिई = वही । उझकति = ज्ञाँकती है ।

जो खी तुम्हारी परम प्यारी है (और जिसे तुमने) हृदय में बसा रखा है, वही (तुम्हारी) आँखों की राह आ (मेरी तरफ) झाँक-झाँककर मुझे चिढ़ाती है ।

नोट—नायिका अपनी ही सुन्दर मूर्ति को नायक की उज्ज्वल आँखों में प्रतिचिन्मित देख और उसे नायक के हृदय में बसी हुई अपनी सौत समझकर ऐसा कहती है ।

मोहि करत कत बावरौ करै दुराउ दुरै न ।

कहे देत रँग राति के रँग निचुरत-से नैन ॥ ४१८ ॥

अन्वय—मोहि कत बावरी करत, दुराउ करै दुरै न, रँग निचुरत-से नैन राति के रँग कहे देत ।

बावरी = पगली । दुराव = छिपाव । दुरै न = नहीं छिपता । राति के रँग = रात्रि में किये गये भोग-विलास ।

मुझे क्यों पगली बना रहे हो ? छिपाने से तो छिप नहीं सकता । ये तुम्हारे रंग-निचुड़ते-हुए-से नेत्र—लाल रंग में शराबोर नेत्र—रात के (सारे) रंग कहे देते हैं (कि कहीं रात-मर जगकर तुमने केलिं-रंग किया है ।)

पट सौं पोंछि परी करै खरी भयानक भेख ।

नागिनि हूँ लागति दग्नु नागवेलि रँग रेख ॥ ४१९ ॥

अन्वय— पट सौं पैँछि परी करौ भेख खरी भयानक । नागवेलि रँग रेख दग्नु नागिनि है लागति ।

पट=कपड़ा । परी करौ=दूर करो । खरी=अत्यन्त । भेख=वेप=रूप । दग्नु=आँखों में । नागवेलि=नाग-बल्ही, पान । रेख=लकीर ।

कपड़े से पैँछकर दूर करो—मिटाओ । इसका वेष अत्यन्त भयावना है । (तुम्हारे नेत्रों में लगी हुई) पान की लकीर मेरी आँखों में नागिन के समान लग रही है (नागिन-सी ढँस रही है ।)

नोट— पर-खी के साथ रात-भर जगने से नायक की आँखें लाल-लाल हो रही हैं । इसलिए कुद्द होकर नायिका व्यंग्यवाण छोड़ रही है ।

ससि-बदनी मोक्षी कहत हैं समुक्षी निजु बात ।

नैन-नलिन प्यौ रावरे न्याव निरखि नै जात ॥ ४२० ॥

अन्वय— प्यौ निजु बात हैं समुक्षी, मोक्षी ससि-बदनी कहत रावरे नैन-नलिन न्याव निरखि नै जात ।

ससि-बदनी=चन्द्रमुखी । मोक्षी=मुझको । निजु=निजगुत, ठीक-ठीक । नलिन=कमल प्यौ=पिय । नै जात=नम जाते हैं, झुक जाते हैं ।

हे प्रीतम ! सच्ची बात मैंने आज समझी । सुक्षे आप चन्द्रबदनी कहते हैं (इर्सालिए) आपके नेत्र (अपने को) कमल-तुल्य समझकर (मेरे मुखचन्द्र के सामने) झुक (संकुचित हो) जाते हैं ।

नोट— रात-भर नायक दूसरी खी के पास रहा है । प्रातःकाल लजावश नायिका के सामने उसकी आँखें नहीं उठतीं—भेंपती हैं । चन्द्रमा के साथ कमल अपनी आँखें बराबर नहीं कर सकता ।

दुरै न निवरघट्यौ दियै ए रावरी कुचाल ।

विपु-सी लागति है तुरी हँसी खिसी की लाल ॥ ४२१ ॥

अन्वय— निवरघट्यौ दियै रावरी पु कुचाल न दुरै । लाल, खिसी की हँसी विपु-सी तुरी लागति है ।

निवरघट्यौ=सफाई देना । कुचाल=दुश्श्रित्रता । रावरी=आपकी । खिसी की हँसी=खिसियानपन की हँसी, वेहयाई की हँसी ।

सफाई देने पर भी आपकी यह कुचाल नहीं छिर सकती । हे लाल,
(आपकी) यह बेटयाई का हँसा । (मुझे) विष के समान दुरी लगती है ।

जिहिं भामिनि भूषणु रच्यौ चरन-महाउर भाल ।

उहीं मनौ अँखियाँ रँगीं ओठनु कै रँग लाल ॥ ४२२ ॥

अन्वय—जिहिं भामिनि चरन-महाउर भाल भूषणु रच्यौ, लाल मनौ उहीं
ओठनु कै रँग अँखियाँ रँगीं ।

जिहिं = जिसने । भामिनि = स्त्री । भाल = मस्तक । मनौ = मानो ।

जिस स्त्री ने (अपने) पैरों के महावर से (तुम्हारे) मस्तक में भूषण
रचा है—तुम्हारे मस्तक को भूषित किया है—हे लाल ! मानो उसीने अपने
ओठों के (लाल) रंग में तुम्हारी आँखें भी रँग दी हैं । (जिस मानिनी स्त्री
के पैरों पड़कर तुमने मनाया है, उसीने रात-भर जगा-जगाकर तुम्हारी आँखें
काल-लाल कर दी हैं ।)

नोट—“ओठनु के रँग अँखियाँ रँगीं” में हृदय-संवेद सरसता है ।

चितवनि रुखे दगनु की हाँसो विनु मुसकानि ।

मानु जनायौ मानिनी जानि लियौ पिय जानि ॥ ४२३ ॥

अन्वय—रुखे दगनु की चितवनि, विनु हाँसी मुसकानि, मानिनी मानु
जनायौ, जानि पिय जानि लियौ ।

रुखे = प्रेमरसहीन । दगनु = आँखें । जानि = ज्ञान, प्रबोध ।

रुखी आँखों का चितवन और विना हाँसी का मुस्कुराहट से मानिनी ने
अपना मान जताया और प्रबोध प्राप्तम ने जान लिया—इन लक्षणों को देखकर
नायिका का मान परखा लिया ।

बिलखी लखै खरो-खरी भरी अनख वैराग ।

मृगनैनो सैन न भजै लखि वेनी के दाग ॥ ४२४ ॥

अन्वय—मृगनैनी अनख वैराग भरी खरो-खरी बिलखी लखै, वेनी के
दाग लखि सैन न भजै ।

बिलखी = व्याकुलता से । अनख = कोध । वैराग = उदासीनता । सैन न
भजै = शयन नहीं करती, शय्या पर नहीं जाती ।

वह मृगनैनी क्रोध और उदासीनता से मरी खड़ी-खड़ी व्याकुलता के साथ देख रही है। (सुकोमल शय्या पर) बेणी का दाग देखकर शय्यन करने के लिए नहीं जाती—(यह समझकर कि इस पलंग पर प्रीतम ने किसी दूसरी खी के साथ विहार किया है)

हँसि हँसाइ उर लाइ उठि कहि न रुखौंहैं बैन ।

जकित थकित है तकि रहे तकत तिलौंछे नैन ॥ ४२५ ॥

अन्वय—हँसि हँसाइ उठि उर लाइ रुखौंहैं बैन न कहि । तिलौंछे नैन तकत जकित थकित है तकि रहे ।

लाइ=लगा ओ । रुखौंहैं=नीरस । जकित=स्तम्भित । तिलौंछे=तिरछे ।

हँसाकर हँसो और उठकर छातों से लगा लो, यों रुखी बातें न कहो । (देखो) तुम्हारे तिरछी आँखों से देखते ही ये (प्रीतम) स्तम्भित और शिथिल-से हो रहे हैं ।

रम की-सी रुख ससिमुखो हँसि-हँसि बोलति बैन ।

गूढ़ मानु मन क्यौं रहे भए बूढ़-रँग नैन ॥ ४२६ ॥

अन्वय—ससिमुखी रम की-सी रुख हँसि-हँसि बैन बोलति मन मानु गूढ़ क्यौं रहे नैन बूढ़-रँग भए ।

रस=प्रेम । रुख = चेष्टा । गूढ़ = गुप्त, छिपा हुआ । बूढ़ = बीरबहूटी, एक लाल बरसाती कीड़ी ।

वह चन्द्रवदनी प्रेम की-सी चेष्टा से हँस-हँसकर बातें करती है, उसके हृदय का मान गुप्त कैसे रह सकता है, (फलतः) आँखें बीरबहूटी के रंग की (काज-लाल) हो उठी हैं ।

मुँह मिठामु दा चीकने भौंहैं सरल सुभाइ ।

तऊ खरैं आदर खरौ स्थिन-स्थिन हियौ सकाइ ॥ ४२७ ॥

अन्वय—मुँह मिठामु दग चीकने भौंहैं सुभाइ सरल, तऊ खरैं आदर स्थिन-स्थिन हियौ खरौ सकाइ ।

सुभाइ=स्वभावतः । तऊ=तेरी । खरैं-खरौ=अत्यन्त । स्थिन-स्थिन=क्षण-क्षण । सकाइ=शंकित होता है ।

मुँह में मिठास है—बातें र्माठी हैं, आँखें चिकनी हैं—स्नेह-स्निग्ध हैं, और भौंहें भी स्वभावतः साधी हैं; तो भी तुम्हें अत्यन्त आदर करते देखकर अण-क्षण (मेरा) हृदय बहुत डरता है (कि कहीं तुम रुष्ट तो नहीं हो—यह आदर-भाव बनावटी तो नहीं है !)

पति रितु औगुन गुन बढ़तु मानु माह कौ सीत ।

जातु कठिन है अति मृदौ रवनी-मन-नवनीतु ॥ ४२८ ॥

अन्वय—मानु माह कौ सीत पति औगुन रितु गुन बढ़तु । अति मृदौ रवनी-मन-नवनीतु कठिन है जातु ।

माह = माघ मृदौ = कोमल भी । नवनीत = धी, नैनू, मक्खन ।

मान और माघ के जाड़े में (पूरी समता है । मान में) पति का अवगुण बढ़ता है—पति के दोष दिखलाई पड़ते हैं (और माघ के जाड़े में) क्रतु का गुण बढ़ता है—शीत का वेग बढ़ता है । (मान में) अत्यन्त कोमल रमणी का चित्त भी कठोर हो जाता है, और (माघ में) अत्यन्त कोमल मक्खन भी कठोर हो जाता है ।

नोट—पति अवगुन रितु के गुनन, बढ़त मान अरु सीत ।

होत मान तें मन कठिन, सीत कठिन नवनीत ॥—लहूलाल

कपट सतर भौंहें करीं मुख अनखौंहें बैन ।

सहज हँसौंहें जानिकै सौंहें करति न नैन ॥ ४२९ ॥

अन्वय—कपट भौंहें सतर करीं मुख अनखौंहें बैन, नैन सहज हँसौंहें जानिकै सौंहें न करति ।

सतर = तिरछा । अनखौंहें = क्रोधयुक्त । सहज = स्वभावतः । हँसौंहें = हँसोड, विनोदशील, चिर-प्रसन्न, प्रफुल्ल । सौंहें = सामने ।

छल से भौंहों को तिरछा कर लिया, और मुख से क्रोधयुक्त वचन (कहने लगी); किन्तु अपने नेत्रों को स्वभावतः हँसोड जानकर (नायक के) सम्मुख नहीं करती । (इस शंका से कि कहीं ये आँखों हँसकर यह बनावटी मान बिगाड़ न दें !)

सोवति लखि मन मानु धरि डिग सोयौ प्यौ आइ ।

रही सुपन की मिलनि मिलि तिय हिय सौं लपटाइ ॥ ४३० ॥

अन्वय—मन मानु धरि सोवति लखि प्यौ डिग आइ सोयौ, तिय हिय सौं लपटाइ सुपन की मिलनि मिलि रही ।

मन में मान धारण कर प्रियतमा को सोया देख प्रीतम (चुपचाप) उसके निकट आकर सो रहा । (इधर) प्रियतमा भी (अंग-स्वर्ण से कामोदीपन होने के कारण) उसके हृदय से लिपटकर स्वम का मिलन मिलने लगी ।

नोट—नायक पर नायिका कुद्ध थी । शूलमूढ़ सोने का बहाना किये पड़ी थी । नायक रहस्य समझ गया । चुपचाप उसके पास सटकर सो रहा । अब वह अपने प्रेमावेश को रोक न सकी, किन्तु खुलकर मिलने में अपनी हेठी समझ नोंद की बेलवरी में ही नायक के गले से यों लिपट गई मानो स्वम में मिल रही हो । स्त्रियों की तरल प्रकृति का यह चित्र है ।

दोऊ अधिकाई भरे एके गौं गहराइ ।

कौनु मनावै को मनै मानै मन गहराइ ॥ ४३१ ॥

अन्वय—दोऊ अधिकाई भरे पुके गौं गहराइ, कौनु मनावै को मनै मानै मन ठहराइ ।

गौं = घात । गहराई = अड़ना, ढठना । मनै = मान ही में ।

दोनों ही अधिकाई में मरे हैं—एक दूसरे में बढ़े-चढ़े हैं (और दोनों) एक ही घात पर अड़े हुए हैं—(वे सोचते हैं कि वह मनावेंगी, और यह सोचता है कि वे मनावेंगे) । फिर कौन किसको मनावे और कौन किससे मानें ? (शायद) मान ही में दोनों को मनि ठहरता है—दोनों को मान ही पसन्द है ।

लग्यो सुमनु हैंदे सुफलु आतप-रोमु निवारि ।

वारो वारो आपनी सींचि मुहृदता-बारि ॥ ४३२ ॥

अन्वय—सुमनु लग्यो सुफलु हैंदे आतप-रोमु निवारि आपनी बारी बारी सुहृदता-बारि सींचि ।

सुमन = (१) सुन्दर मन (२) फूल । सुफल = (१) सफलता (२) सुन्दर फल । आतप = धूप, घाम । रोम = रोप = क्रोध । बारी = (१)

अनुभवहीन बालिका (२) मँजरी हुई । बारी=(१) पारी, मँज (२) वाटिका, कुलवारी । सुहृदता=प्रेम, सहदयता । बारि=पानी ।

(जब) सुन्दर मन (रूपी कूल) लगा है, (तब) सफलता (रूपी सुन्दर फल) होगी ही । अतः कोध-रूपी धूप को निवारण कर अपनी इस मँजरी हुई बाटिका में प्रेम-रूपी जल छिड़क—अथवा, अपनी पारी आने पर दिल खोलकर नायक से मिल ।

गह्यो अबोलौ बोलि प्यौ आपुहिं पठै बसीठि ।

दीठि चुराई दुहुँनु की लखि सकुचौही दीठि ॥ ४३३ ॥

अन्वय—आपुहिं बसीठि पठै प्यौ बोलि अबोलौं गह्यो, दुहुँनु की सकुचौही दीठि लखि दीठि चुराई ।

आपुहिं=स्वयं ही । गह्यो अबोलौ=मौन धारण कर लिया । बोलि=बुलाकर । बसीठि=दूती । दीठि=नजर । सकुचौही=लजीली ।

स्वयं दूती भेज प्रीतम को बुलाकर (उनके आने पर) मौन धारण कर लिया । (दूती और प्रीतम) दोनों की लजीली आँखों को देखकर (यह समझ कि दोनों ने मिलकर रतिकीड़ा की है, कोध में आ) उसने, अपनी नजर चुराली—नायक से आँखें तक न मिलाई ।

मानु करत वरजति न हौं उलटि दिवावति सौंह ।

करी रिसौंहीं जाहिंगी सहज हँसौंहीं भौंह ॥ ४३४ ॥

अन्वय—मानु करत हौं न वरजति उलटि सौंह दिवावति । सहज हँसौंहीं भौंह रिसौंहीं करी जाहिंगी ।

वरजति=वरजना, मना करना । सौंह=शपथ । रिसौंहीं=रोपयुक्त, देही । सहज=स्वाभाविक । हँसौंहीं=हँसोड, विकसित, प्रसन्नता-सूचक ।

मान करने से मैं मना नहीं करती, (वरन्) उलटे मैं शपथ दिलाती हूँ (कि तू अवश्य मान कर; किन्तु कृपा कर यह तो बता कि क्या तुझसे) ये स्वाभाविक हँसोड भौंहे रोपयुक्त (वंक) की जा सकेंगी ?

खरी पातरी कान की कौनु वहाऊ बानि ।

आक-कली न रली करै अली अली जिय जानि ॥ ४३५ ॥

अन्वय—कान की खरी पातरी कौनु बहाऊ वानि । अली जिय जानि अली आक-कली रली न करै ।

खरी = अत्यन्त । बहाऊ = वहा ले जानेवाली, वहकाऊ । आक = अकवन । रली करै = विहार करे । अली = सखी । अली = भौंग ।

तुम कान की अत्यन्त पतली हो—जो कोइं चुगली कर देता है, सुन लेती हो । यह कौन-सी बहकाऊ आदत है ? सखी ! यह बात हृदय से जान लो कि मैंरा अकवन की कली के साथ विहार नहीं करता—(तुम-सी तन्वंगी तरुणी को छोड़कर अन्य काली-कल्दी के पास वह रसिक नायक नहीं जा सकता ।)

रुख रुखी मिस रोप मुख कहति रुखाँहैं बैन ।

रुखे कैसैं होत ए नेह चीकने नैन ॥ ४३६ ॥

अन्वय—रुखी रुख रोप मिस मुख रुखाँहैं बैन कहति, नेह चीकने नैन ए कैसैं रुखे होत ।

रुख = चेष्टा । मिस = वहाना । रुखाँहैं = रुखी-सूखी, कर्कश । नेह-चीकने = (१) स्नेह-स्त्रिघ, प्रेम-रस में पगे (२) चेल सं चीकने बने ।

रुखी चेष्टा सं क्रोध का वहाना कर मुख से रुखा बाते कहती है; किन्तु प्रेम से पगे ये नैन कैसे रुखे हों ?

सौंहैं हूँ हेरथौ न तैं केती याई सौंह ।

ए हो क्याँ बैठी किए ऐंठी-ग्वैठी भौंह ॥ ४३७ ॥

अन्वय—कंता सौंह याई तैं सौंहैं हूँ न हंस्या ए हो ऐंठी-ग्वैठी भौंह किए क्याँ बैठी ?

सौंहैं = सम्मुख । हेरथौ = देला । याई = दिलाई । सौंह = शपथ, कसम । ए हो = अरी । ऐंठी-ग्वैठी = टेढ़ी-मेढ़ी, बंकिम ।

कितनी भी कसमें दिलाई; किन्तु तूने सामने न देवा—मेरी ओर न ताका । अरी, यों भौंहों को टेढ़ी-मेढ़ी करके क्यों बैठी हैं ?

ए री यह तेरी दई क्याँ हूँ प्रकृति न जाइ ।

नेह-भरे ही राखियै तउ रुखियै लखाइ ॥ ४३८ ॥

अन्वय—ए री दई यह तेरी प्रकृति क्यौं हूँ न जाइ, नेह-मरे राखियै ही तड रुखियै लखाइ ।

प्रकृति=स्वभाव । लखाई=दीख पड़ना । नेह=(१) प्रेम (२) तेल ।

अरी ! हाय री दई ! यह तेरा स्वभाव किसी प्रकार नहीं बदलता । नेह से मरे (हृदय में) रखने पर भी तू रुखी दीख पड़ती है—नीरस (कुद्द) ही मालूम पड़ती है ।

विधि विधि कौन करै टरै नहीं परे हूँ पान ।

चितै कितै तैंलै धर्यौ इतैं इतैं तनु मान ॥ ४३९ ॥

अन्वय—पान परे हूँ नहीं टरै विधि कौन विधि करै, चितै इतैं तनु इतैं मान कितै तैंलै धर्यौ ?

विधि=ब्रह्मा । टरै=निकले, दूर हो । पान=पैरों । चितै=देखो । कितै=कहाँ से । इतैं=इतना । इतैं=इतने ।

पैरों पड़ने से भी (तेरा मान) दूर नहीं होता । (अब) हे विधाता, किस विधान से यह दूर होगा ? देख, इतने-से (छोटे) शरीर में तूने इतना (बड़ा) मान कहाँ से लेकर रख लिया है ?

तो रस राँच्यौ आन-वस कहैं कुटिल-मति कूर ।

जीभ निवौरी क्यौं लगै बौरी चाखि अँगूर ॥ ४४० ॥

अन्वय—तो रस राँच्यौ आन-वस कहैं कुटिल-मति कूर, बौरी जीभ अँगूर चाखि निवौरी क्यौं लगै ?

रस=प्रेम । राँच्यौ=अनुरक्त है । आन-वस=परवश । कूर=कूर, निर्दय । निवौरी=नीम । लगै=आसक्त हो । बौरी=पगली ।

(ग्रीतम तो) तुम्हारे ही प्रेम में पगा है । (जो उसे) दूसरे के वश में बतलाते हैं, वे कुटिल-बुद्धि और निर्दय हैं । अरी पगली ! जीम अँगूर चखकर नीम पर किस प्रकार अनुरक्त होगी—(तुम्हारे इस सुन्दर रूप के आगे उसे अन्य स्त्री कैसे पसंद आयेगी ?)

हा हा बदनु उधारि दृग सुफल करै सबु कोइ ।

रोज सरोजनु के परै हँसी ससी की होइ ॥ ४४१ ॥

अन्वय—हा हा बदनु उधारि सबु कोइ दग सुफल करै, सरोजनु के रोज पर ससी की हँसी होइ ।

बदन उधारि=बूँधट उठा दो । रोज परै=रोना पढ़े । हँसी=निंदा ।

अहाहा ! जरा अपना मुख उधार दो, ताकि सब कोई नेत्र सफल कर लें, कमलों को रोना पढ़े, और चन्द्रमा की हँसी हो ।

गहिली गरबु न कीजिये समै सुहागहिं पाइ ।

जिय की जीवनि जेठ सो माह न छाँह सुहाइ ॥ ४४२ ॥

अन्वय—गहिली समै सुहागहिं पाइ गरबु न कीजिये, जो छाँह जेठ जिय की जीवनि सो माह न सुहाइ ।

गहिली=(सं० ग्रहिली) पगली । माह=माघ । छाँह=छाया ।

अरी बावड़ी ! यह जवानी का समय और प्रीतम के प्रेम का सौमान्य पाकर अमिसान न कर । देखा, जो जेठ (जवानी) में प्राणों का प्राण है, वहाँ छाया (खी) माघ में (जवानी ढलने पर) नहीं सुहाती—अच्छी नहीं जगती ।

कहा लेहुगे खेल पैं तजौ अटपटी वात ।

नैकु हँसैंही हैं भई भैंहैं सौहैं खात ॥ ४४३ ॥

अन्वय—खेल कहा पैं लेहुगे, अटपटी वात तजौ, सौहैं खात भैंहैं नैकु हँसैंही भई हैं ।

कहा=क्या । लेहुगे=लोगे, पाओगे । खेल पैं=विनोद से । अटपटी=बे-सिर-पैर को । हँसैंही=हँसीली । सौहैं=सौगन्द ।

इस खेल में क्या पा जाओगे ? अटपटी वातों को छोड़ो । कितनी सौगन्दें खाने पर इनकी भैंहैं जरा हँसीली हुई हैं—तुम्हारी निदोंपिता के विषय में कितनी सौगन्दें खाकर मैंने इसे कुछ-कुछ मनाया है । (फिर अंटसंट बोलकर इसे क्यों चिढ़ा रहे हो ?)

सकुचि न रहियै स्याम सुनि ए सतरौहैं वैन ।

देत रचैहैं चित कहे नेह नचैहैं नैन ॥ ४४४ ॥

अन्वय—ए सतरौहें बैन सुनि स्याम सकुचि न रहियै, नेह नचौहें नैन
रचौहें चित कहे देत ।

सकुचि=संकोच करके । सतरौहें=कोधपूर्ण । बैन=बचन । रचौहें=प्रेम
में शराबोर, राँचे हुए । नचौहें=नाचते हुए, चंचल ।

इन कोधपूर्ण बातों को सुनकर, हे स्याम, संकोच करके न रह जाइए ।
उसकी प्रेम से चंचल हुई आँखें ही अनुरागपूर्ण चित्त को जताये देती हैं—प्रेम
से चंचल हुए नेत्र देखकर प्रकट होता है कि उसका हृदय प्रेम से शराबोर है ।

चलौ चलै छुटि जाइगौ हठु रावरै सँकोच ।

खरे चढाए हे ति अब आए लोचन लोच ॥ ४४५ ॥

अन्वय—चलौ चलै रावरै सँकोच हठ छुटि जाइगौ, हे ति, अब खड़े
चढाए ही लोचन लोच आए ।

चलै=चलने पर । रावरै=आपके, तुम्हारे । सँकोच=मुरैवत, मुलाहजा,
लिहाज । खरे चढाए=खूब चढ़े हुए, कुद्र ।

चलो, चलने पर तुम्हारे संकोच में पड़कर उसका हठ (मान) छूट
जायगा—वह मान जायगी, क्योंकि जो नेत्र तब खूब चढ़े हुए (कुद्र) थे,
उनमें अब लोच (कोमलता) आ गई है—उसकी चढ़ी हुई आँखें अब नम्र
हो गई हैं ।

अनरस हूँ रस पाइयतु रसिक रसीली पास ।

जैसे साँठे की कठिन गाँँध्यौ भरी मिठास ॥ ४४६ ॥

अन्वय—रसिक रसीली पास अनरस हूँ रस पाइयतु, जैसे साँठे की
कठिन गाँँध्यौ भरी मिठास ।

साँठे=ऊँख, ईख । गाँध्यौ = गाँठ (गिरह) में भी ।

ऐ रसिया ! रसीली (नायिका) के पास अनरस (कोध और मान) में भी
रस (आनंद) मिलता है, जिस प्रकार ऊँख की कठिन गाँठ में मिठास भी भरी
हुई रहती है ।

क्योंहूँ सह मात न लगै थाके भेद उपाइ ।

हठ दढ़-गढ़ गढ़वै सु चलि लीजै सुरँग लगाइ ॥ ४४७ ॥

अन्वय—क्यौंहूँ सह मात न लगे भेद उपाइ थाके, सु चलि हठ दढ़-गढ़ गढ़वै सुरँग लगाइ लीजै ।

सह=(१) शह=शतरंज की एक चाल, जिससे शाह की मात होती है
 (२) युक्ति । मात न लगे=(१) मात (परास्त) नहीं होती (२) नहीं मानती । गढ़वै=किलेदार, गढ़पति । सुरँग=(१) जमान के अन्दर-ही-अंदर खोदकर बना हुआ बन्द रास्ता (२) सुन्दर प्रेम । कहीं-कहीं 'सह मात' के स्थान पर 'सह वात' भी पाठ है, जिसका अर्थ है 'मेल की वातचीत' ।

किसी प्रकार शह देने से भी मात नहीं होती—किसी भी युक्ति से नहीं मानती । भेद (फूट) के सारे उपाय थक गये—मैं समझा तुझा (फोड़) कर हार गई । (अतएव) अब आप ही चलकर उस हठ-रूपी दढ़ गढ़ का किलेदारिन को सुरँग लगाकर—सुन्दर प्रेम जताकर—(जीत) लाजिए ।

वाही निसि तैं ना मिटौ मान कलह कौ मूल ।

भलैं पधारैं पाहुने हैं गुइहर कौ फूल ॥ ४४८ ॥

अन्वय—कलह का मूल मान वाही निसि तैं ना मिटौ, पाहुने गुइहर कौ फूल हैं भलैं पधारैं ।

कलह=कफाड़ा । मूल=जड़ । पाहुने=अतिथि, मेहमान । गुइहर कौ फूल=अइहुल का फूल ।

हे झाड़े का मूल मान ! तुम उसी रात से नहीं मिटे—उस रात से अबतक तुम वर्तमान हो । ऐ पाहुने ! अइहुल का फूल होकर तुम अच्छे आये !

नोट—भाव यह है कि मान कभी-कभी पाहुने की तरह आता और कुछ काल तक ठहरता है और, क्षियों का विश्वास है कि जिस घर में अइहुल का फूल होगा, वहाँ स्त्री-पुरुष में न पटेगी । इसलिए यहाँ 'पाहुन' और 'अइहुल का फूल' कहा है ।

आए आपु भली करो मेटन मान-मरार ।

दूरि करो यह देखिहै छला छिगुनिया छार ॥ ४४९ ॥

अन्वय—मान-मरार मेटन आए आपु भला करो । छिगुनिया छार छला दूरि करो यह देखिहै ।

छला = अँगूठी । छिगुनिया = कनिशा अँगुली । छोर = अन्त ।

मान का मरोड (पेंड) मेटने को—समझा-बुझाकर (इस नायिका को) मनाने के लिए—आये, सो तो आपने अच्छा ही किया । किन्तु छिगुनी के छोर में पहनी गई इस अँगूठी को—(जो निस्संदेह किसी अन्य युवती की है, क्योंकि छोटी—पतली उँगलियों में पहनी जानेवाली—होने के कारण आपकी अँगुली के छोर पर ही अटकी दुई है)—दूर कीजिये, (नहीं तो) वह देख लेगी (तो फिर मनाना कठिन हो जायगा !)

हम हारीं के कै हहा पाइनु पार्थ्यौ प्यौऽरु ।

लेहु कहा अजहुँ किए तेह तरेख्यौ त्यौरु ॥ ४५० ॥

अन्वय—हहा के कै हम हारीं अरु प्यौ पाइनु पार्थ्यौ, अजहुँ त्यौरु तेह तरेख्यौ किए कहा लेहु ।

कै कै हहा = हाय-हाय या दौड़-धूप और कोशिश पैरवी करके । पार्थ्यौ = डाल दिया । प्यौऽरु = प्यौ + अरु = अरु प्यौ = और प्रीतम को । अजहुँ = अब भी, इतने पर भी । तेह तरेख्यौ त्यौरु = क्रोध से त्योरियाँ चढ़ाये ।

हाय-हाय करके मैं हार गई, और प्रीतम को भी तुम्हारे पैरों पर लाकर डाल (गिरा) दिया—(मैं भी समझा-बुझाकर थक गई और नायक भी मेरे कहने से तुम्हारे पैरों पड़ा)—इतने पर भी क्रोध से त्योरियाँ चढ़ाकर क्या पाओगी ?

लखि गुरुजन विच कमल सौं सीसु छुवायौ स्याम ।

हरि-सनमुख करि आरसी हियैं लगाई बाम ॥ ४५१ ॥

अन्वय—गुरुजन विच लखि स्याम सीसु कमल सौं छुवायौ, बाम हरि-सनमुख आरसी करि हियैं लगाई ।

गुरुजन = श्रेष्ठ पुरुष, माता-पिता आदि । सौं = से । आरसी = आईना । बाम = बामा, युवती छी ।

(उसे) गुरुजनों के बीच मैं देखकर श्रीकृष्ण ने अपना सिर कमल से छुलाया (अर्थात्—हे कमलनयन ! अभिवादन करता हूँ) इसपर उस छी (राधिका) ने दर्पण को श्रीकृष्ण के समुख करके हृदय से लगाया (अर्थात्—इसी दर्पण के समान मेरे निर्मल हृदय में भी तुम्हारा प्रतिविम्ब विराज रहा है) ।

मनु न मनावन कौं करै देतु रुठाइ रुठाइ ।
कौतुक लाग्यौ प्यौ प्रिया खिम्हूँ रिज्जवति जाइ ॥ ४५२ ॥

अन्वय—मनावन कौं मनु न करै रुठाइ रुठाइ देतु, प्यौ कौतुक लाग्यौ प्रिया खिम्हूँ रिज्जवति जाइ ।

कौतुक=विनोद, मनोरंजन । लागौ=निमित्त । खिम्हूँ=खीझ (भुँझला) कर ही । रिज्जवति जाइ=प्रसन्न करती जाती है ।

(प्रियतमा के रुठने की मावभंगी पर मुग्ध होने के कारण प्रीतम को प्रिया के) मनाने का मन नहीं करता, (अतएव) वह बार-बार उसे रुठा देता है । (इधर) प्रीतम के कौतुक के लिए प्रियतमा भी (रुठमूठ अधिकाधिक) खीझकर ही उसे रिज्जाती जाती है ।

सकत न तुव ताते वचन मो रस कौ रस खोइ ।
खिन-खिन औंटे खीर लौं खरौं सवादिलु होइ ॥ ४५३ ॥

अन्वय—तुव ताते वचन मो रस कौ रस खोइ न सकत, खिन-खिन औंटे खीर लौं खरौं सवादिलु होइ ।

ताते=(१) जली-कटी (२) गरम । रस=प्रेम । रस=(१) स्वाद (२) पानी । खिन-खिन=क्षण-क्षण । खीर लौं=(क्षीर) दूध की तरह ।

तुम्हारी जली-कटी बातें मेरे प्रेम के रस को खो (सोख या सुखा) नहीं सकतीं—नष्ट नहीं कर सकतीं । (वह तो इन तस वचनों से) क्षण-क्षण (अधिकाधिक) औंटे हुए दूध के समान और भी अधिक स्वादिष्ट होता जाता है ।

खरैं अदब इठलाहटी उर उपजावति त्रासु ।
दुसह संक विष कौ करै जैसैं सौंठि मिठासु ॥ ४५४ ॥

अन्वय—खरैं अदब इठलाहटी उर त्रासु उपजावति, जैसैं सौंठि मिठासु विष कौ दुसह संक करै ।

खरैं=अल्पत । अदब=शिष्टता । इठलाहटी=ऐंठ भी । त्रास=डर । दुसह=कठोर । सौंठि मिठासु=सौंठ में मिठास आ जाने पर वह विपैली हो जाती है, खाने से दह्त-के और सिर-दर्द होने लगता है ।

(प्यारी का) अदब के साथ इठलाना भी हृदय में भय उत्पन्न करता है । जिस प्रकार सौंठ की मिठास (सौंठ का स्वामाविक स्वाद तीव्र है, अतएव उसकी मिठास) विष की कठिन शंका पैदा करती है ।

राति द्यौस हौंसै रहति मान न ठिकु ठहराइ ।

जेतौ औगुन हूँडियै गुनै हाथ परि जाइ ॥ ४५५ ॥

अन्वय—राति द्यौस हौंसै रहति, मान ठिकु न ठहराइ, जेतौ औगुन हूँडियै गुनै हाथ परि जाइ ।

हौंसै रहति=हौसला ही बना रहता है । ठिकु न ठहराइ=ठीक नहीं ज़चता । हाथ परि जाइ=हाथ लग (मिल) जाते हैं ।

रात-दिन उत्सुकता बनी रहती है (कि मान करूँ), किन्तु मान ठीक नहीं ज़चता । (क्योंकि मान करने के बहाने के लिए) जितने ही अवगुण उसमें हूँडती हूँ, उतने ही गुणों (पर) हाथ पड़ जाते हैं ।

नोट—कविवर 'रहीम' की नायिका कहती है—“करत न हिय अपरधवा सपने पीय, मान करन की बेरियाँ रहि गइ हीय ।”

सतर भौंह रुखे बचन करति कठिनु मनु नीठि ।

कहा करौं हूँ जाति हरि हेरि हँसौंहीं ढीठि ॥ ४५६ ॥

अन्वय—नीठि भौंह सतर बचन रुखे मनु कठिनु करति कहा करौं हरि हेरि ढीठि हँसौंहीं है जाति ।

सतर=तिरछी । नीठि=मुश्किल से । कहा=क्या । हेरि=देखकर । हँसौंहीं=हँसीयुक्त, प्रफुल्ज ।

(मान करने की गरज से) मुश्किल से भौंहें तिरछी, बचन रुखे और मन कठोर करती हूँ, (किन्तु) क्या करूँ, श्रीकृष्ण को देखते ही दृष्टि विकसित हो जाती है—आँखें हँस पड़ती हैं ! (फिर मान कैसे हो ?)

मो ही कौ छुटि मान गौ देखत ही ब्रजराज ।

रही घरिक लैं मान-सी मान करे की लाज ॥ ४५७ ॥

अन्वय—ब्रजराज देखत ही मो ही कौ मान छुटि गौ, मान-सी मान करे की लाज घरिक लैं रही ।

मो=मेरे । ही=हृदय । छुटि गौ=छूट गया । ब्रजराज=श्रीकृष्ण । घरिक=घड़ी+एक=एक घड़ी । मान-सी=मान के समान ।

श्रीकृष्ण को देखते ही मेरे हृदय का मान छूट गया । हाँ, उस मान के समान मान करने की लाज एक घड़ी तक अवश्य रही—(एक घड़ी तक इस लाज में छिपकी रही कि ऐसा मान नाहक क्यों किया, जो निम न सका ।)

दहैं निगोड़े नैन ए गहैं न चेत अचेत ।

हैं कसु कैं रिसहे करैं ए निसिखे हँसि देत ॥ ४५८ ॥

अन्वय—ए निगोड़े नैन दहैं, अचेत चेत न गहैं, हैं कसु कैं रिसहे करैं ए निसिखे हँसि देत ।

चेत न गहैं=होश नहीं सँभालते । अचेत=वेहोश । कसु कैं=कसकर, चेष्टा करके । रिसहे=रोपयुक । निसिखे=अशिक्षित, मूर्ख ।

ये निगोड़े नैन जल जायें । ये वेहोश कुछ भी होश नहीं सँभालते । मैं कसकर—बड़ी चेष्टा से—इन्हें रोपयुक बनानी हूँ, और ये मूर्ख हँस देते हैं ।

तुहूँ कहति हैं आपु हूँ समुझति सबै सयानु ।

लखि मोहनु जौ मनु रहै तौ मनु राखौं मानु ॥ ४५९ ॥

अन्वय—तुहूँ कहति हैं आपु हूँ सबै सयानु समुझति, मोहनु लखि जौ मनु रहै तौ मनु मानु राखौं ।

आपु हूँ=स्वयं भी । सयानु=चतुराई की बातें, चातुरी ।

तू भी कहती है और मैं स्वयं भी सब चातुरी समझता हूँ । किन्तु मोहन को देखकर जो मन स्थिर रह सके, तभी तो मन में मान रखूँ ? (उन्हें देखकर मन हाँ नहीं स्थिर रहता, किस मान कैसे करूँ ?)

माहिं लजावत निलज ए हुलसि मिलत सब गात ।

भानु-उदैं को ओस लौं मानु न जानति जात ॥ ४६० ॥

अन्वय—ए निलज सब गात हुलसि मिलत माहिं लजावत, मानु-उदैं की ओस लौ मानु जानति न जात ।

हुलसि=लालसा से भगकर । भानु=सूर्य । मानु=मान, गर्व ।

(मेरे मान करने पर मी) ये सारे निर्लंज अंग (भुजाएँ, हृदय, आँखें, कपोल आदि) ललककर (उन्हें देखते ही) मिल जाते हैं, और मुझे जन्मित कर देते हैं। (सो क्या कहूँ) सूर्योदय (के बाद) की ओस के समान मान नहीं जान पड़ता। (समझ में नहीं आता, कैसे गायब हो जाता है।)

खिचैं मान अपराध हूँ चलि गै बढ़ैं अचैन ।

जुरत दीठि तजि रिस खिसी हँसे दुहुँन के नैन ॥ ४६१ ॥

अन्वय——दुहुँन के नैन मान अपराध हूँ खिचैं, अचैन बढ़ैं चलि गै, दीठि जुरत रिस खिसी तजि हँसे ।

अचैन = वेचैनी । जुरत = जुइते । दीठि = नजर । खिसी = लाज ।

दोनों के नेत्र पहले मान और अपराध के कारण (नायिका के मान और नायक के अपराध के कारण) ही खिंचे रहे—तने रहे। किन्तु वेचैनी बढ़ते ही (एक दूसरे से मिलने को) चल दिये और नजर जुइते (आँखें चार होते) ही कोध एवं लाज छोड़कर दोनों के नेत्र हँस पड़े (खिल उठे) ।

नभ लालो चाली निसा चटकालो धुनि कीन ।

रति पाली आली अनत आए बनमाली न ॥ ४६२ ॥

अन्वय——नभ लालो निसा चाली चटकालो धुनि कीन, बनमालो न आए, आली अनत रति पाली ।

नभ = आकाश । चटकाली = पक्षियों का समूह । रति पाली = प्रेम का पालन किया, समागम या विहार किया । आली = सखी । अनत = अन्यत्र ।

आकाश में लालो छा गई, रात बीत गई, पक्षि-समूह चहचहाने लगा, (किन्तु) कृष्णजी न आये । हे सखि ! (मालूम पड़ता है कि) उन्होंने कहीं अन्यत्र प्रेम का पालन किया (विहार किया) ।

दच्छन पिय है वाम बस विसराँहै तिय-आन ।

एकै वासरि कै विरह लागी वरप विहान ॥ ४६३ ॥

अन्वय——दच्छन पिय है वाम बस तिय-आन विसराँहै, एकै वासरि कै विरह वरप विहान लागी ।

दच्छुन = दक्षिण = चतुर, दक्ष | वाम = कुटिला (ब्री) | वासरि = दिन |
तिय-आन = स्त्रियों की आन (टेक) | विहान लागी = व्रीतने लगी ।

चतुर नायक होकर भी तुमने कुटिला के वश में पड़कर प्रेमिका की आन
भुला दी—प्रेमिका अपने प्रीतम को दूसरी स्त्री के वश में नहीं देख सकती, यह
बात भुला दी । (चलकर अपनी प्यारी को तो देखो कि) एक ही दिन का
विरह उसे वर्ष के समान बीत रहा है ।

आपु दियौ मन फेरि लै पलटैं दीनी पीठि ।

कौन चाल यह रावरी लाल लुकावत डीठि ॥ ४६४ ॥

अन्वय—आपु दियौ मन फेरि लै पलटैं पीठि दीना, लाल रावरी यह कौन
चाल डीठि लुकावत ।

मन फेरि लै = मन फेर लिया, उदासीन बन गये । पलटैं = बदले में । पीठि
दीनी = पीठ दी = विसुख बन गये । डीठि लुकावत = नजर चुराते हो =
शर्माते हो ।

अपना दिया हुआ मन बापस लेकर बदले में पीठ दे दी ! (यहाँ तक तो
अच्छा था, क्योंकि एक चीज फेर ली, तो उसके बदले में दूसरी दे दी—मन
फेर जिया और पीठ दे दी !) किन्तु हे लाज, आपकी यह कौन-सा चाल है कि
अब नजर चुरा रहे हो ? (चुराना तो चोर का काम है !)

नोट—“मन फेर लेना, पीठ देना, आँखें चुराना”—इन तीन मुहावरों
द्वारा इस दोहे में कवि ने जान डाल दी है । सिवा उर्दू-कवियों के कोई भी
हिन्दी-कवि इस प्रकार मुहावरे की करामात नहीं दिखा सका है । हाँ, ‘रसलीन’
ने भी अच्छी मुहावरेबन्दी की है ।

मोहि दयौ मेरौ भयौ रहतु जु मिलि जिय साथ ।

मो मनु बाँधि न सौंपियै पिय सौंतिन कैं हाथ ॥ ४६५ ॥

अन्वय—मोहि दयौ मेरौ भयौ, जु जिय साथ मिलि रहतु मो मनु बाँधि
पिय सौंतिन कैं हाथ न सौंपियै ।

जिय = जीव, प्राण । सो = वह । सौंपियै = जिम्मे कीजिए ।

आपने मुझे (मन) दिया, (फलतः) वह मेरा हो गया, और अब वह मेरे प्राणों के साथ मिलकर रहता है । उस मन को (जवरदस्ती) बाँधकर, हे प्रीतम, सौतिन के हाथ मत सौंपिए । (एक तो उसपर मेरा अधिकार, दूसरे वह मुझसे राजी, फिर न्यायतः उसे दूसरे को देना आपको उचित नहीं !)

मारथौ मनुहारिनु भरी गारथौ खरी मिठाहिं ।

वाकौ अति अनखाहटौ मुसक्याहट विनु नाहिं ॥ ४६६ ॥

अन्वय—मारथौ मनुहारिनु भरी गारथौ खरी मिठाहिं, वाकौ अति अन-
खाहटौ विनु मुसक्याहट नाहिं ।

मारथौ=मार भी । मनुहारिनु=मनुहारों, प्यारों । गारथौ=गाली भी ।
खरी=अत्यन्त । मिठाहिं=मीठी । अनखाहटौ=कोध भी ।

उसकी मार भी प्यारों से भरी है, और गाली भी अत्यन्त भीठी है । उसका अत्यन्त कोध भी विना मुस्कुराहट के नहीं होता । (नायक के हृदय में नायिका के प्रतिकूल कुछ नहीं सूझता !)

नोट—इसी प्रकार संस्कृत के एक कवि कहते हैं—“लम्बकुचालिंगनतो
लकुचकुचायाः पादताडनं श्रेयः”—लम्बे कुचोंवाली के आलिंगन से छोटे
कुचोंवाली का पद-प्रदार भी अच्छा ।” मसल मशहूर है—‘दुघैल गाय की
लात भी भली ।’

तुम सौतिन देखत दर्द अपनै हिय तैं लाल ।

फिरति डहडही सबनु मैं वहै मरगजी माल ॥ ४६७ ॥

अन्वय—लाल, तुम सौतिन देखत अपनै हिय तैं दर्द, वहै मरगजी माल
सबनु मैं डहडही फिरति ।

देखत=देखते रहने पर । डहडही=हरी-भरी, फूली-फली, आनन्दित ।
सबनु=सब लोगों या सखियों के बीच । मरगजी=मलिन, मुरझाई हुई ।

हे लाल, तुमने सौतिन के देखते रहने पर भी अपने हृदय से (माला उतारकर) उसे दी, सो उस मुरझाई हुई (मलिन) माला को पहने वह सब
(सहेलियों) में आनन्दित बनी फिरती है ।

बालम बारैं सौति कैं सुनि पर-नारि-विहार ।

भो रसु अनरसु रिस रली रोभि खीझि इक बार ॥ ४६८ ॥

अन्वय—सौति कैं बारैं बालम पर-नारि-विहार सुनि रसु अनरसु रिस रली रीझि खीझि इक बार भो ।

बालम=बल्लभ=पति । बारैं=पारो, भाँज । विहार=सम्भोग । रसु=सुख । अनरसु=दुःख । रिस=कोध । रली=कीड़ा, मजाक । रीझि=प्रसन्नता । खीझि=अप्रसन्नता ।

सौतिन की पारी में अपने पति के दूसरी खी के साथ विहार करने की बात सुनकर नायिका के मन में सुख और दुःख, कोध और मजाक, रीझ और खीझ (ये परस्पर-विरोधी भाव) एक ही समय हुए ।

नोट—सुख, मजाक और रीझ इसलिए कि अच्छा हुआ, सौतिन को दुःख हुआ; और दुःख, कोध तथा खीझ इसलिए कि कहीं मेरी पारी में भी ऐसा ही न हो ।

सुघर-सौति-बस पिड मुनत दुलहिनि दुगुन हुलास ।

लखी सखी-तन दीठि करि सगरव सलज सहास ॥ ४६९ ॥

अन्वय—पिड सुघर-सौति-बस मुनत दुलहिनि हुलाम दुगुन, दीठि सगरव सलज महाम करि सखी-तन लखी ।

सुघर=सुन्दर गड़न की, सुडौल । दुलहिनि=नई बहू, नवोढा । हुलास=आनन्द । सखी-तन=सखी की ओर । दीठि=नजर ।

अपने पति को सुन्दरी सौतिन के बश में सुनकर नई बहू का आनन्द दुगुना हो गया । उसने गर्वाली, लजीली और हँसाली नजरों से सखी की ओर देखा ।

नोट—आनन्दित होकर सखी की ओर देखने का भाव यह है कि हे सखी, घबराओ मत, यदि वे बस्तुतः सौन्दर्य के प्रेमी हैं, तो एक-न-एक दिन अवश्य मेरी ओर आकृष्ट होंगे । रूपगर्विता !!

हठि हितु करि प्रीतम लियौ कियौ जु सौति सिंगारु ।

अपने कर मोतिनु गुद्धौ भयौ हरा हर-हारु ॥ ४७० ॥

अन्वय—अपने कर मोतिनु गुणौ हठि हितु करि सौति प्रीतम लियौ जु
सिंगारु कियौ हरा हर-हारु भयौ ।

हित=प्रेम । सिंगार=शृंगार । गुणौ=गूँथकर । हरा=हार, माला ।
इर-हारु=शिव की माला, सर्प की माला ।

अपने हाथों से मोतियों की माला गूँथकर हठ और प्रेम करके सौतिन ने
प्रीतम के हृदय का जो शृंगार किया—प्रीतम के हृदय को उस मोतियों की
माला से आभूषित किया—सो (वह मोतियों की माला) नायिका के लिए
सर्प की माला (-सी दुःखदायिनी) हुई ।

विथुरुचौ जावकु सौति पग निरखि हँसी गहि गाँसु ।

सलज हँसौंहीं लखि लियौ आधी हँसी उसाँसु ॥ ४७१ ॥

अन्वय—सौति पग विथुर्चौ जावकु निरखि गाँसु गहि हँसी, सलज
हँसौंहीं लखि आधी हँसी उसाँसु लियौ ।

विथुरचौ=पसरा हुआ । जावकु=महावर । गाँसु गहि=ईर्षा से, डाह
से । उसाँसु=ऊँची साँस, उसाँस, दीर्घ निःश्वास ।

(अपनी) सौतिन के पैरों में पसरा हुआ महावर देख (उसे फूहड़ समझ)
ईर्षा से हँसने लगी । (किन्तु अपनी इस हँसी के कारण) सौतिन को लज्जीली
होकर हँसते देख (यह समझा कि यह बेढ़ंगा महावर नायक ने लगाथा है)
आधी हँसी में हां (दुःख से) लम्बी साँस लेने लगी ।

बाढ़तु तो उर उरज-भरु भरि तरुनई विकास ।

बोझनु सौतिनु कै हियैं आवति रुँधि उसास ॥ ४७२ ॥

अन्वय—तरुनई विकास भरि उरज-भरु बाढ़तु तो उर, बोझनु रुँधि
उसास आवति सौतिनु कै हियैं ।

उर=छाती । उरज-भरु=कुचों का भार । तरुनई=जवानी । विकास=
खिलना । बोझनु=बोझ से । हियैं=हृदय में । उसास=उच्छ्रवास, गर्म आह,
लम्बी साँस, दुःख-भरी साँस ।

जवानी के विकास से भरकर कुचों का भार बढ़ता जाता है तुम्हारी छाती

पर, और उसके बोझ से रुँधी हुई उसासें आती हैं सौतिन के हृदय में ।
(कैसा आश्र्य है !)

ढीठि परोसिनि ईठि है कहे जु गहे सयानु ।

सबै सँदेसे कहि कह्यौ मुसुकाहट में मानु ॥ ४७३ ॥

अन्वय—ढीठि परोसिनि ईठि है जु सयानु गहे कहे सबै सँदेसे कहि कह्यौ मुसुकाहट में मानु ।

ढीठि = ढिठाई से भरी, धृष्ट, शोख । ईठि = इष्ट-मित्र, सुहृद् । सयानु गहे = चतुराई के साथ ।

धृष्ट पड़ोसिन ने मित्र बनकर जो कुछ कहने थे सो चतुराई के साथ कहे (और अन्त में कहा कि) इन सब सन्देशों को कहकर (अन्त में तुम्हारे प्रीतम ने) कहा है कि केवल मुस्कुराहट में मान कैसा ?

नोट—कृष्ण कवि की सबैया से इसका भाव स्पष्ट हो जाता है—“जाहिं परोसिन के दुख पीसों जुकी ललना रिस जी मैं ढिठाई । सो ही परोसिन ढीठ यहाँ लगि ईठ है याहि मनावन आई । प्रीतम के जे सँदेस हुते वे कहे सबही करिके चतुराई । येते पै मान कह्यौ मुसुकाय यहै कहि प्यार खरी कै रिसाई ।”

चलत देत आभारु सुनि उहीं परोसिहिं नाह ।

लसी तमासे की दगनु हाँसी आँसुनु माँह ॥ ४७४ ॥

अन्वय—चलत नाह उहीं परोसिहिं आभारु देत सुनि, दगनु आँसुनु माँह तमासे की हाँसी लसी ।

आभारु = घर की देख-भाल का भार । नाह = नाथ, पति । लसी = शोभित हुई । तमास की हँसी = कौतुक की हँसी । दगनु = आँखों में । आँतुनु माँह = आँसुओं के बीच ।

चलते समय अपने पति को उसी पड़ोसी (अपने गुप्त प्रेमी) को घर की देख-भाल का भार देते सुनकर उसकी आँखों में आँसुओं के बीच कौतुक की हँसी शोभित हुई ।

नोट—यद्यपि आँख टालकर ऊपर से वह दिखला रही है कि पति के (विदेश) जाने से वह दुःखित है; किन्तु वह देखकर कि घर की देख-रेख

का भार उन्होंने पड़ोसी ही को सौंपा है, अतएव अब इस (अपने गुप्त प्रेमी) से खुलकर खेलने में कोई अड़चन न होगी, वह मन-ही-मन आनंदित भी हो रही है ।

छला परोसिनि हाथ तैं छलु करि लियौ पिछानि ।

पियहि दिखायौ लखि बिलखि रिस-सूचक मुसुकानि ॥ ४७५ ॥

अन्वय—छला पिछानि परोसिनि हाथ तैं छल करि लियौ बिलखि रिस-सूचक मुसुकानि लखि पियहि दिखायौ ।

छला = अँगूठी । छल करि = चालाकी या चालबाजी से । पिछानि = पहचानकर । लखि = देखती हुई । बिलखि = व्याकुल होकर ।

उस अँगूठी को पहचानकर पड़ोसिन के हाथ से छल करके ले लिया और फिर व्याकुल होकर कोध-सूचक मुस्कुराहट के साथ (प्रीतम की ओर) देखती हुई प्रीतम को उसे दिखलाया (कि देखिए, यह आपको अँगूठी उसकी अँगुली में कैसे गई !)

रहिहैं चंचल प्रान ए कहि कौन की अगोट ।

ललन चलन की चित धरी कल न पलनु की ओट ॥ ४७६ ॥

अन्वय—कहि कौन की अगोट ए चंचल प्रान रहिहैं, ललन चलन की चित धरी पलनु की ओट कज न ।

कहि = कहो । अगोट = अग्र+ओट = आइ । ललन = प्रीतम । चित धरी = इरादा किया है, निश्चय किया है । पलनु = पलकें, आँखें ।

कहो, किसकी आइ में ये चंचल प्राण (टिक) रहेंगे—कौन इन प्राणों को निकलने से रोक सकेगा ? प्रीतम ने (विदेश) चलने की की बात चित में धरी हैं और यहाँ आँखों की ओट होते ही कल नहीं पड़ती—(उन्हें देखे बिना अण-भर शान्ति नहीं मिलती) ।

पूस मास सुनि सखिन पैं साँई चलत सवारु ।

गहि कर बीन प्रवीन तिय राग्यौ रागु मलारु ॥ ४७७ ॥

अन्वय—पूस मास सखिन पैं सुनि साँई सवारु चलत प्रवान तिय कर बीन गहि मकारु रागु राग्यौ ।

साँई=स्वामी, पति । सवारू=सवेरे । राख्यौ=गाया, अलापा ।

पूस के महीनों में, सखियों से (यह) सुनकर कि कज प्रातःकाल प्रीतम (परदेश) जायेंगे, वह सुचतुरा च्छी हाथ में बीणा लेकर मलार-राग गाने लगी (ताकि मेघ वरसे और प्रीतम का परदेश जाना स्क जाय; क्योंकि अकाल बृष्टि से यात्रा स्क जायगी) ।

नोट—संगीत-शास्त्र के अनुसार मलार-राग गाने से मेघ वरसता है और सुखद वरसात में रसिक पति परदेश नहीं जाते ।

ललन चलनु सुनि चुपु रही बोली आपु न ईठि ।

राख्यौ गहि गाढ़ै गरै मनौ गलगली ढीठि ॥ ४७८ ॥

अन्वय—ईठि ललन चलनु सुनि चुपु रही आपु न बोली; मनौ गलगली ढीठि गरै गाढ़ै गहि राख्यौ ।

ललन=प्रीतम । ईठि=प्यारी सखी । गाढ़ै गहि=जोर से पकड़कर । गरै=गला । गलगली=आँसुओं से डबडबाई हुई । ढीठि=आँख ।

हे सखी, प्रीतम का (परदेश) चलना सुनकर वह चुप हो रही, स्वयं कुछ नहीं बोली, मानो डबडबाई हुई आँखों ने उसके गले को जोर से पकड़ रखा हो—(अश्रुगदगद कंठ स्थूल हो गया हो !) ।

बिलखी डभकौहैं चखनु तिय लखि गवनु वराइ ।

पिय गहवरि आएं गरैं राखो गरैं लगाइ ॥ ४७९ ॥

अन्वय—बिलखी डभकौहैं चखनु तिय लखि गवनु वराइ, पिय गरैं गहवरि आएं गरैं लगाइ राखो ।

बिलखी=व्याकुल । डभकौहैं=डबडबाई हुई । गवनु वराइ=जाना रोककर । गहवरि आएं गरैं=भर आये हुए गले से, गदगद कंठ से ।

व्याकुल और डबडबाई हुई आँखों से, नायिका को देश (परदेश) जाना रोककर प्रीतम ने गदगद कंठ से उसे गले लगा रखा ।

चलत चलत लौं लै चलैं सब सुख संग लगाइ ।

श्रीपम-वासर सिसिर-निसि प्यौ मो पास वसाइ ॥ ४८० ॥

अन्वय—चलत चलत लौं सब सुख संग लगाइ लै चलै, ग्रीष्म-बासर सिसिर-निसि प्यौ मो पास बसाइ ।

ग्रीष्म-बासर = गरमी के दिन । सिसिर-निसि = जाड़े की रात ।

(परदेश) चलते-ही-चलते सब सुखों को संग लगाकर ले चले—जाते-ही-जाते सब सुखों को साथ ले गये । हाँ, ग्रीष्म के (तपते हुए बड़े-बड़े) दिन और शिशिर की (ठिठुरानेवाली लम्बी-लम्बी) राते (इन्हीं दो को) ग्रीतम ने मेरे पास बसा दीं—खल छोड़ीं । (रात-दिन इतने बड़े-बड़े और भयंकर मालूम होते हैं कि काटे नहीं कटते—जाड़े की रात और गरमी के दिन बहुत बड़े होते भी हैं) ।

अजौं न आए सहज रँग विरह-दूबरैं गात ।

अवहीं कहा चलाइयतु ललन चलनु की बात ॥ ४८१ ॥

अन्वय—विरह-दूबरैं गात अजौं सहज रँग न आए, ललन चलनु की बात अवहीं कहा चलाइयतु ।

अजौं = अभी तक । सहज = स्वाभाविक । रँग = कान्ति, छृटा ।

विरह से दुबली हुई (नायिका की) देह में अबतक स्वाभाविक कान्ति भी नहीं आई है, (फिर) है ललन, (परदेश) चलने की बात अभी क्यों चला रहे हैं ?

ललन चलनु सुनि पलनु में अँसुवा भलके आइ ।

भई लखाइ न सखिनु हूँ झूठैं हीं जमुहाइ ॥ ४८२ ॥

अन्वय—ललन चलनु सुनि पलनु में अँसुवा आइ भलके, झूठैं हीं जमुहाइ सखिनु हूँ लखाइ न मई ।

पलनु में = पलकों (आँखों) में । अँसुवा आइ झलके = चमकीले आँसू छलक आये । लखाइ न भई = मालूम नहीं हुई ।

ग्रीतम के परदेश चलने की बात सुनकर पलकों में आँसू आ भलके—आँखें ढबढवा आईं । किन्तु नायिका के झटी जम्हाई लेने के कारण (पास की) सखियों को भी (यथार्थ बात) नहीं मालूम हुई—(सखियों ने समझा कि ये आँसू अँगड़ाई केने के कारण निकल आये हैं !)

चाह-भरीं अनि रस-भरीं विरह-भरीं सब बात ।

कोरि सँदेसे दुहुँनु के चले पौरि लौं जात ॥ ४८३ ॥

अन्वय—सब बात चाह-भरीं अति रस-भरीं विरह-भरीं, पौरि लौं जात दुहुँनु के कोरि सँदेसे चले ।

चाह = प्रेम । पौरि = दरवाजा, देवढी । लौं = तक ।

(नायक के परदेश चलने के समय नायक और नायिका—दोनों—की) सभी बातें प्रेमपूर्ण, अत्यन्त रसीली और विरह से मरी थीं । यों दरवाजे (देवढी) तक जाते-जाते दोनों के (परस्पर) करोड़ों सन्देश आये-गये । (प्रेम, रस और विरह से मरी बातें होती चली गईं ।)

मिलि-चलि चलि-मिलि मिलि चलत आँगन अथयौ भानु ।

भयौ महूरत भोर कौ पौरिहिं प्रथम मिलानु ॥ ४८४ ॥

अन्वय—मिलि-मिलि चलि-चलि मिलि चलत आँगन भानु अथयौ, भोर कौ महूरत पौरिहिं प्रथम मिलानु भयौ ।

अथयौ=दूब गया । भानु=सूर्य । महूरत=शुभ समय, यात्रा का समय । भोर=तइकै, प्रातः । पौरिहिं=दरवाजा । मिलानु=मुकाम, डेरा ।

मिल-मिलकर, चल-चलकर, पुनः मिलकर फिर चलते हैं (यों इस मिलने-चलने में) आँगन ही में सूर्य दूब गया—प्रातः काल ही का यात्रा-समय होने पर भी दरवाजे में ही पहला मुकाम हुआ—यद्यपि भोर ही यात्रा करने चले, तो भी इस मिलने-मिलाने से संध्या होने के कारण दरवाजे पर ही पहला डेरा जमाना पड़ा ।

दुसह विरह दारुन दसा रह्यौ न और उपाइ ।

जात-जात जौ राखियतु प्यौ कौ नाउँ सुनाइ ॥ ४८५ ॥

अन्वय—विरह दुसह दसा दारुन और उपाइ न रह्यौ, प्यौ कौ नाउँ सुनाइ जात-जात जौ राखियतु ।

दुसह=असह्य । दारुन=भयंकर । और=अन्य । जात-जात=जाते-जाते, गमनोन्मुख । जौ=प्राण । प्रिय=प्रीतम ।

विरह असह्य है, अवस्था भयंकर है । (इस दशा से छुटकारा दिलाने का)

कोई अन्य उपाय नहीं रह गया। प्रीतम का नाम सुना-सुनाकर ही उसके गमनोन्मुख प्राणों की रक्षा की जाती है।

पजरयौ आगि वियोग की बह्यौ विलोचन नीर।

आठौं जाम हियौ रहै उड़यौ उसास-समीर॥ ४८६॥

अन्वय—वियोग की आगि पजरयौ विलोचन नीर बह्यौ, हियौ आठौं जाम उसास-समीर उड़यौ रहै।

पजरयौ = पजरना, प्रज्वलित होना। विलोचन = आँखों से। जाम = पहर। उसास = लम्बी सौंस, शोकोन्ध्रवास। समीर = पवन।

विरह की आग प्रज्वलित हो गई है, आँखों से आँसू वह रहे हैं—आँसुओं की झड़ी लग गई है—और हृदय में आठों पहर उच्छ्रवास का पवन (बवंडर) उठ रहा है। (यों वह अवला एक ही साथ जल भी रही है, दूब भी रही है और बवंडर में उड़ भी रही है!)

नोट—विधवाओं की दशा पर एक ने लिखा है—“आह की अगिन में तड़पती है जलती है, लांछन की लहरी डुबोती प्राण लेती है। विरह-बवंडर में व्याकुल बनी है बाला, आह री नियति ! यह कैसी तेरी चित्रशाला !”

पलनु प्रगटि वरुनीनु बढ़ि छिनु कपोल ठहरात।

अँसुवा परि छतिया छिनकु छनछनाइ छिपि जात॥ ४८७॥

अन्वय—पलनु प्रगटि वरुनीनु बढ़ि छिनु कपोल ठहरात, अँसुवा छतिया परि छिनकु छनछनाइ छिपि जात।

पलनु = पलकें, आँखों में। वरुनीनु = पपनी या पलक के बालों में। कपोल = गाल। छिनकु = छिन + एकु = एक क्षण। छिपि जात = लुप्त हो जाते हैं।

पलकों में प्रकट होते हैं—पलक ही उनकी जन्मभूमि है, वरुनियों में बढ़ते हैं—वरुनी ही उनकी क्रीड़ाभूमि है, (और वहाँ से बढ़कर) क्षण-भर के लिए (चिकने) गालों पर ठहरते हैं—यों गाल उनकी प्रवास-भूमि या कर्म-भूमि हैं। फिर अँसू (उस नायिका की विरह-विद्गम्य) छाती पर पड़ एक ही क्षण में छनछनाकर लुप्त हो जाते हैं—अतएव छाती ही उनकी इमशानभूमि हुई!

नोट—विहारी ने इस एक ही दोहे में अँसुओं के बहाने मनुष्यों के जीवन की एक तस्वीर-सी खींच दी है। जन्म, वचपन, प्रवास या कर्म-साधना और मृत्यु—ये चार ही मनुष्य-जीवन के लेल हैं। उदूँ-कवि अकबर ने भी एक ही शेर में वर्तमान शिक्षितों के जीवन को बड़ी ही अच्छी तस्वीर खींची है—“हम क्या कहें अकबर की क्या करेन-नुमायाँ कर गये। बी. ए. हुए, डिपटी बने, पेन्शन मिली, फिर मर गये !”

करि राख्यौ निरधारु यह मैं लखि नारी-ज्ञानु ।

वहै वैदु ओषधि वहै वहई जु रोग-निदानु ॥ ४८८ ॥

अन्वय—मैं नारी-ज्ञानु लखि यह निरधारु करि राख्यौ। वहै वैदु वहै ओषधि जु वहई रोग-निदानु ।

निरधारु = निश्चय । नारी-ज्ञानु = (१) नाड़ी का ज्ञान (२) स्त्री की चेष्टा । वैदु = वैद्य । निदान = उपचार, व्यवस्था ।

मैंने नाड़ी का ज्ञान देखकर (इस नारी की चेष्टा देखकर) यह निश्चय कर रखा है कि वही वैद्य है, वही औषध है, और जो रोग है वही निदान भी है। (प्रेम की बीमारी है, प्रेम ही उपचार है, प्रेम ही वैद्य बनेगा, और दवा भी प्रेम ही की होगी ।)

नोट—इस दोहे में भी विहारी ने वैद्यक के सभी उपकरणों का अच्छा विवरण दिया है। रोग, निदान, औषध और वैद्य—वस ये चार ही वैद्यक के उपकरण—साधन हैं। प्रेम की बीमारी पर कबीरदास कहते हैं—“कविरा वैद तुलाइया पकड़के देखी बाँह । वैद न वेदन जानई कसक कलेजे माह ॥ जाहु वैद घर आपने तेग किया न होय । जिन यह वैदन निर्मई भला करेगा सोय ॥” कैसे अनूठे दोहे हैं !

मरिवै को साहसु कक्के बढ़ै विरह की पीर ।

दौरति है समुहैं ससी सरसिज सुरभि-समीर ॥ ४८९ ॥

अन्वय—विरह की पीर बढ़ै मरिवै को साहसु कक्के ससी सरसिज सुरभि-समीर समुहैं है दौरति ।

मरिवे कौ = मरने का । ककै = करके । समुहें = समुख । ससी = शशि = चन्द्रमा । सरसिज = कमल । मुरभि-समीर = सुगंधित पवन ।

विरह की पीड़ा बढ़ने पर मरने का साहस करके (वह उन्मादिन बाला) चन्द्रमा, कमल और पवन के सम्मुख होकर दौड़ती है । (यद्यपि चन्द्रमा, कमल और पवन शीतलता देनेवाले हैं, तथापि विरह में उसे अत्यन्त तापपूर्ण जान पड़ते हैं, जिससे वह उनके सम्मुख दौड़ती है कि वे मुझे जला डालें ।)

ध्यान आनि ढिग प्रानपति रहति मुदित दिन-राति ।

पलकु कँपति पुलकति पलकु पलकु पसीजति जाति ॥ ४९० ॥

अन्वय—प्रानपति ध्यान ढिग आनि दिन-राति मुदित रहति पलकु कँपति पलकु पुलकति पलकु पसीजति जाति ।

आनि = लाकर । ढिग = निकट । मुदित = प्रसन्न । पलकु = पल + एकु = एक पल या क्षण में ।

(परदेश गये हुए) प्राणपति को ध्यान-द्वारा निकट लाकर — ध्यान में उन्हें अपने निकट बैठा समझकर (वह बाला) दिन-रात प्रसन्न रहती है । क्षण में कँपती है, क्षण में पुलकित होती है, और क्षण में पसीने से तर हो जाती है ।

सकै सताइ न विरहु-तमु निसि-दिन सरस सनेह ।

रहै वहै लागी दृगनु दोप-सिखा-सी देह ॥ ४९१ ॥

अन्वय—विरहु-तमु न सताइ सकै निसि-दिन सनेह सरस, दीप-सिखा-सी देह वहै दृगनु लागी रहै ।

विरह-तम = विरह-रूपी अंधकार । सरस सनेह = (१) प्रेम से शराबोर (२) तेल से भरा हुआ । दीप-सिखा = दिये की लौ ।

विरह-रूपी अंधकार (नायक को) नहीं सता सकता, क्योंकि रात-दिन स्नेह से सरस (तेल से परिपूर्ण) दीपक की लौ के समान (उस नायिका की) देह उसकी आँखों से लगी रहती है — उसकी आँखों में बसी रहती है । (जहाँ दीपक की लौ, वहाँ अंधकार कहाँ !)

नोट—जो लोग हिन्दी में ‘पुरुष-विरह-वर्णन’ का अभाव देखकर दुःखित होते हैं उन्हें यह दोहा याद रखना चाहिए ।

विरह-जरी लखि जीगननु कह्यौ न उहि कै वार ।

अरी आउ भजि भीतरै वरसत आजु अँगार ॥ ४९२ ॥

अन्वय—विरह-जरी जीगननु लखि उहि कै वार न कह्यौ अरी भीतरै भजि आउ, आजु अँगार वरसत ।

विरह-जरी=विरह-ज्वाल से जली हुई । जीगननु=जुगनुओं, भगजोग-नियों । भजि=भागकर । अँगार=आग, चिनगारी ।

विरह से जली हुई उस (नायिका) ने भगजोगनियों को देखकर उन सखियों से न जाने कितनी बार कहा (अर्थात् बहुत बार कहा) कि अरी ! भीतर माग आ, आज (आकाश से) चिनगारी की वर्षा हो रही है (जल जायगी !) ।

नोट—विरह में व्याकुल बाला को वर्षा-ऋतु में दीख पड़नेवाली भगजोगनी चिनगारी के समान दाहक मालूम पड़ती है ।

अरैं परैं न करैं हियौ खरैं जरैं पर जार ।

लावति घोरि गुलाब-सौं मलै मलै घनसार ॥ ४९३ ॥

अन्वय—अरैं न परैं करैं हियौ खरैं जरैं पर जार, मलै घनसार मलैं गुलाब-सौं घोरि लावति ।

अरैं न परैं=अलग नहीं करती । खरैं=अत्यन्त । मलै=मलयज चंदन, श्रीखंड । घनसार=कर्पूर ।

अरी सख्ती ! हठ में मन पढ़, अत्यन्त जले हुए हृदय को क्यों जला रही है ? श्रीखंड और कर्पूर को मिलाकर (और उन्हें) गुलाब-जल में घोलकर (हृदय पर) क्यों लगा रही है ? (इससे तो जबाला और भी बढ़ती है !)

नोट—विरहिणी नायिका को श्रीखंड, कर्पूर, गुलाब-जल आदि परम शीतल पदार्थ भी अत्यन्त तापदायक प्रतीत होते हैं ।

कहे जु बचन चियोगिनो विरह-विकल चिललाइ ।

किए न को अँसुवा सहित सुआ ति बोल सुनाइ ॥ ४९४ ॥

अन्वय—विरह-विकल चियोगिनो जु चिललाइ बचन कहें, सुआ ति बोल सुनाइ को अँसुवा सहित न किए ।

जु = जो । बिललाइ = अंटसंट बककर । सुआ = सुगा । ति = वह ।

विरह से व्याकुल होकर उस वियोगिनी ने जो बिललाकर वचन कह, सुगे ने उस वियोगिनी के ही वचन सुनाकर किसकी आँखों को आँसू-सहित न कर दिया—किसको रुका न दिया ?

नोट—नायिका के पास एक सुगा (तोता) था । उसने नायिका के प्रलापों को सुनते-सुनते याद कर लिया था । वह प्रायः उन प्रलापों को उसी मर्मस्पर्शी स्वर में कहता था, जिन्हें सुनकर लोग करुणावश रो पड़ते थे ।

सीरैं जतननु सिसिर-रितु सहि विरहिनि तन-तापु ।

बसिवे कौं ग्रीष्म दिननु पर्यौ परोसिनि पापु ॥ ४९५ ॥

अन्वय—सिसिर-रितु सीरैं जतननु विरहिनि तन-तापु सहि ग्रीष्म दिननु बसिवे कौं परोसिनि पापु पर्यौ ।

सीरैं जतननु = शीतल उपचारों (खस की टट्टी, बरफ आदि) से । सिसिर-रितु = पूस-माघ । तन-तापु = शरीर की ज्वाला । बसिवे कौं = रहने को । पापु पर्यौ = पाप पड़ गया = अत्यन्त कठिन हो गया, महादुःखदायक हो गया ।

(पड़ोसियों ने अत्यन्त शीतल) शिशिर-ऋतु में शीतल उपचारों से विरहिणी नायिका के शरीर की ज्वाला को (किसी तरह) सहन किया । किन्तु (जलते हुए) ग्रीष्म के दिनों में (उस विरहिणी के पड़ोस में) रहना पड़ोसियों के लिए अत्यन्त कठिन हो गया ।

पिय प्राननु की पाहरू करति जतन अति आपु ।

जाको दुसह दसा पर्यौ सौतिनि हूँ संतापु ॥ ४९६ ॥

अन्वय—पिय प्राननु की पाहरू आपु अति जतन करति । जाको दुसह दसा सौतिनि हूँ संतापु पर्यौ ।

पाहरू = पहरआ, रक्षक । दुसह = असह्य । संताप = पीड़ा ।

(नायिका को) ग्रीतम के प्राणों का रक्षिका समझकर उसकी रक्षा के लिए (सौतें) स्वयं भी अत्यन्त यत्न करती हैं (क्योंकि उसके बिना नायक नहीं जी सकता) । (आह ! उसके दुःख का क्या पूछना !) जिसकी असहनीय अवस्था देखकर (स्वमावतः जलनेवाली) सौतें को भी दुःख होता है ।

आड़े दै आले बसन जाड़े हूँ की राति ।

साहसु ककै सनेह-बस सखी सबै दिग जाति ॥ ४९७ ॥

अन्वय—जाड़े की राति हूँ आले बसन आड़े दै साहसु ककै सनेह-बस सबै सखी दिग जाति ।

आड़े दै = ओट देकर, ओट करके । आले = भीगे हुए, ओड़े । साहस = हिम्मत । सखी सबै = सभी सखियाँ । दिग = निकट ।

जाड़े की (ढंडी) रात में भी, गीले कपड़े की ओट कर, बड़े साहस से, प्रेमवश सभी सखियाँ (उस विरहिणी नायिका के) निकट जाती हैं ! (क्योंकि उसके शरीर में ऐसी प्रचण्ड विरह-ज्वाला है कि आँच सही नहीं जाती !)

मुनत पथिक-मुँह माह-निमि लुवै चलति उहिं गाम ।

विनु वूझै विनु ही कहै जियति विचारी वाम ॥ ४९८ ॥

अन्वय—पथिक-मुँह मुनत माह-निमि उहिं गाम लुवै चलति, विनु वूझै विनु ही कहै विचारी वाम जियति ।

पथिक = राही, यात्री, मुसाफिर । लुवै = लू । उहिं गाम = उसी ग्राम (गाँव) में । विचारी = समझा । जियति = जाती है ।

बटोढी के मुँह से यह मुनतकर कि माघ की रात में भी उस गाँव में लू चलती है, तिना पूछे और तिना कहें-मुने ही (नायक ने) समझ लिया कि नायिका (अभी) जाती है (और निस्संदेह उसीकी विरह-ज्वाला से मेरे गाँव में ऐसी हालत है ।)

इत आवति चलि जाति उत चली छ-मातक हाथ ।

चढ़ी हिंडोरै-सै रहै लगी उसासनु साथ ॥ ४९९ ॥

अन्वय—उसासनु माथ लगी हिंडोरै-चढ़ी-सै रहै, चली छ-मातक हाथ इत आवति उत चलि जाति ।

इत = इधर । उत = उधर । चली = चलायमान या विचलित होकर या झोके में पड़कर = खिचकर । उसासनु = दुःख के कारण निकली हुई आह-भरी लम्बी साँस, जिसे दीर्घ निःश्वास, शोकोच्छ्वास, निसाँस आदि भी कहते हैं ।

(विरह-वश अत्यन्त दुर्बल होने के कारण) लम्बी साँसों के साथ लगी हुई (नायिका मानो) झूले पर चढ़ी-सी रहती है । (झूला झूलने के समान लम्बी साँसों के झोंक से झूलती रहती है) फज्जतः वह (ऊँची साँसों के साथ) विचलित न होकर (कभी) छः-सात हाथ इधर आ जाती है (और कभी छः-सात हाथ) उधर चली जाती है (उसका विरह-जर्जर कृश शरीर उसीकी लम्बी साँस के प्रबल झोंके से दोलायमान हो रहा है ।)

(सो०) विरह सुकाई देह, नेहु कियौ अति डहडहौ ।

जैसैं वरसैं मेह, जरै जवासौ जौ जमै ॥ ५०० ॥

अन्वय—विरह देह सुकाई नेहु अति डहडहौ कियौ, जैसैं मेह वरसैं जवासौ जरै जौ जमै ।

जवासौ=एक प्रकार का पेड़, जो वर्षा होने पर सूख जाता है । जैसे—
अर्क जवास पात विनु भयऊ—तुलसीदास । डहडहौ=हरा-भरा । मेह=मेघ ।
जौ=जीव, जड़, जपा, गुड़हर ।

विरह ने देह को सुखा दिया और प्रेम को अत्यन्त हरा-भरा कर दिया, जैसे
मेह के वरसने से जवासा जल जाता है और गुड़हर पुष्ट होता है ।

षष्ठ शतक

(सो०) आठौ जाम अछेह, दग जु वरत वरसत रहत ।

स्यौं विजुरी ज्यौं मेह, आनि यहाँ विरहा धर्ख्यौ ॥ ५०१ ॥

अन्वय—आठौ जाम अछेह दग जु वरत वरसत रहत, ज्यौं विजुरी स्यौं
मेह विरहा यहाँ आनि धर्ख्यौ ।

जाम=पहर । अछेह=निरंतर, सदा । जु=जो । वरत=जलती है ।
स्यौं=सहित । ज्यौं=जैस, मानो । मेह=मेघ । आनि धर्ख्यौ=ला रक्खा ।

आँठों पहर सदा आँखों जो जलती और बरसती रहती हैं—व्याकुल बनी रहतीं और आँसुओं की झड़ी लगाये रहती हैं, (सो ऐसा मालूम होता है कि) मानो विजली-सहित मेघ को विरह ने यहाँ (आँखों में) ला रखा है ।

नोट—एक उद्दृ-कवि ने भी मेघ और विजली को इकट्ठा कर रखा है—“मुसकुराते जाते हैं कुछ मुँह से फरमाने के बाद, विजलियाँ चमका रहे हैं मेह बरसाने के बाद ।” किन्तु सोरठे की सुष्टुता और सरसता कुछ और ही है ।

विरह-विपति-दिनु परत हीं तजे सुखनु सब अंग ।

रहि अब लौऽब दुखौ भए चलाचली जिय संग ॥ ५०२ ॥

अन्वय—विरह-विपति-दिनु परत हीं सुखनु सब अंग तजे, अब लौऽरहि दुखौ संग जिय चलाचली भए ।

रहि अब लौऽब=रहि अब लौं अब=अबतक रहकर अब । दुखौ=दुःख भी । चलाचली भए=चलने को तैयार हुए ।

विरह-रूपी विपत्ति के दिन आते ही सब सुखों ने मेरे शरीर को छोड़ दिया था । (बचा था केवल दुःख, सो) अबतक रहकर, अब दुःख भी जीवन के साथ-हीं-साथ चलने की तैयारी करने लगा ।

नोट—एक उद्दृ-कवि ने विपत्ति के दिन के विषय में कहा है—“कौन होता है बुरे वक्त की हालत का शरीक । मरते दम आँख को देखा है कि फिर जाती है ॥”

नये विरह बढ़ती विथा खरी चिकल जिय बाल ।

चिलखी देखि परोसिन्यौ हरम्बि हँसी तिहिं काल ॥ ५०३ ॥

अन्वय—नये विरह बढ़ती विथा बाल जिय खरी चिकल, परोसिन्यौ चिलखी देखि तिहिं काल हरम्बि हँसी ।

विथा=व्यथा, पीड़ा । चिलखी=व्याकुल हुई ।

नये वियोग की बढ़ती हुई व्यथा से उम बाला का हृदय अत्यन्त विकल था । किन्तु इनने में पड़ोसिन को भी व्याकुल देख (यह समझकर कि इसे भी मेरे पति से गुप्त प्रेम था, अतएव अब यह भा दुःख मोगेरा, इर्पा से वह) तत्काल ही हरित होकर हँसने लगा ।

छतौ नेहु कागद-हियैं भई लखाइ न टाँकु ।

विरह तचैं उघन्यौ सु अब सेहुँड़ कै सो आँकु ॥ ५०४ ॥

अन्वय— कागद-हियैं नेहु छतौ टाँकु लखाइ न भई, सु अब सेहुँड़ कै आँकु-सो विरह तचैं उघर्यौ ।

छतौ=अछतौ=था । लखाइ न भई=दीख नहीं पड़ी । टाँकु=लिखावट । तचैं=तपाये जाने पर । सेहुँड़ कै सो आँकु=सेहुँड़ के दूध से लिखे गये अक्षर के समान, जो कि आग पर तपाये विना दीख नहीं पड़ते ।

कागज-रूपी हृदय पर प्रेम (लिखा हुआ) था, किन्तु उसकी लिखावट दिखाई नहीं पड़ती थी, सो अब सेहुँड़ के दूध से लिखे हुए अक्षर के समान वह विरह (रूपी आग) से तपाये जाने पर (स्पष्ट) प्रकट हो गया ।

करके मीड़े कुसुम लौं गई विरह कुम्हलाइ ।

सदा समीपिनि सखिनु हूँ नीठि पिछानी जाइ ॥ ५०५ ॥

अन्वय— करके मीड़े कुसुम लौं विरह कुम्हलाइ गई, सदा समीपिनि सखिनु हूँ नीठि जाइ पिछानी ।

मीड़े=मसले या मीजे हुए । कुसुम=कोमल फूल । समीपिनि=निकट रहनेवाली । नीठि=मुश्किल से । पिछानी=पहचानी ।

हाथ से मसले हुए फूल के समान विरह से कुम्हला गई है । सदा निकट रहनेवाली सखियों से भी मुश्किल से पहचानी जाती है । (अत्यन्त दुर्बलता के कारण चिरसंगिनी सांखायाँ भी नहीं पहचानतीं !)

लाल तुम्हारे विरह की अगिनि अनूप अपार ।

सरसै बरसै नीर हूँ झर हूँ मिटै न झार ॥ ५०६ ॥

अन्वय— लाल तुम्हारे विरह की अगिनि भनूर अपार । नीर बरसै हूँ सरसै झर हूँ झार न मिटै ।

अनूप=जिसकी उपमा (वरावरी) न हो, अनुपम । अपार=जिसका पार (अन्त) न हो । सरसै=सरसता है, प्रज्वलित होता है । झर=झड़ी लगना । झार=ज्वाला ।

हे लाल ! तुम्हारे विरह की आग अनुपम और अपरम्पार है । पानी बरसने पर (वर्षा होने पर) भी प्रज्वलित होती है, और झड़ी लगने पर (आँसुओं के गिरने पर) भी उसकी ज्वाला नहीं मिटती ।

नोट — विरहिणी वेचारी को वर्षा से अधिक कष्ट होता है ।

याकैं उर औरै कछू लगी विरह की लाइ ।

पजरै नीर गुलाब कैं पिय की बात बुझाइ ॥ ५०७ ॥

अन्वय—याकैं उर कछू औरै विरह की काइ लगी, गुलाब कैं नीर पजरै, पिय की बात बुझाइ ।

औरै कछू = कुछ विचित्र ही । लाइ = आग । पजरै = प्रज्वलित होना । बात = (१) बचन (२) हवा, अथवा मुँह की सुरंगित साँस ।

इसके हृदय में कुछ विचित्र विरह की आग लग गई है, जो गुलाब के पानी से तो प्रज्वलित हो जाता है, और प्रान्तम की 'बात' से बुझ जाता है ।

नोट—पानी से जलना और हवा से बुझ जाना निस्संदेह विचित्रता है ।

मरी डरी कि टरी विथा कहा खरी चलि चाहि ।

रही कराहि-कराहि अति अब मुँहु आहि न आहि ॥ ५०८ ॥

अन्वय—कहा खरी चलि चाहि मरी डरी कि विथा टरी, अति कराहि-कराहि रही अब मुँहु आहि न आहि ।

खरी = खड़ी । चाहि = देखो । आहि = आह । न आहि = नहीं है ।

(हे सम्ही !) क्या खड़ी हो, चलकर देखो तो कि वह मर गई है कि डर गई है कि उसकी पीड़ा टल गई (जो वह चुप हो रही है) । अब तक तो वह अत्यन्त कराह रही थी, किन्तु अब मुख में आह भी नहीं है—आह भी नहीं सुन पड़ती है ।

कहा भयौ जो बाढ़ुरे मो मनु तो मनु साथ ।

उड़ी जाउ कितहूँ गुड़ी तऊ उड़ाइक हाथ ॥ ५०९ ॥

अन्वय—जो बाढ़ुरे कहा भयौ मो मनु तो मनु साथ । गुड़ी कितहूँ उड़ी जाउ तऊ उड़ाइक हाथ ।

बीछुरे=बिछुड़ गये । मो=मेरा । तो=तेरा । कितहूँ=कहीं भी ।
गुड़ी=गुड़ी, पतंग । तऊ=तो भी । उड़ाइक=उड़ानेवाला, खेलाड़ी ।

यदि बिछुड़ ही गये, तो क्या हुआ ? मेरा मन तो तुम्हारे मन के साथ है ।
गुड़ी कहीं भी उड़कर जाती है, तो भी वह उड़ानेवाले (खेलाड़ी) ही के
स्थाथ में रहती है—जब उड़ानेवाला चाहता है, उसकी डोर खींचकर निकट ले
आता है । (उसी प्रकार तुम्हें भी मैं, जब चाहूँगी, अपनी प्रेम-डोर से अपनी
ओर खींच लूँगी ।)

नोट—“कर छुटकाये जात हो, निवल जानि कै मोहि ।

हिरदै से जब जाहुगे मरद बखानौं तोहि ॥”—सूरदास

जब जब वै सुधि कीजियै तब सब ही सुधि जाहिं ।

आँखिनु आँखि लगी रहै आँखैं लागति नाहिं ॥ ५१० ॥

अन्वय—जब जब वै सुधि कीजियै तब सब ही सुधि जाहिं, आँखि
आँखिनु लगी रहै, आँखैं नाहिं लागति ।

आँखैं लागति नाहिं=आँखैं नहीं लगतीं=नोंद नहीं आती ।

जब-जब उन बातों की याद आती है, तब-तब सर्वा सुधि जाती रहती
है—विसर जाती है । उनकी आँखें मेरी आँखों से लगा रहती हैं, इसलिए
मेरी आँखों भी नहीं लगतीं—मुझे नोंद भी नहीं आती ।

नोट—“तनक काँकरी के परै होत महा वेचैन ।

वे वपुरे कैसे जियैं जिन नैनन में नैन ॥”

कौन सुनै कासौं कहौं सुरति बिसारी नाह ।

बदावदी ज्यौ लेत हैं ए बदरा बदराह ॥ ५११ ॥

अन्वय—कौन सुनै कासौं कहौं नाह सुरति बिसारी । ए बदराह बदरा
बदावदी ज्यौ लेत हैं ।

सुरति=स्मृति, याद, सुधि । बदावदी=शर्त बाँधकर । ज्यौ लेत हैं=जान
मारते हैं । बदरा=बादल । बदराह=कुमारी, बदमाश ।

कौन सुनता है, किससे कहूँ । प्रीतम ने सुधि भुजा दी । ये बदमाश बादल

बाजी लगाकर जान ले रहे हैं—शर्त लगाकर प्राण लेने पर तुले हैं (इनसे रक्षा कौन करे ?)

और भाँति भएऽव ए चौसरु चंदनु चंदु ।

पति विनु अति पारतु विपति मारतु मारुत मंदु ॥ ५१२ ॥

अन्वय—चौसरु चंदनु चंदु ऽव ए और भाँति मए । पति विनु अति विपति पारतु मंदु मारुत मारतु ।

भएऽव=भये अब, अब हुए । चौसरु=चार लड़ियों की मोती-माला । चंदनु=श्रीखण्ड । विपति पारतु=दुःख देते हैं । मारुत=हवा ।

मोती की चौलरी, चंदन और चन्द्रमा, ये सब अब और ही भाँति के हो गये—कुछ विचित्र-से हो गये । प्रीतम के विना ये सब अत्यन्त दुःख देते हैं और, मंद-मंद हवा तो मारे ही ढालती है ।

नैकु न झुरसी-विरह-भर नेह-लता कुम्हिलाति ।

नित-नित होति हरी-हरी खरी झालरति जाति ॥ ५१३ ॥

अन्वय—नेह-लता विरह-भर-झुरसी नैकु न कुम्हिलाति । नित-नित हरी-हरी होति खरी झालरति जाति ।

नैकु = जरा, तनिक । झुरसी = झुलसकर । झर = ज्वाला, ल्पट । खरी = अधिक, खूब । झालरति = फैलती या सघन पञ्चों से भरी जाती है ।

प्रेम-रूपी लतिका विरह की ज्वाला से झुलसकर तनिक मी नहीं कुम्हिलाती, वरन् नित्य-प्रति हरी-भरी होती और खूब फूलती-फैलती जाती है ।

यह विनमतु नगु राखिकै जगत बड़ौ जसु लेहु ।

जरो विषम जुर ज्याइयैं आइ सुदरसनु देहु ॥ ५१४ ॥

अन्वय—यह विनमतु नगु राखिकै जगत बड़ौ जसु लेहु, विषम जुर जरी आह सुदरसनु देहु ज्याइयैं ।

नगु=रत । विषम जुर=(१) कठिन ज्वाला (२) विषम ज्वर, तपेदिक की बीमारी । सुदरसनु=(१) सुन्दर दर्शन (२) सुदर्शन का अर्क ।

इस नष्ट होते हुए रत की रक्षा कर (अनमोल नायिका को मरने से

बचाकर) संसार में खूब यश लूटो—यह कठिन विरह-ज्वाला (विषम-ज्वर) में जल रही है, अतः आकर सुन्दर दर्शन (सुदर्शन-रस) देकर इसे जिला दीजिए ।

नोट—वैद्यक के अनुसार सुदर्शन-रस से विषम-ज्वर छूटता है ।

नित संसौ हंसौ बचतु मनौ सु इहि अनुमानु ।

विरह-अगिनि लपटनु सकतु झपटि न मीचु-सचानु ॥ ५१५ ॥

अन्वय—हंसौ बचतु नित संसौ सु इहि अनुमान मनौ विरह-अगिनि-लपटनु मीचु-सचानु न झपटि सकतु ।

संसौ = संशय = संदेह । हंसौ = (१) प्राण को (२) हंस को । मीचु = मृत्यु । सचानु = श्येन = 'बाज' नामक शिकारी पक्षी ।

उसके प्राण (रूपी-हंस) को बचते देख नित्य संदेह होता है (कि वह कैसे बचा ?) यह अनुमान होता है कि मानो विरह-रूपी आग की लपटों के कारण मृत्यु-रूपी बाज उसपर झपट नहीं सकता ।

करी विरह ऐसी तऊ गैल न छाड़तु नीचु ।

दीनै हूँ चसमा चखनु चाहै लहै न मीचु ॥ ५१६ ॥

अन्वय—विरह ऐसा करी तऊ नीचु मीचु गैल न छाड़तु, चखनु चसमा दीनै हूँ चाहै न लहै ।

गैल छाड़तु = (गैल = राह) पीछा नहीं छोड़ती । दीनै हूँ चसमा = ऐनक देने (लगाने) पर भी । चखनु = आँखों पर । नीचु मीचु = निगोड़ी मौत ।

विरह ने उसे ऐसी (दुबली-पतली) बना दिया है, तो भी नीच मृत्यु उसका पीछा नहीं छोड़ती । (किन्तु क्या करे बेचारी ?) आँखों पर चसमा चढ़ाकर भी (उसे छँड़ना निकालना) चाहती है, (तो भी) नहीं पाती ।

नोट—“नातवानी ने बचाई जान मेरी हिज्र में ।

कोने-कोने दूँढ़ती फिरती कजा थी मैं न था ॥”—जफर ।

मरनु भलौ वह विरह तैं यह निहचय करि जोइ ।

मरनु मिटै दुखु एक कौ विरह दुहूँ दुखु होइ ॥ ५१७ ॥

अन्वय—यह निहवय करि जोइ विरह तैं बह मरनु भलौ, मरनु एक कौ दुखु मिटै, विरह दुहूँ दुखु होइ ।

मरनु = मृत्यु । बह = बल्कि । जोइ = देखो ।

यह निश्चय करके देखो कि विरह से बल्कि मृत्यु ही अच्छी है, क्योंकि मृत्यु से तो (कम-से-कम) एक आदमी का दुःख छूट जाता है, किन्तु विरह में (प्रेमी-प्रेमिका) दोनों को दुःख होता है ।

विकसित नवमल्ली-कुसुम विकसति परिमल पाइ ।

परसि पजारति विराह-हिय वरसि रहे की बाइ ॥ ५१८ ॥

अन्वय—नवमल्ली विकसित कुसुम पाइ परिमल विकसति । वरसि रहे की बाइ विराह-हिय परसि पजारति ।

विकसित = खिलते हुए । नवमल्ली = नई चमेली । कुसुम = कोमल फूल । परिमल = सुगंध । परसि = स्पर्श कर । पजारति = प्रज्वलित कर देती है । वरसि रहे की = वरसते समय की । बाइ = बायु = हवा ।

जो नई चमेली के खिलते हुए फूल की सुगन्ध पाकर निकलती है, वह वर्षा होते समय की हवा, विरही के हृदय को स्पर्श कर प्रज्वलित कर देती है ।

औंधाईं सीसी सुलखि विरह वरनि विललात ।

विचहीं सूखि गुलाब गौ छीटौं छुई न गात ॥ ५१९ ॥

अन्वय—विरह बरनि विललात सुलांब सीसी औंधाईं, गुलाब विचहीं सूखि गौ, छीटौं गात न छुई ।

औंधाईं = उलट (उड़ेल) दी । वरनि = जलती हुई । विललात = रोती-कलपती है, व्याकुल हो बक-भक करती है । छीटौं = एक छीया भी । गात = देह ।

विरह से जलती और विललाती हुई देखकर (सखियों ने नायिका के शरीर पर गुलाब-जल का) शारीर उलट दा, (किन्तु विरह की धघकर्ता आच के कारण) गुलाब-जल बाच हा में सूख गया, (उसका) एक छीटा भा (विरहिणी के) शरीर को स्पर्श न कर सका ।

हैं ही बौरी विरह-बस के बौरौ सब गाँउ ।

कहा जानि ए कहत हैं ससिहिं सोत-कर नाँउ ॥ ५२० ॥

अन्वय— विरह-बस हैं ही बौरी के सब गाँउ बौरौ, कहा जानि ए ससिहिं सीत-कर नाँउ कहत हैं ।

हैं ही = मैं ही । बौरी = पगली । ससिहिं = चन्द्रमा का । सीत-कर = शीतल किरणोवाला, शीतरश्मि, चन्द्रमा । नाँउ = नाम ।

विरह के कारण मैं ही पगली हो गई हूँ, या सारा गाँव ही पागल हो गया है । न मालूम क्या जानकर ये लोग (ऐसे झुजसानेवाके) चन्द्रमा का नाम शीत-कर कहते हैं ।

सोवत-जागत सपन-बस रस रिस चैन कुचैन ।

सुरति स्यामघन की सुरति विसरै हूँ विसरै न ॥ ५२१ ॥

अन्वय— सोवत-जागत सपन-बस रस रिस चैन कुचैन, स्यामघन की सुरति सुरति विसरै हूँ न विसरै ।

रस = प्रेम । रिस = कोध । सुरति = सु + रति = सुन्दर प्रीति । सुरति = स्मृति, याद । विसरै हूँ = विस्मृत करने या भुलाने से भी ।

सोते, जागते और सपने में, स्नेह, कोध, सुख और दुःख में—सभी अवस्थाओं और सभी मात्रों में—बनश्याम (श्रीकृष्ण) के प्रेम की स्मृति भुलाये नहीं भूलती ।

(सो०) कौड़ा आँसू-वूँद, कसि साँकर बरुनी सजल ।

कीन्हे बदन निमूँद, हग-मलिंग डारे रहत ॥ ५२२ ॥

अन्वय— आँसू-वूँद कौड़ा, सजल बरुनी साँकर कसि, बदन निमूँद कीन्हे, हग-मलिंग डारे रहत ।

कौड़ा = कौड़ियों की माला । साँकर = जंजीर । बरुनी = पपनी, पलक के बाल । सजल = अश्रुयुक्त । बदन = मुख । निमूँद = खुला हुआ । मलिंग = फकीर । डारे रहत = पढ़े रहते हैं ।

आँसुओं की दृँढ़ों को कौड़ियों की माला और सजल बरुनी को (अपनी

कमर की) जंजीर बनाकर सदा मुख को खोले हुए (उस विरहिणी नायिका के)
नेत्र-रूपी फकीर पढ़े रहते हैं—डेरा डाले रहते हैं ।

नोट—‘मलिंग’ फकीर हाथों में कौड़ियों की माला रखते और कपर में
लोहे की जंजीर पहनते हैं तथा सदा मुख खोले कुछ-न-कुछ जपते रहते हैं ।
विरहिणी के आँसू टपकते और टकटकी लगाये हुए नेत्रों से यहाँ रूपक वाँधा
गया है । ‘देव’ कवि ने शायद इसी सोरठे के आधार पर यह कल्पना की है—
“बरनी बघावर में गृदरी पलक दोऊ कोये राते बसन भगोहैं भेख रखियाँ ।
बूझी जल ही में दिन जामनी रहति भौहैं धूम सिर छायो चिरहानल चिलखियाँ ॥
आँसू ज्यों फटिक माल लाल डोरे सेल्ही सजि भई है अकेली तजि चेली सँग
सखियाँ । दीजिये दरस ‘देव’ लीजिये सँजोगनि कै जोगिन है वैठी हैं विजोगिन
की श्रेष्ठियाँ ॥”

जिहिं निदाघ-दुपहर रहै भई माह की राति ।

तिहिं उसीर की रावटी खरी आवटी जाति ॥ ५२३ ॥

अन्वय—जिहिं निदाघ-दुपहर माह की राति भई रहै, तिहिं उसीर की
रावटी खरी आवटी जाति ।

निदाघ = ग्रीष्म, जेठ-बैसाख । माह = माघ । उसीर = खस । रावटी =
छोलदारी । खरी = अत्यन्त । आवटी जाति = आँटी जाती या संतप्त हो रही है ।

जिम (रावटी) में ग्रीष्म की (जलती हुई) दुपहरी भी माघ की
(अत्यन्त शीतल) रात-मी हुई रहती है, उस खस की रावटी में मी (वह
विरहिणी नायिका विरह-ज्वाला से) अत्यन्त संतप्त हो रही है ।

तच्यौ आँच अब विरह की रह्यो प्रेमरस भीजि ।

नैननु कै मग जल बहै हियो पसीजि-पसीजि ॥ ५२४ ॥

अन्वय—प्रेमरस भीजि रह्यो अब विरह की आँच तच्यौ । हियों पसीजि-
पसीजि नैननु कै मग जल बहै ।

तच्यौ = तामा जाना, जलना । विरह = वियोग । प्रेमरस = (१) प्रेम का
रस (२) प्रेम का जल ।

(नायिका का हृदय) प्रेम के रस से भीजा हुआ था, और अब विरह की

आँच में जल रहा है । (इसी कारण) हृदय पसीज-पसीजकर नेत्र के रास्ते से जल बह रहा है ।

नोट यह बड़ा सुन्दर रूपक है । हृदय (प्रेम-रूपी) पानी से भरा वर्तन है, विरह आँच है, आँखें नली हैं, आँसू अर्क है । अर्क चुलाने के लिए एक वर्तन में दवाइयाँ और पानी रख देते हैं । नीचे से आँच लगाते हैं । वर्तन में लगी हुई नलों द्वारा अर्क चूता है । विरहिणी मानो साक्षात् रसायनशाला है ।

स्याम सुरति करि राधिका तकति तरनिजा-तीरु ।

अँसुवनु करति तरौंस कौ खिनकु खरौंहौं नीरु ॥ ५२५ ॥

अन्वय—राधिका स्याम सुरति करि तरनिजा-तीरु तकति, अँसुवनु खिनकु तरौंस कौ नीरु खरौंहौं करति ।

सुरति = याद । तरनिजा = तरणि + जा = सूर्य की पुत्री, यमुना । तरौंस = तलछट । खिनकु = एक क्षण । खरौंहौं = खारा, नमकीन ।

श्रीश्यामसुन्दर की याद कर (विरहिणी) राधिका (श्यामला) यमुना के तीर को देखती हैं और, आँसुओं (के प्रवाह) से एक क्षण में ही उसके गर्भस्थ जल को मी नमकीन बना देती है—(उनके नमकीन आँसुओं के मिलने से यमुना का तलछट—निचली तह—का पानी मी नमकीन हो जाता है ।)

गोपिनु कै अँसुवनु भरी सदा असोस अपार ।

डगर-डगर नै है रही बगर-बगर कै बार ॥ ५२६ ॥

अन्वय—गोपिनु क अँसुवनु मरी सदा असोस अपार नै बगर-बगर कै बार डगर-डगर है रही ।

असोस = अशोष्य, जो कभी न सूखे । अपार = अगाध, अलंघनीय । डगर = गली । नै = नदी । बगर = घर । बार = द्वार, दरखाजा ।

गोपियों के आँसुओं से मरी, कमी न सूखनेवाली और अपार नदियाँ (ब्रजमंडल के) बर-बर के द्वार पर और गली-गली में (प्रवाहित) हो रही हैं—(कृष्ण के विरह में गोपियाँ इतना रोती हैं कि ब्रज की गली-गली में आँसुओं की नदियाँ बहती हैं ।)

नोट—सूरदासजी ने भी गोपियों के आँसुओं की यमुना बहाई है—“जब

ते पनिघट आड़ सखीरी वा यमुना के तीर । भरि भरि जमुना उमड़ि चलत है
इन नैनन के नीर ॥ इन नैनन के नीर सखीरी सेज भई घर नाव । चाहत हौं
ताहीपै चढ़िकै हरिजूके ढिग जाव ॥”

बन-बाटनु पिक-बटपरा तकि विरहिन मतु मैन ।

कुहौ-कुहौ कहि-कहि उठै करि-करि राते नैन ॥ ५२७ ॥

अन्वय— बन-बाटनु रिक-बटपरा विरहिन तकि मैन मतु नैन राते करि-
करि कुहौ-कुहौ कहि-कहि उठै ।

बन-बाटनु = रास्ते में । पिक = कोयल । बटपरा = बटमार, लुटेरा, डाकू । मैन-
मतु = कामदेव की सजाइ से । कुहौ-कुहौ = (१) कुहू-कुहू (२) मारो-
मारो । राते = रक्त = लाल ।

बन के रास्तों में कोयल-रूपी डाकू विरहिणियों को देख कामदेव की
सम्मति सं आँखें लाल-लाल कर ‘कुहौ-कुहौ’ (मारो-मारो) कह उठता है ।

दिसि-दिसि कुसुमित देखियत उपवन विपिन समाज ।

मनो वियोगिनु कौं कियों सर-पंजर रतिराज ॥ ५२८ ॥

अन्वय— दिसि-दिसि उपवन विपिन समाज कुसुमित देखियत, मनो
वियोगिनु कौं रतिराज सर-पंजर कियों ।

कुसुमित = फूले हुए । उपवन = फुलबारी । विपिन = जंगल । समाज =
समूह । सर-पंजर = बाणों का पिंजड़ा । रतिराज = कामदेव ।

प्रथेक दिशा में फुलबारियों और जंगलों के समूह फूले हुए दीम्ब पड़ते हैं,
मानो वियोगिनियों के लिए कामदेव ने बाणों का पिंजड़ा तैयार किया है—(ये
चारों ओर के फूल विरहिणियों के हृदय को विद्रोण करने में बाणों का काम
देते हैं) ।

नोट— कामदेव के बाण पुष्प के होते हैं । इसलिए चारों ओर खिले हुए
पुष्प-पुज्ज को कामदेव का शर-पञ्जर कहा है । जैसे बाणों के पिंजड़े में केदी
जिधर देखेगा उधर ही चोखी-तीखी नोंके दाख पड़ेंगी, वैसे ही चारों ओर फूले
हुए फूल विरहिणी को दृष्टि में चुभते हैं—दिल में खटकते हैं ।

ही औरै-सी है गई टरी औधि कैं नाम ।

दूजै कै डारी खरी बौरी बौरै आम ॥ ५२९ ॥

अन्वय—टरी औधि कै नाम ही औरै-सी है गई, दूजै बौरै आम खरी बौरी कै डारी ।

ही=हृदय । औधि=वादा, आने की तारीख । दूजै=दूसरे । खरी=अधिक, पूरी । बौरी=पगली । बौरै=मँजराये हुए ।

(एक तो) टली हुई अवधि के नाम से ही (यह सुनते ही कि प्रीतम अपने किये हुए वादे पर नहीं आयेंगे) उसका हृदय कुछ भौंह ही प्रकार का (उन्मना) हो गया था, दूसरे इन मँजराये हुए आमों ने उसे पूरी पगली बना डाला—(आम की मंजरी देखते ही वह एकदम पगली हो गई) ।

भौ यह ऐसौई समौ जहाँ सुखद दुखु देत ।

चैत-चाँद की चाँदनी डारति किए अचेत ॥ ५२० ॥

अन्वय—यह ऐसौई समौ भौ जहाँ सुखद दुखु देत, चैत-चाँद की चाँदनी अचेत किए डारति ।

भौ=हो गया । ऐसौई=ऐसा ही । समौ=समय, जमाना । अचेत किए डारत=बेहोश किये डालती है ।

यह ऐसा ही (बुरा) समय आ गया है कि जहाँ सुख देनेवाला भौ दुःख ही देता है । (देखो न, सखी !) चैत के चन्द्रमा की (सुखद) चाँदनी भौ (इस विरहावस्था में) बेहोश किये डालती है ।

नोट—“अफ़सुर्दा दिल के बास्ते कथा चाँदनी का लुत्फ ।

लिपटा पड़ा है मुर्दा-सा मानो कफन के साथ ॥”

गिनती गनिवे तैं रहे छत हूँ अछत समान ।

अब अलि ए तिथि औम लौं परै रहै तन प्रान ॥ ५२१ ॥

अन्वय—गिनती गनिवे तैं रहे छत हूँ अछत समान । अजि अब ए प्रान औम तिथि लौं तन परै रहै ।

छत=रहना । अछत=न रहना । अलि=सखी । औम तिथि=अवम तिथि=क्षय-तिथि—चन्द्रमा के अनुसार महीने की गिनती करने से बीच-बीच

मैं कितनी तिथियों की हानि हो जाती है, और लुप्त होने पर भी वे पत्रा में लिखी जाती हैं, पर उनकी गणना नहीं होती।

(मेरे प्राण) गिनती मैं गिने जाने से भी रहे—अब कोई इनकी (जीवित में) गिनती भी नहीं करता। रहते हुए भी न रहने के समान हो रहे हैं। हे सखी, अब ये मेरे प्राण क्षय-तिथि के समान शरीर में पड़े रहते हैं।

जाति मरी विद्वुरति घरी जल-सफरी की रीति ।

खिन-खिन होति खरी-खरी अरी जरी यह प्राति ॥ ५३२ ॥

अन्वय—जल-सफरी की रीति घरी विद्वुरति मरी जाति, अरी यह जरी प्रीति खिन-खिन खरी-खरी होति ।

सफरी = मछली । रीति = भाँति, समान । खरी-खरी होति = बढ़ती जाती है । जरी = जली हुई, मुँहजली । खिन-खिन = क्षण-क्षण ।

जल की मढ़लां के समान एक घड़ी भी (प्रियतम से) विद्वुड़ने पर मरी जाती हूँ । अरी सखी ! तो भी यह सुँहजली प्राति ऐसी है कि क्षण-क्षण बढ़ती ही जाती है ।

मार सु मार करी खरी मरी मरीहिं न मारि ।

सौंचि गुलाब घरो-घरी अरी वरीहिं न बारि ॥ ५३३ ॥

अन्वय—मार खरी सु मार करी, मरी मरीहिं न मारि, अरी घरी-घरी गुलाब सौंचि वरीहिं न बारि ।

मार = कामदेव । सु मार = गहरी मार या चोट । खरी = अत्यन्त, खूब । मरी = पर गई । मरीहिं = मरी हुई को । मारि = मारो । वरीहिं = जली हुई को । बारि = जलाओ ।

कामदेव ने तो खूब ही गहरी मार मारी है, (जिससे) मैं मर गई हूँ, (अब किर) मरी हुई को मत मार। अरी सखी ! घड़ी-घड़ी गुलाब-जल छिड़ककर, (विरह में) जली हुई को मत जला ।

रह्यौ येंचि अंत न लह्यौ अवधि दुसासन वीरु ।

आली वाढ़तु विरहु ज्यौं पंचाली कौ चीरु ॥ ५३४ ॥

अन्वय—अवधि दुमासन बीरुं एुचि रह्यौ अंत न लह्यौ, आली विरहु
पंचाली कौं चीरुं ज्यों बाढ़तु ।

एंचि = खींचना । अंत न लह्यौ = अन्त (छोर) न पाया, पार न पाया ।
अवधि = बादे का दिन, निश्चित तिथि । आली = सखी । पंचाली = द्रौपदी ।

(प्रीतम के आने का) निश्चित समय-रूपी दुःशासन-चीर (विरह-रूपी
दीर्घ चीर को) खींचना ही रह गया, किन्तु पार न पाया । अरी सखी ! यह
विरह द्रौपदी के चीर के समान बढ़ रहा है ।

नोट—जिस प्रकार द्रौपदी के चीर को दुःशासन खींचता रह गया और
छोर न पा सका, उसी प्रकार प्रीतम के आने का निश्चित दिन प्रिया के विरह
को शांत न कर सका । अर्थात् प्रीतम के आने का दिन ज्यों-ज्यों निकट आता
है, त्यों-त्यों विरहिणी की व्यथा बढ़ रही है ।

विरह-विथा-जल परस बिन बसियतु मो मन-ताल ।

कछु जानत जलथंभ-विधि दुरजोधन लौं लाल ॥ ५३५ ॥

अन्वय विरह-विथा-जल परस बिन मो मन-ताल बसियतु । लाल
दुरजोधन लौं कछु जलथंभ-विधि जानत ।

विथा = व्यथा, दुःख । परस = स्वर्श । ताल = तालाब । लौं = समान ।

विरह के दुःख-रूपी जल के स्वर्श बिना मेरे मन-रूपी तालाब में बसते
हो—यद्यपि सदा मैं तुम्हें हृदय में धारण किये रहती हूँ, तथापि मेरी हादिक
व्यथा का तुम अनुभव नहीं करते । (सो मालूम होता है कि) हे लाल !
तुम दुर्योधन के समान कुछ जल-स्तम्भन-विधि जानते हो ।

नोट—दुर्योधन जलस्तम्भन-विधि जानता था । अगाध जल में बुसकर बैठ
रहता था, किन्तु उसपर जल का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता था ।

सोवत सपनै स्यामघनु हिलि-मिलि हरत वियोगु ।

तबहीं टरि कित हूँ गई नींदौ नींदनु जोगु ॥ ५३६ ॥

अन्वय—सोवत सपनै स्यामघनु हिलि-मिलि वियोगु हरत, तबहीं नींदनु
जोगु नींदौ कित हूँ टरि गई ।

नींदौ = नींद भी । नींदन जोगु = निन्दा करने के योग्य, निन्दनीय ।

सोते समय स्वभाव में श्रीकृष्ण हिल-मिलकर विरह हर रहे थे—विछोह के दुःख का नाश कर रहे थे । उमी समय निंदनीय नींद भी न मालूम कड़ाँ टल गई ।

पिय-विछुरन कौ दुसह दुखु हरपु जात प्यौसार ।

दुरजोधन-लौं देखियति तजति प्रान इहि बार ॥ ५३७ ॥

अन्वय—पिय-विछुरन कौ दुसह दुखु हापु प्यौसार जात, इहि बार दुरजोधन-लौं प्रान तजति देखियति ।

प्यौसार = नैहर, मायका, पीहर । लौं = समान ।

यद्यपि प्रीतम से बिछुड़ने का अस्त्वा दुःख है, तथापि प्रसन्न होकर नैहर जाती है । (इस अत्यन्त दुःख और अत्यन्त सुख के सम्मिश्रण से) यह आला दुर्योधन के समान प्राण त्यागती हुई दीख पड़ती है—(मालूम होता है कि इस आत्यान्तक सुख-दुःख के झंगले में इनके प्राण डी निकल जायेंगे ।)

नोट दुर्योधन को शाय था कि जब उसे समान भाव से सुख और दुःख होगा, तभी वह मरेगा । ऐसा ही हुआ भी । दुर्योधन के आदेशानुसार अश्व-थामा पाण्डवों के भ्रम से उनके पुत्रों के सिर काट लाया । पहले शत्रुघ्न-जनित अतिशय आनन्द हुआ, फिर बिर पहचानने पर समूल वंशनाश जानकर घोर दुःख ।

कागद पर लिखत न बनत कहत सँदेसु लजात ।

कहिं सबु तेरौ हियौ मेरे हिय की बात ॥ ५३८ ॥

अन्वय—कागद पर लिखत न बनत, सँदेसु कहत लजात, तेरौ हियौ मेरे हिय की सबु बात कहिहै ।

कागद = कागज हियौ = हृदय ।

कागज पर लिखते नहीं बनता—लिखा नहीं जाता, और (जवानी) संदेश कहते लज्जा आती है । वस तुम्हारा हृदय ही मेरे हृदय की सारी बातें (तुमसे) कहेगा ।

नोट—श्रीरामचन्द्रजी ने सीताजी के पास अत्यन्त हृदयग्राही संदेश भेजा था । त्रुलसीदास की मर्मस्वर्णी भाषा में उसे पढ़िए—

तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा, जानत प्रिया एक मन मोरा ।
सो मन रहत सदा तोहि पाहीं, जानु प्रीति-रस इतनिय माहीं ॥

विरह-विकल बिनु ही लिखी पाती दई पठाइ ।
आँक-बिहूनीयौ सुचित सूनै बाँचत जाइ ॥ ५३९ ॥

अन्वय—विरह-विकल बिनु लिखी ही पाती पठाइ दई । आँक-बिहूनीयौ
सुचित सूनै बाँचत जाइ ।

आँक-बिहूनीयौ = अक्षर-विहीन होने पर भी । सुचित = स्थिरचित होकर,
अच्छी तरह से । सूनै = खाली-ही-खाली । बाँचत जाइ = पढ़ता जाता है ।

विरह व्यथिता (बाला ने) बिना लिखे ही (सादे कागज के रूप में)
चिट्ठी पठा दी । (और इधर प्रेम-मत्त प्रीतम) उस अक्षर-रहित (चिट्ठा) को
भी अच्छी तरह से खाली-ही-खाली पढ़ता जाता है ।

रँगराती रातैं हियैं प्रियतम लिखी बनाइ ।

पाती काती विरह की छाती रही लगाइ ॥ ५४० ॥

अन्वय—रातैं हियैं प्रियतम रँगराती बनाइ लिखी, पाती विरह की काती
छाती लगाइ रही ।

रँगराती = लाल रंग में रँगी । रातैं हियैं = प्रेमपूर्ण (अनुरक्त) हृदय ।
पाती = चिट्ठी । काती = छोटी तेज तलवार, कत्ती ।

प्रेमपूर्ण हृदय से प्रीतम ने लाल रंग में (लाल स्याही से) रच-रचकर
चिट्ठी लिखी, और विरह को काटनेवाली तलवार समझकर उस चिट्ठी को
(प्रियतमा) हृदय से लगाये रही ।

तर झरसी ऊपर गरी कज्जल जल छिरकाइ ।

पिय पाती बिनही लिखी बाँची विरह-बलाइ ॥ ५४१ ॥

अन्वय—तर झरसी ऊपर गरी कज्जल जल छिरकाइ, बिनही लिखी पाती
पिय विरह-बलाइ बाँची ।

तर = तले, नीचे । झरसी = झुलसी हुई । गरी = गली हुई । पाती =
पत्री = चिट्ठी । बाँची = पढ़ लिया । बलाइ = रोग ।

(हाथ की ज्वाजा से) नीचे झुलसी हुई, (आँखों के आँसुओं से मींगी होने के कारण) ऊपर गली हुई, और काजल के जल से छिङ्की हुई (काजे दाग से भरी हुई) विना लिखी (प्रियतमा को) लाडी चिट्ठी में ही प्रीतम ने विरह का रोग पढ़ लिया—(प्रीतम जान गया कि प्रियतमा विरह से जल रही है और आँसू बहा रही है ।)

कर लै चूमि चढ़ाइ सिर उर लगाइ भुज भेटि ।

लहि पाती पिय की लखति बाँचति धरति समेटि ॥ ५४२ ॥

अन्वय—पिय की पाती लहि कर लै चूमि सिर चढ़ाइ लखति उर लगाइ भुज भेटि बाँचति समेटि धरति ।

कर=हाथ । उर=हृदय । भुज भेटि=आँलिंगन कर । पिय=प्रीतम । धरति समेटि=मोड़कर वा तह लगाकर बब्ल से रखती है । बाँचति=पढ़ती है ।

(नायिका) प्रीतम की पाती पाकर उसे हाथ में लेकर, चूमकर, सिर पर चढ़ाकर देखती है और छाती से लगाकर, तथा (सुजाओं से) आँलिंगन कर (बार-बार) पढ़ती और समेटकर रखती है ।

मृगनैनी दग की फरक उर उछाह तन फूल ।

विनहीं पिय आगम उमगि पलटन लगी दुकूल ॥ ५४३ ॥

अन्वय—दग की फरक मृगनैनी उर उछाह तन फूल, विनहीं पिय आगम उमगि दुकूल पलटन लगी ।

उछाह=उत्साह । आगम=आगमन, आना । उमगि=उमंग में आकर । पलटन लगी=बदलने लगी । दुकूल=रेशमी साड़ी, चीर ।

आँख के फड़कते ही मृगनैनी (नायिका) का हृदय उत्साह से भर गया, और शरीर (आनन्द से) पूल उठा, तथा विना प्रीतम के आये ही (अपने शुभ शकुन को मोलह-आने सत्य न्मझ) उमंग में आकर साड़ी बदलने लगी ।

नोट - खियों के लिए बाईं आँख का फड़कना शुभ शकुन है । अतः नायिका ने अपनी बाईं आँख के फड़कते ही प्रेमावेश के कारण समझ लिया कि आज प्रीतम अवश्य आवेंगे, अतः बन-ठनकर मिलने को तैयार होने लगी । उत्कंठा की हद है ।

बाम बाँहु फरकत मिलैं जौं हरि जीवनमूरि ।
तौ तोहीं सौं भेटिहौं राखि दाहिनी दूरि ॥ ५४४ ॥

अन्वय—बाम बाँहु फरकत जौं जीवनमूरि हरि मिलैं तौ दाहिनी दूरि राखि तोहीं सौं भेटिहौं ।

बाम = बाई । बाँहु = बाँह, भुजा । जीवनमूरि = प्राणाधार । भेटिहौं = भेट्ठगी, भुजा भरकर मिलूँगी । दूरि = अलग ।

ऐ बाई भुजा ! (तू फड़क रही है, सो) तेरे फड़कने से यदि प्राणाधार श्रीकृष्ण मिल जायँ—श्रीकृष्ण आज आ जायँ—तो दाहिनी भुजा को दूर रखकर मैं तुझीसे उनका आलिंगन करूँगी । (यही तेरे फड़कने का पुरस्कार है ।)

कियौं सयानी सखिनु सौं नहिं सयानु यह भूल ।
दुरै दुराई फूल लौं क्यों पिय-आगम-फूल ॥ ५४५ ॥

अन्वय—सखिनु लौं सयानी कियौं सयानु नहिं यह भूल, पिय-आगम-फूल लौं दुराई क्यों दुरै ?

सयानी = चतुराई । सयानु = चतुराई । दुरै = छिपे । लौं = समान । पिय-आगम-फूल = प्रीतम के आगमन का उत्साह ।

सखियों से की गई चतुराई (वास्तविक) चतुराई नहीं, वरन् यह भूल है । प्रीतम के आगमन का उत्साह (सुगंधित) फूल के समान छिपाने से कैसे छिप सकता है ?

आयौ मीत विदेस तैं काहू कह्यौ पुकारि ।
सुनि हुलसीं विहँसीं हँसीं दोऊ दुहुनु निहारि ॥ ५४६ ॥

अन्वय—काहू पुकारि कह्यौ, मीत विदेस तैं आयौ, सुनि हुलसीं विहँसीं दोऊ दुहुनु निहारि हँसीं ।

मीत = मित्र = प्यारा, प्रीतम । काहू = किसीने । हुलसीं = आनन्दित हुईं । विहँसीं = मुस्कुराईं । दुहुनु = दोनों को । निहारि = देखकर ।

किसीने पुकारकर कहा कि प्रीतम विदेश से आ गया । यह सुनकर आनन्दित हुईं, मुस्कुराईं और दोनों (नायिकाएँ) दोनों को देखकर हँस पड़ीं ।

नोट—दोनों नायिकाएँ एक ही नायक से प्रेम करती थीं । किन्तु दोनों का

प्रेम परस्पर अप्रकट था । आज अकस्मात् विदेश से नायक के आने की बात सुनकर दोनों स्वभावतः प्रसन्न हुईं । तब एक दूसरी की प्रसन्नता देखकर ताढ़ गईं कि यह उन्हें चाहती है । फलतः अनायास भेद खुलने के कारण दोनों परस्पर देखकर हँस पड़ीं ।

मलिन देह वेड बसन मलिन विरह कैं रूप ।

पिय-आगम औरै चढ़ी आनन ओप अनूप ॥ ५४७ ॥

अन्वय—इह मलिन वेड बसन विरह कैं रूप मालन, पिय-आगम आनन औरै अनूप ओप चढ़ी ।

वेड=वे ही । आगम=आगमन, आना । आनन=सुख । औरै=विचित्र ही, निशाली ही । ओप=कान्ति । अनूप=अनुपम ।

शरीर मलिन है, वे ही मलिन कपड़े हैं और विरह के कारण रूप मी मलिन हैं । किन्तु प्रानन के आगमन से उसके सुख पर और ही प्रकार की अनुपम कान्ति चढ़ गई है ।

कहि पठड़ जिय-भावती पिय आवन की बात ।

फूली आँगन मैं फिरै आँग न आँग समात ॥ ५४८ ॥

अन्वय—जिय-भावता यिय भावन की बात कहि पठइ, फूली आँगन मैं फिरै आँग आँग न समात ।

जिय-भावती=जो जी को भावे, प्राणों को प्यारी लगे । आँग=अंग, शरीर । आँग न आँग समात—बहुत हर्ष के समय में इस कहावत का प्रयोग हाता है ।

अपनी प्राणवद्धमा को प्रियतम ने अपने आन का सँझसा कहला भेजा । (अतपृथक् मारे प्रसन्नता के) वह फूली-फूली आँगन में फिर रही है, अंग अंग में नहीं समाते ।

नोट—घनुप चढ़ावत मे तवहि लखि रिपु-कुत उत्तात ।

हुनसि गात ग्युनाथ को बखतर मैं न समात ॥—पश्चाकर ।

रहे बरोठे मैं मिलन पित प्रानन के ईसु ।

आवत-आवत की भई विधि की घरी घरी सु ॥ ५४९ ॥

अन्वय—प्रानन के ईसु पिड बरोठे में मिलत रहे, आवत-आवत की सु चरि विधि की घरी भर्हे ।

बरोठे=बाहर की बैठक । प्रानन के ईसु=प्राणेश । सु=सो, वह ।

प्राणनाथ प्रीतम (परदेश से आने पर) बाहर की बैठक में ही लंगों से मिल रहे थे । (अतएव) जो एक घड़ी (उन्हें आँगन में) आते-आते बीती, सो घड़ी (नायिका के लिए) ब्रह्मा की घड़ी के समान (लम्बी) हो गई ।

नोट—कितने ही युग बीत जाते हैं तब ब्रह्मा की एक घड़ी होती है ।

जदपि तेज रौहाल-बल पलकौ लगी न बार ।

तौ ग्वैङ्गौं घर कौ भयौ पैङ्गों कोस हजार ॥ ५५० ॥

अन्वय—जदपि तेज रौहाल-बल पलकौ बार न लगा तौ ग्वैङ्गौं घर कौ पैङ्गों हजार कोस भयौ ।

रौहाल=(फाठ रहवार) घोड़ा । पलकौ=एक पल की भी । बार=देर । ग्वैङ्गौं=बस्ती के आसपास की भूमि । पैङ्गों=रास्ता ।

यद्यपि तेज घोड़े के कारण (नायक के आने में) एक पल-भर की भी देर न हुई, तो भी गोयँड़े से घर तक का रास्ता (उल्किता नायिका को) हजार कोस (सद्धा) मालूम हुआ ।

नोट—नायिका ने घर की खिड़की से नायक को तेज घोड़े पर चढ़कर विदेश से आते हुए गाँव के गोयँड़े में देखा । उस गोयँड़े से बस्ती के अन्दर अपने घर तक आने में जो थोड़ी-भी देर हुई, वह उसे हजार वर्ष-सी जान पड़ी ।

विछुरै जिए सँकोच इहि बोलत बनत न बैन ।

दोऊ दौरि लगे हियैं किए निचौहैं नैन ॥ ५५१ ॥

अन्वय—विछुरै जिए इहि सँकोच बैन बोलत न बनत, नन निचौहैं किए दोऊ दौरि हियैं लगे ।

विछुरे=जुश हुए । जिए=मन में । निचौहैं=नीचे की ओर ।

(कैसी लज्जा की बात है कि परस्पर इतना प्रेम करने पर भी) हम दोनों विछुड़ गये—एक दूसरे से अलग-अलग हो गये—फिर भी जीते रहे यह सँकोच मन में होने के कारण वचन बोलते (बातें करते) नहीं बना । (तो भी प्रेमावेश

के कारण) आँखें नीची किये दोनों दौड़कर (परस्पर) हृदय से लिपट गये ।

ज्यौं-ज्यौं पावक-लपट-सी तिय हिय सौं लपटाति ।

त्यौं-त्यौं छुही गुलाब-सैं छतिया अति सियराति ॥ ५५२ ॥

अन्वय—ज्यौं-ज्यौं पावक-लपट-सी तिय हिय सौं लपटाति, त्यौं-त्यौं गुलाब-छुही-सैं छतिया अति सियराति ।

पावक=आग । तिय=खी । हिय=हृदय । छुही गुलाब-सैं=गुलाब-जल से सींची हुई-सी । सियराति=ठंडी होती है ।

ज्यौं-ज्यौं आग की लपट के समान (ज्योतिपूर्ण, कान्तिपूर्ण और कामाभिपूर्ण) वह खी हृदय से लिपटता है, त्यौं-त्यौं गुलाब-जल से छिड़की हुई के समान छाती अत्यन्त ठंडी होती है ।

पीठि दियैं ही नैंकु मुरि कर धूँघट-पटु टारि ।

भरि गुलाल की मूठि सौं गई मूठि-सी मारि ॥ ५५३ ॥

अन्वय—पीठि दियैं ही नैंकु मुरि कर धूँघट-पटु टारि गुलाल की भरि मूठि सौं मूठि-सी मारि गई ।

पीठि दियैं=मुँह फेरकर । नैंकु=बरा । मुरि=मुड़कर । कर=हाथ । पटु=कपड़ा । गुलाल=अंवार । मूठि=मुट्ठी । मूठि—वशीकरण-प्रयोग की विधि ।

(मेरी ओर) पीठि किये हुए ही जरा-सा मुड़कर और हाथ से धूँघट का कपड़ा हटाकर अंवार मरी हुई मुट्ठी से (वह नायिका) मानो (वशीकरण-प्रयोग की) मूँह-ही-सी मार गई—(उस अदा से मुझपर अंवार डालना क्या था, वशीकरण-प्रयोग का टोना करना था) ।

नोट—लजाशीला नायिका धूँघट काढ़े नायक की ओर पीठि किये खड़ी थी । नायक उसपर ताचइतोड़ अंवार डाल रहा था । इतने में उसने भी तमक-कर, कुछ मुड़कर और धूँघट को हाथ से हटाते हुए नायक पर अंवार की मूँह चला ही दी । उसीपर यह उक्ति है ।

दियौ जु पिय लखि चखनु मैं खेलत फागु खियालु ।

बाढ़त हूँ अति पीर सु न काढ़त बनतु गुलालु ॥ ५५४ ॥

अन्वय—फागु खेलत खियालु पिय लखि चखनु मैं जु दियौ सु अति पीर
बाढ़त हूँ गुलालु काढ़त न बनतु ।

लखि=ताककर । चख=आँखें । खियालु=कौतुक, विनोद, चुहल ।
पीर=पीड़ा । सु=सो । गुलालु=अबीर ।

फाग खेलते समय कौतुक-(विनोद)-वश प्रीतम ने ताककर उसकी आँखों
में जो (अबीर) डाल दी, सो अत्यन्त पीड़ा बढ़ने पर भी उससे वह अबीर
काढ़ते नहीं बनता (क्योंकि उस पीड़ा में भी एक विलक्षण प्रेमानन्द है !)

छुटत मुठिनु सँग ही छुटी लोक-लाज कुल-चाल ।

लगे दुहुनु इक बेर ही चलि चित नैन गुलाल ॥ ५५५ ॥

अन्वय—छुटत मुठिनु सँग ही लोक-लाज कुल-चाल छुर्या, इक बेर ही चलि
दुहुनु चित नैन गुलाल लगे ।

कुल-चाल=कुल की चाल, कुल-मर्यादा । इक बेर ही=एक साथ ही ।

अबीर की मुट्ठियाँ छूटने के साथ लोक-लज्जा और कुल-मर्यादा छूट गई । एक
साथ ही चलकर दोनों के हृदय, नयन और अबीर एक दूसरे से लगे—अबीर
(की मूठ) चलाते समय ही दोनों के नेत्र लड़ गये और दिल एक हो गया ।

जज्यौं उझकि झाँपति बदनु झुकति विहँसि सतराइ ।

तत्यौं गुलाल मुठी झुठी झझकावत प्यौ जाइ ॥ ५५६ ॥

अन्वय—जज्यौं उझकि बदनु झाँपति झुकति विहँसि सतराइ, तत्यौं
गुलाल झुर्या मुठी प्यौ झझकावत जाइ ।

जज्यौं=ज्यों-ज्यों । उझकि=लचक के साथ उचककर । झाँपति=दकती
है । सतराइ=डरती है । तत्यौं=त्यों-त्यों । झझकावत=डराता है ।

ज्यों-ज्यों उझककर (नायिका) मुँह ढाँपती, झुक जाती और हँसकर डरने
की चेष्टा (भावभंगा) करती है, त्यों-त्यों अबीर की झूठी मुठी से—विना अबीर
की (खाली) मुठी चला-चलाकर—प्रीतम उसे डरवाता जाता है ।

रस भजए दोऊ दुहुनु तउ ठिकि रहे टरै न ।

छवि सौं छिरकत प्रेम-रँग भरि पिचकारी नैन ॥ ५५७ ॥

अन्वय—दोऊ दुहुनु रस मिजए तउ ठिकि रहे न टरै, नैन पिचकारी
प्रेम-रँग भरि छवि सौं छिरकत ।

मिजए = शराबोर कर दिया । ठिकि रहे = डटे रहे ।

दोनों ने दोनों को रस से शराबोर कर ढाला है, तो भी दोनों अडे खडे हैं,
टलते नहीं । (मानो फाग खेलने के बाद अब) नैन-रूपी पिचकारी में प्रेम का
रंग भरकर सुन्दरता के साथ (परस्पर) छिङ्क रहे हैं ।

गिरै कंपि कछु कछु रहै कर पसीजि लपटाइ ।

लैयौ मुठी गुलाल भरि छुटत झुठी है जाइ ॥ ५५८ ॥

अन्वय—कछु कंपि गिरै, कछु कर पसीजि लपटाइ रहै, मुठी गुलाल भरि
लैयौ छुटत झुठी है जाइ ।

कंपि = काँपना । छुटत = छूटते ही, चलाते ही । झुठी = खाली ।

कुछ तो (प्रमावेश में) हाथ काँपने से गिर पड़ता है, और कुछ हाथ के
पसीजने से उसमें लिपटी रह जाता है । मुठी में अर्बार भरकर तो लेती है,
किन्तु चलाते ही (वह मुठा) झड़ी हो जाता है—नायक का देह पर अर्बार
पड़ती ही नहीं ।

उयौं-उयौं पढु झटकति हठति हँसति नचावति नैन ।

त्यौं-त्यौं निपट उदार हूँ फगुवा देत बनै न ॥ ५५९ ॥

अन्वय—उयौं-उयौं पढु झटकति हठति हँसात नैन नचावति त्यौं-त्यौं
निपट उदार हूँ फगुवा देत न बनै ।

पढु = अंचल । झटकति = जोर से हिलाती वा फहराती है । हठति =
हठ करती है । निपट = अत्यन्त । फगुवा = फाग खेलने के बदले में वस्त्राभूपण
या मेवा-मिठाई आदि का पुरस्कार ।

ज्यों-ज्यों वह (नायिका) कपड़े (अंचल) को झटकती है, हठ करती है,
हँसती है और आँखों को नचाती है, त्यौं-त्यौं अत्यन्त उदार होने पर भी (इस
हाव-माव पर सुग्रध होकर, नायक से) फगुवा देते नहीं बनता ।

छकि रसाल-सौरभ सने मधुर माधवी-गंध ।

ठौर-ठौर झाँसत झाँपत भौर-भौर मधु-अंध ॥ ५६० ॥

अन्वय—रसाल-सौरभ छुकि मधुर माधवी-गंध सने मधु-अंध भौंर-भौंर ठौर-ठौर झँपत ।

छुकि=तृप्त या मत्त होकर । रसाल=(यहाँ) आम की मंजरी । सौरभ=सुगंध । सने=लिप्त होकर माधवी—एक प्रकार की बसन्ती लता । ठौर-ठौर=जगह-जगह, यत्र-तत्र । झँपत=मस्ती में ऊँधते हैं । भौंर=समूह । भौंरत=मँझराते हैं ।

आम की (मंजरी की) सुगंध से मस्त होकर, माधवी-लता की मधुर गन्ध से सने (लिप्त) हुए मदांध भौंरों के समूह जगह-जगह झूमते और अपकी केते (फिरते) हैं—(किसी पुष्प पर गुजार करते हैं, तो किसीपर बैठकर ऊँधने लगते हैं ।)

यह बसन्त न खरी अरी गरम न सीतल बातु ।

कहि क्यौं प्रगटै देखियतु पुलकु पसीजे गातु ॥ ५६१ ॥

अन्वय—यह बसन्त अरी न खरी गरम न सीतल बातु, कहि पसीजे गातु पुलकु प्रगटै क्यौं देखियतु ।

खरी=अत्यन्त । अरी=ऐ सखी । बातु=हवा । कहि=कहो । प्रगटै=प्रत्यक्ष । पुलकु=रोमांच । पसीजे=पसीने से लथपथ ।

यह बसन्त क्तु है । अरी सखी, न इसमें अत्यन्त गर्मी है और न (अत्यन्त) ठंडी हवा ! कहो, फिर तुम्हारे पसीजे हुए—पसीने से लथपथ—शरीर में पुलके प्रत्यक्ष क्यौं दाख पड़ती हैं ?

नोट—गर्मी से पसीना निकलता है और सर्दी से रोगटे खड़े हो जाते हैं । प्रीतम के साथ तुरत रति-समागम करके आई हुई नायिका में ये दोनों ही चिह्न देखकर सखी परिहास करती है ।

फिरि घर कौं नूतन पथिक चले चकित-चित भागि ।

फूल्यौ देखि पलास-बन समुही समुभि दवागि ॥ ५६२ ॥

अन्वय—पलास-बन फूल्यौ देखि समुही दवागि समुभि चकित-चित नूतन पथिक फिरि घर कौं भागि चढ़े ।

तन = नवीन । पथिक = बटोही, परदेशी । चकित-चित = घबराकर । पलास = टाक, किंशुक, लाल फूल का एक पेड़ । समुही = सामने । दवागि = दावागिन, दावानल, जंगल की आग—जो आप-ही-आप (जंगलों में) उत्पन्न होकर सारे वन को स्वाहा कर डालती है ।

पलास के वन को फूँझा देख, उसे अपने सामने ही दावागिन समझ (डर से) घबराकर नया बटोही लौटकर अपने घर की ओर भाग चला । (वसन्त क्रतु में फूले हुए पलास उमे दावागिन के समान जान पड़े ।)

अंत मरैंगे चलि जरैं चढ़ि पलास की डार ।

फिर न मरैं मिलिहैं अली ए निरधूम अँगार ॥ ५६३ ॥

अन्वय—अंत मरैंगे चलि पलास की डार चढ़ि जरैं, अली किरि मरैं ए निरधूम अँगार न मिलिहैं ।

चलि = चलो । डार = डाल । निरधूम = विना धुएँ की । अँगार = आग ।

(विरहिणी नायिका विरह के उन्माद में पलास के फूल को आग का लाल अँगार समझकर कहती है—) अन्त में मरना ही है, तो चलो, पलास की डाल पर चढ़कर जल जायँ । शरीर सर्वी, फिर मरने पर ऐसी विना धुएँ की आग नहीं मिलेगी ।

नाहिन ए पावक-प्रबल लुवैं चलैं चहुँ पास ।

मानहु विरह वसंत कैं ग्रीष्मम लेत उसास ॥ ५६४ ॥

अन्वय—चहुँ पास ए पावक-प्रबल लुवैं नाहिन चलैं, वसंत कैं विरह मानहु ग्रीष्मम उसास लेत ।

पावक-प्रबल = आग के समान प्रचंड । लुवैं = आँच भरी हवा, गर्म हवा के जवरदस्त भोंके ('लू' का बहुवचन 'लुवैं') । चहुँ पास = चारों ओर । उसास = आह भरी ऊँची साँसें ।

चारों ओर ये आग के समान प्रबल लुवैं नहीं चल रही हैं, परन् वसंत के विरह में मानो ग्रीष्म-क्रतु लस्त्री साँसें ले रही है—आह भर रही है ।

कहलाने एकत वसत अहि-मयूर मृग-बाघ ।

जगतु तपोवन सौ कियौ दीरघ दाघ निदाघ ॥ ५६५ ॥

अन्वय—अहि-मयूर मृग-बाघ कहलाने एकत बसत, निदाघ दीरघ दाघ जगतु तपोवन सौ कियौ ।

कहलाने=(१) कुम्हलाये हुए, गर्मी से व्याकुल (२) किसलिए ।
एकत्र=एकत्र । अहि=सर्प । दीरघ दाघ=कठोर गर्मी । निदाघ=ग्रीष्म ।

(परस्पर कट्टर शत्रु होने पर भी) सर्प और मयूर तथा हिरन और बाघ किसलिए (गर्मी से व्याकुल होकर) एकत्र वास करते हैं—एक साथ रहते हैं ! ग्रीष्म की कठोर गर्मी ने संसार को तपोवन-सा बना दिया ।

नोट—इस दोहि के प्रथम चरण में एक खूबी है । उसमें प्रश्न और उत्तर दोनों हैं । प्रश्न है—सर्प और मयूर तथा मृग और बाघ किसलिए एकत्र बसते हैं ? उत्तर—गर्मी से व्याकुल होकर तपोवन में सभी जीव-जन्तु आपस में स्वाभाविक वैर-भाव भूलकर एक साथ रहते हैं । आचार्य केशवदास ने भी तपोवन का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—“केसोदास मृगज बछेल चूँमैं बाघनीन चाट्ट सुरभि बाघ-बालक-बदन है । सिंहिन की सटा ऐंचे कलभ करिनि कर सिंहन के आसन गयन्द के रहन है ॥ फनी के फनन पर नाचत मुदित मोर कोध न विरोध जहाँ मद न मदन है । बानर फिरत डोरे-डारे अन्ध तापसनि सिव की मसान कैधौं क्रपि को सदन है ॥”

वैठि रही अति सघन वन पैठि सदन तन माँह ।

देखि दुपहरी जेठ की छाँहौं चाहति छाँह ॥ ५६६ ॥

अन्वय—अति सघन वन बैठि रही सदन तन माँह पैठि, जेठ की दुपहरी देखि छाँहौं छाँह चाहति ।

सघन=घना । सदन=घर । तन=शरीर । छाँहौं=छाया भी ।

(छाया या तो) अत्यन्त सघन वन में बैठ रही है (या वस्ती के) घर और (जीव के) शरीर में घुस गई है । (मालूम पड़ता है) जेठ-मास की (छुलसानेवाली) दुपहरी देखकर छाया भी छाया चाहती है ।

नोट—जेठ की दुपहरी में सूर्य ठीक सिर के ऊपर (मध्य आकाश में) रहता है । अतः सब चीजों की छाया अत्यन्त छोटी होती है । पैङ्क की छाया ठीक उसकी डालियों के नीचे रहती है । घर की छाया घर में ही बुसी रहती

है—दीवार से नीचे नहीं उतरती । शरीर की छाया भी नहीं दीख पड़ती—परछाईं पैरों के नीचे जाती है, मानो वह भी शरीर में ही बुस गई हो । बाहवा ! इस दोहे से विहारी के प्रकृति-निरीक्षण-नैपुण्य का कैसा उत्कृष्ट परिचय मिलता है !

तिय-तरसौंहैं मन किए करि सरसौंहैं नेह ।

धर परसौंहैं है रहे भर वरसौंहैं मेह ॥ ५६७ ॥

अन्वय—नेह सरसौंहैं करि मन तिय-तरसौंहैं किपु भर वरसौंहैं मेह धर परसौंहैं है रहे ।

तिय-तरसौंहैं=खी पर ललचनेवाले । सरसौंहैं=रसीला, सरस । धर=धरा, पृथ्वी । परसौंहैं=स्पर्श करनेवाले । वरसौंहैं=वरसनेवाले ।

(वर्षा ने) प्रेम को सरस बनाकर मन को खी के जिपु ललचनेवाला बना दिया—(वर्षा आते ही प्रेम जग गया और खी के साथ मोग-विलास करने को मन मचल गया) और, झड़ी लगाकर वरसनेवाले मेघ पृथ्वी को स्पर्श करनेवाले हो गये—(मेघ इतने नीचे आकर वरसते हैं, मानो वे पृथ्वी का आलिंगन कर रहे हों) ।

पावस निसि-अँधियार मैं रह्यौ भेदु नहिं आनु ।

राति-यौस जान्यौ परतु लर्खि चकई-चकवानु ॥ ५६८ ॥

अन्वय—पावस निसि-अँधियार मैं आनु भेदु नहिं रह्यौ चकई-चकवानु लखि राति-यौस जान्यौ परतु ।

पावस = वर्षा ऋतु । निसि = रात । भेदु = फर्क, अन्तर । आन = अन्य, दूसरा । यौस = दिन ।

पावस और रात के अन्यकार में अन्य भेद नहीं रहा—(पावस का अंधकार और रात का अधकार एक समान हो रहा है), चकई और चकवे को देखकर ही रात-दिन जान पड़ते हैं—(जब चकवे आर चकई को लाग एक साथ देखते हैं, तब समझते हैं कि दिन है; फिर जब उन्हें चिकुड़ा देखते हैं, तब समझते हैं कि रात है) ।

नोट—रात में चकवा-चकई एक साथ नहीं रहते।

छिनकु चलति ठिठकति छिनकु भुज प्रीतम-गल डारि।

चढ़ी अटा देखति घटा विज्जु-छटा-सो नारि॥५६९॥

अन्वय—छिनकु चलति छिनकु प्रीतम-गल भुज डारि ठिठकति, विज्जु-छटा-सी नारि अटा चढ़ी घटा देखति।

छिनकु=एक क्षण। ठिठकति=रक्ककर खड़ी हो जाती है। अटा=कोठा, अटारी। विज्जु-छटा=विजली की दमक।

एक क्षण चलती है, और दूसरे ही क्षण प्रीतम के गलबँहियाँ डालकर ठिठककर खड़ी हो जाती है। (इस प्रकार) विजली की दमक के समान वह स्त्री कोठे पर चढ़कर (मेघ की) छटा देख रही है।

पावक-भर तै मेह-झर दाहक दुसह विसेखि।

दहै देह वाकै परस याहि दगनु ही देखि॥५७०॥

अन्वय—पावक-झर तै मेह-झर विसेखि दाहक दुसह, वाकै परस देह दहै याहि दगनु देखि ही।

झर=(१)लपट (२) झड़ी। दहै=जलना। दगनु=आँखों से।

आग की लपट से मेघ की झड़ी (कहीं) अधिक जलानेवाली और असह-नीय (मालूम होती) है, क्योंकि उस (आग की लपट) के स्पर्श से देह जलती है, और इस (मेघ की झड़ी) को आँखों से देखने ही से (विरहान्ति भड़ककर देह को मस्म कर देती है)।

कुढ़ंगु कोप तजि रँगरली करति जुवति जग जोइ।

पावस गूढ़ न बात यह बूढ़नु हूँ रँग होइ॥५७१॥

अन्वय—जोइ कुढ़ंगु कोप तजि जग जुवति रँगरली करति यह बात गूढ़ न पावस बूढ़नु हूँ रँग होइ।

कुढ़ंगु=नटखटपन, मानिनी का वेष। कोप=कोघ। रँगरली=केलि-रंग, विहार। जोइ=देखो। पावस=वर्षा-ऋतु। गूढ़=गुप्त, छिपा हुआ। बूढ़नु=(१)एक लाल कीड़ा, वीरवहूटी (२) बूढ़ियों। रँग=(१) रसिकता, उमंग (२) प्रेम।

देखो, नटखटपन और क्रोध छोड़कर संसार की युवतियाँ अपने प्रीतमों के संग रँगरलियाँ (विहार) करती हैं। और तो और, यह बात भी छिगी नहीं है कि इस वर्षा-ऋतु में बूढ़ियों (बीरवहृष्टियों) में भी रंग आ जाता है—उमंग उमड़ आती है। (फिर युवतियों का क्या पूछना ?)

धुरवा होहि न अलि इहै धुआँ धरनि चहुँकोद ।

जारतु आवत जगतु कौं पावस-प्रथम-पयोद ॥ ५७२ ॥

अन्वय—पावस-प्रथम-पयोद जगतु कौं जारतु आवत, अलि इहै धुआँ धरनि चहुँकोद, धुरवा न होहि ।

धुरवा = मेघ। अलि = सखी। धरनि = पृथ्वी। चहुँकोद = चारों ओर। पावस-प्रथम-पयोद = वर्षा-ऋतु के पहले दिन का बादल।

वर्षा-ऋतु के पहले दिन का बादल संसार को जलाता हुआ चला आता है। हे सखी, यह उमीका (संसार के जलने का) धुआँ पृथ्वी के चारों ओर (दीम पड़ता है), यह मेघ हो नहीं सकता ।

हठु न हठीली करि सकै यह पावस-ऋतु पाइ ।

आन गाँठि धुटि जाति ज्यौ मान-गाँठि छुटि जाइ ॥ ५७३ ॥

अन्वय—यह पावस-ऋतु पाइ हठीली हठु न करि सकै, आन गाँठि ज्यौ धुटि जाति मान-गाँठि छुटि जाइ ।

आन = दूसरा। गाँठि = गिरह। धुटि जाति = कड़ी पड़ जाती है।

इस पावस-ऋतु को पाकर—इस वर्षा के जमाने में—हठीली नायिका भी हठ नहीं कर सकती, (क्योंकि इस ऋतु में) अन्य गाँठें जिस प्रकार कड़ी पड़ जाती हैं। (उमी प्रकार) मान की गाँठ (आप-से-आप) खुल जाती है ।

नोट—वरसात में मन, मूँज आदि की रसियों की गाँठें कड़ी पड़ जाती हैं, पर मेघ उमड़ने और विजली कोंधने पर मान की गाँठ ढूट ही जाती है ।

वेऊ चिरजीवी अमर निधरक फिरौ कहाइ ।

छिन विछुरैं जिनका नहीं पावस आउ सिराइ ॥ ५७४ ॥

अन्वय—वेऊ निधरक चिरजीवी अमर कहाइ फिरौ जिनकी आउ पावस छिन विछुरैं नहीं सिराइ ।

आउ = उम्र, अवस्था । सिराइ = बीतती है ।

वे भी खेलटके चिरजीवी और अमर कहलाते फिरें जिनकी आयु पावर-ऋतु में एक क्षण के वियोग में भी नहीं बातती—या जो (रसिक जन) इस वर्षा-ऋतु में अपनी प्रियतमा से ज्ञान मात्र के लिए बिछुइने पर भी मर नहीं जाते, वे ही अमर और चिरजीवी पदबी के हकदार हैं ।

नोट—प्रेमी कवि ठाकुर ने भी क्या खूब कहा है—“सजि सोहे दुकूलन बिज्जुछुटा-सी अटान चढ़ी घटा जोवति हैं । रँगराती सुनी धुनि मोरन की मदमाती सँजोग सँजोवति हैं ॥ कवि ‘ठाकुर’ वे पिय दूर बसैं हम आँसुन सों तन धोवति हैं । धनि वे धनि पावस की रतियाँ पति की छतियाँ लगि सोवति हैं ॥”

अब तजि नाउँ उपाव कौ आयौ सावन मास ।

खेलु न रहिवो खेम सौं केम-कुसुम की वास ॥ ५७५ ॥

अन्वय—अब उपाव कौ नाउँ तजि, सावन मास आयौ, केम-कुसुम की वास खेम सौं रहिवो खेलु न ।

नाउँ = नाम । उपाव = उपाय, यत्त, तरकीब, युक्ति । खेम = क्षेम, कुशल । केम-कुसुम = कदम्ब का फूल, जिसमें बड़ी भीनी-भीनी और मस्तानी सुगन्ध होती है ।

अब उपाय का नाम छोड़ो—उस बाला के फँसाने की युक्तियों को त्यागो, क्योंकि सावन का महीना आ गया । कदम्ब के फूल की सुगन्ध सूँचकर कुशल-क्षेम से रह जाना हँसी-खेल नहीं है—अर्थात् कदम्ब के फूल की गन्ध पाते ही वह पगली (मस्त) होकर अपने-आप तुमसे आ मिलेगी ।

बामा भामा कामिनी कहि बोलौ प्रानेस ।

प्यारी कहत खिसात नहिं पावस चलत विदेस ॥ ५७६ ॥

अन्वय—प्रानेस बामा भामा कामिनी कहि बोलौ, पावस विदेस चलत प्यारी कहत नहिं खिसात ।

बामा = (१) स्त्री (२) जिससे विधाता बाम हो । भामा = (१) स्त्री (२) मानिनी, कुद्रस्त्वभावा । कामिनी = (१) स्त्री (२) जो किसीकी कामना करे । प्रानेस = प्राणेश, प्राणनाथ । खिसात = लजाते हो ।

हे प्राणनाथ ! मुझे बामा, भामा और कामिनी नाम से कहकर पुकारिए ।
इस वर्षा-ऋतु में विदेश जाते हुए भी मुझे प्यारी कहते लज्जा नहीं आती ?
(यदि मैं सचमुच आपकी 'प्यारी' होती, तो इस वर्षा-ऋतु में मुझे अकेली
छोड़कर आप विदेश क्यों जाते ?)

उठि ठकुठकु एतौ कहा पावस कैं अभिसार ।
जानि परैगी देखियौ दामिनि घन-अँधियार ॥ ५७७ ॥

अन्वय—उठि पावस कैं अभिसार एतौ ठकुठकु कहा । देखियौ घन-
अँधियार दामिनि जानि परैगी ।

ठकुठकु = झमेला । एतौ = इतना । अभिसार = प्रेमी से मिलने के लिए
संकेत-स्थल पर जाना । देखियौ = देख लिये जाने पर भी । दामिनी = विजली ।
घन = वादल ।

उठो, वर्षा-ऋतु के अभिसार में भी इतना झमेला कैसा—इतनी हिच-
किचाहट और सजधज क्यों ? देख लिये जाने पर भी बादलों के अंधकार में तुम
विजली जान पड़ोगी—जो तुम्हें देखेंगे भी वे समझेंगे कि बादलों में विजली
चमकती जा रही है ।

फिर सुधि दै सुधि चाह एयौ इहि निरदई निरास ।
नई नई बहुरथौ दर्द दर्द उसासि उसास ॥ ५७८ ॥

अन्वय—इहि निरदई निरास फिर सुधि दै एयौ सुधि चाह दर्द बहुरथौ
नई नई उसास उसासि दर्द ।

सुधि दै = होश दिलाकर । सुधि चाह = याद दिला दी । बहुरथौ = फिर ।
उसास उसासि दर्द = उसासे उभाड़ दीं । उसासि = ऊँची साँस ।

इस निर्दय (पावस-ऋतु) ने निराशा में मुझे पुनः होश दिलाकर प्रियतम
की याद कर दी । बह्या ने फिर नई-नई उसासे उभाड़ दी हैं (अतः इस
अवस्था में तो बेहोश ही रहना अच्छा था ।)

घन-घेरा छुटिगौ हरपि चली चहूँ दिसि राह ।
कियौ मुचैनौ आह जगु सरद सूर नरनाह ॥ ५७९ ॥

अन्वय—घन-घेरा छुटिगौ हरपि चहूँ दिसि राह चली, सरद सूर नरनाह
आइ जगु सुचैनौ कियौ ।

घन=मेघ । घेरा=आक्रमणकारी सेना-मण्डल । सुचैनौ=खूब निश्चित ।
सूर=बली । नरनाह=नरनाथ, राजा ।

मेघों का घेरा छूट गया । प्रसन्न होकर चारों ओर की राहें चलने लगीं—
पवित्र आने-जाने लगे । शरद-रुपी बली राजा ने आकर संसार को (उपद्रवों से)
खूब निश्चित बना दिया । (वर्षा-ऋतु के उपद्रव शान्त हो गये ।)

ज्यौं-ज्यौं बढ़ति विभावरी त्यौं-त्यौं बढ़त अनंत ।

ओक-ओक सब लोक-सुख कोक सोक हेमंत ॥ ५८० ॥

अन्वय—ज्यौं-ज्यौं विभावरी बढ़ति त्यौं-त्यौं हेमंत ओक-ओक सब
कोक-सुख कोक सोक अनंत बढ़त ।

विभावरी=रात । अनंत=जिसका अन्त न हो, अपार । ओक=घर ।
लोक=लोग, जन-समुदाय । कोक=चकवा ।

ज्यौं-ज्यौं रात बढ़ती जाती है—रात बड़ी होती जाती है, त्यौं-त्यौं हेमन्त-
ऋतु में घर-घर में सब लोगों का सुख और चकवा-चकई का दुःख वेहद
बढ़ता जाता है ।

नोट—जाड़े की रात बड़ी होने से संयोगी तो सुख लृप्त हैं, और चकवा-
चकई के मिलने में बहुत देर होती है, जिससे वे दुखी होते हैं; क्योंकि रात में
शापवश वे मिल नहीं सकते ।

कियौं सबै जगु काम-बस जीते जिते अजेइ ।

कुसुम-सरहिं सर-धनुष कर अगहनु गहन न देइ ॥ ५८१ ॥

अन्वय—सबै जगु काम-बस कियौं, जिते अजेइ जीते, अगहनु कुसुम-
सरहिं कर धनुष-सर न गहन देइ ।

जिते=जितना । अजेइ=न हारनेवाले, जो जीता न जा सके । कुसुम-
सर=जिसका वाण फूल का हो, कामदेव । अगहनु=जाड़े का महीना;
अ+गहनु=पकड़ने न देनेवाला; जाड़े के मारे हाथ ऐसे ठिठुर जाते हैं कि कोई

चीज पकड़े नहीं बनती—कामदेव भी धनुष-बाण नहीं सँभाल सकता । गहन = ग्रहण करना, धारण करना ।

समूचे संसार को काम के अधीन कर दिया । जितने अजेय थे, (सब को) जीत लिया । (इस प्रकार) अगहन कामदेव को हाथ में धनुष और बाण नहीं धरने देता । (वह स्वयं सबको कामासक्त बना देता है ।)

मिलि विहरत विक्षुरत मरत दम्पति अति रसलीन ।

नूतन विधि हेमंत-रितु जगतु जुराफा कीन ॥ ५८२ ॥

अन्वय—अति रसलीन दम्पति मिलि विहरत विक्षुरत मरत, हेमंत-रितु नूतन विधि जगतु जुराफा कीन ।

विहरत = विहार करते हैं । विक्षुरत = विक्षुइते ही, एक दूसरे से अलग होते ही । दम्पति = पति और पत्नी । जुराफा = अफ्रिका देश का एक जंतु जो अपनी मादा से चिछोह होते ही मर जाता है ।

अत्यन्त रस (आनन्दोपभोग) में लीन दम्पति—प्रेम में पूरे पगे पति-पत्नी —हिल-मिलकर विहार करते हैं और वियोग होते ही प्राण त्याग देते हैं । इस हेमन्त-ऋतु ने (अपनी) नवीन (शासन) व्यवस्था से सारे संसार को ही ‘जुराफा’ बना दिया । अथवा—हेमन्त-ऋतु-रूपी नवीन ब्रह्मा ने सारे संसार को जुराफा के रूप में बदल दिया—मृष्टि ही बदल दी ।

आवत जात न जानियतु तेजहिं तजि सियरानु ।

घरहँ-जँवाई लौं घर्घौ खरौ पूस दिन-मानु ॥ ५८३ ॥

अन्वय—आवत जात जानियतु न तेजहिं तजि सियरानु घरहँ-जँवाई लौं पूस दिन-मानु खरौ घव्यौ ।

सियरानु = ठंडा पड़ गया है । घरहँ-जँवाई = घर-जमाई, सदा सुसुराल ही में रहनेवाला दामाद । लौं = समान । खरौ = अत्यन्त । मानु = (१) लम्बाई (२) आदर ।

आते-जाते जान नहीं पड़ता—कब आया और कब गया, यह नहीं जान पड़ता; तेज को तजकर (तेजर्हीन होकर) ठंडा पड़ गया है—‘घर-जमाई’ के समान पूस के दिन का मान अत्यन्त घट गया है ।

लगत सुभग सीतल किरन निसि-सुख दिन अवगाहि ।

महा ससी-भ्रम सूर त्यौं रही चकोरी चाहि ॥ ५८४ ॥

अन्वय—महा ससी-भ्रम चकोरी सूर त्यौं चाहि रही किरन सीतल सुभग लगत निसि-सुख दिन अवगाहि ।

सुभग=सुन्दर । निसि-सुख=रात का सुख । अवगाहि=प्राप्त करना । माघ=माघ । सूर=सूर्य । त्यौं=तरफ, ओर । चाहि=देखना ।

(क्योंकि) सूर्य की किरणें भी उसे शीतल और सुन्दर लगती हैं । (इस प्रकार) रात्रि का सुख वह दिन ही में प्राप्त कर रही है ।

तपन-तेज तापन-तपति तूल-तुलाई माँह ।

सिसिर-सीतु क्यौंहुँ न कटैं विनु लपटैं तिय नाँह ॥ ५८५ ॥

अन्वय—तिय नाँह लपटै विनु तपन-तेज तापन-तपति तूल तुलाई माँह सिसिर-सीतु क्यौंहुँ न कटै ।

तपन = सूर्य । तेज = किरण, गर्मी । तापन-तपति = आग की गर्मी । तूल-तुलाई = रुद्धिदार (खूब मुलायम) दुलाई । माँह = मैं । सिसिर-सीतु = पूस-माघ की सर्दी । क्यौंहुँ = किसी प्रकार से भी । तिय = स्त्री । नाँह = पति ।

स्त्री पति से लिपटे विना सूर्य की किरणें, आग की गर्मी, और रुद्धिदार दुलाई से जाड़े की सर्दी किसी प्रकार भी नहीं मिटा सकती—(जाड़ा तो तभी दूर होगा जब प्यारे को छाती से लगाकर गरमायेगी ।)

नोट—“ग्वाल कवि कहैं मृगमद के धुकाय धूम ओढ़ि-ओढ़ि छार भार आगहू छपी-सी जाइ । छाके मुरा-सीसी हू न सी-सी वैं मिटेगी कभू जोलौं उकसी-सी छाती छाती सों न मीसी जाइ ॥”

रहि न सकी सब जगत मैं सिसिर-सीत कैं त्रास ।

गरम भाजि गढ़वै भई तिय-कुच अचल मवास ॥ ५८६ ॥

अन्वय—सिसिर-सीत कैं त्रास गरम सब जगत मैं न रहि सकी, भाजि तिय-कुच अचल मवास गढ़वै भई ।

त्रास = भय, डर। भाजि = भागकर। गढ़वै भई = किलेदारिन हो गई।
अचल = दुर्गम, दृढ़। मवास = अलंब्य स्थान, दुर्ग, किला।

शिशिर-क्रतु की सदीं के डर से गर्मी सारे संसार में कहीं न रह सकी,
(तो अन्त में) भागकर (वह) छो के कुच-रुपी दुर्ग की किलेदारिन बन गई।

नोट—कविवर सेनापति कहते हैं कि सूर्य, अग्नि और रुई से अपनी रक्षा होते न देख गर्मी भागती हुई अन्त को—“पूस मैं तिया के ऊँचे कुच कनकाचल में गढ़वै गरम भइ सीत सों लरति हैं।”

द्वैज मुधा-दीधिति कला वह लखि ढीठि लगाइ।

मनौं अकास अगस्तिया एकै कली लखाइ॥ ५८७॥

अन्वय—मुधा-दीधिति द्वैज कला ढीठि लगाइ वह लखि मनौं अकास अगस्तिया एकै कली लखाइ।

द्वैज = द्वितीय। मुधा-दीधिति = (अमृत-भरी किरणोंवाला) चन्द्रमा।
ढीठि = दृष्टि। अगस्तिया = अगस्त्य नाम का वृक्ष जिसका फूल उज्ज्वल होता है।

द्वितीया के चन्द्रमा की कला को दृष्टि लगाकर (ध्यान से) वह देखो,
मानो आकाश-रुपी आगस्त्य नामक वृक्ष में पक ही कली दीव पड़ती है।

धनि यह द्वैज जहाँ लख्यौ तज्यौ दगनु दुखदंदु।

तुम भागनु पूरब उयौ अहो अपूरबु चंदु॥ ५८८॥

अन्वय—यह द्वैज धनि जहाँ लख्यौ दगनु दुखदंदु तज्यौ, अहो अपूरबु चंदु तुम भागनु पूरब उयौ।

धनि = धन्य। जहाँ = जिसे। दुखदंदु = दुख-द्वन्द्व = दुःखसमूह।

यह द्वितीया धन्य है, जिसे देखकर आँखों को दुःख-समूह ने छोड़ दिया—
जिसे देखते ही आँखों के दुःख दूर हो गये। अहा ! यह अपूरब चन्द्रमा तुम्हारे ही माय से पूर्व-दिशा में उगा है।

नोट—द्वितीया के चन्द्रमा को देखने के लिए नायक अपने सख्ताओं के साथ कोठे पर चढ़ा। उधर उसकी प्रेमिका नायिका भी अपने कोठे पर आ

गईं । नायिका उसके पूरब को ओर थी । नायक-नायिका के परस्पर दर्शन के बाद एक सखा ने यह उक्ति कही ।

जोन्ह नहीं यह तमु वहै किए जु जगत निकेत ।

होत उदै ससि के भयी मानहु ससहरि सेत ॥ ५८९ ॥

अन्वय—यह जोन्ह नहीं वहै तमु जु जगत निकेत किए, मानहु ससि के उदै होत ससहरि सेत भयौ ।

जोन्ह=चाँदनी । तमु=अंधकार । निकेत=घर । ससि=चन्द्रमा ।
ससहरि=सिहरकर, डरकर । सेत=श्वेत=उजला ।

यह चाँदनी नहीं है, यह वही अंधकार है, जिसने संसार में अपना घर कर लिया है, (तो फिर उजला क्यों है ?) मानो चन्द्रमा के उदय होते ही वह सिहरकर—भयमीत होकर—उजला (फँका) पड़ गया है ।

नोट—भय से चेहरा सफेद (बदरंग) हो जाता है ।

रनित भृंग-घंटावली भरित दान-मधुनीरु ।

मंद-मंद आवतु चल्यौ कुंजरु-कुंज-सर्मीरु ॥ ५९० ॥

अन्वय—भृंग-घंटावली रनित मधुनीरु-दान झरित कुंज-सर्मीरु-कुंजरु मंद-मंद चल्यौ आवतु ।

रनित=रणित=बजते हुए । भृंग=भौंरे । घंटावली=घंटों की कतार, बहुत-से घंटे । दान=यौवन-मदान्ध हाथी की कनपटी फोड़कर चूनेवाला रस या मद । मधुनीरु=मकरंद । कुंजरु=हाथी । कुंज-सर्मीरु=कुंज की हवा, कुंजों से होकर बहनेवाली वायु जो छाया और पुष्प के संसर्ग से ठंडी और सुगन्धित भी होती है ।

भौंरे-रुपी बंटे बज रहे हैं और मकरन्द-रुपी गज-मद भर रहा है । कुञ्ज-सर्मीर-रुपी हाथी मन्द-मन्द चला आ रहा है ।

नोट—यह त्रिविध समीर का अतीव सुन्दर वर्णन है ।

रही रुको क्यौं हूँ सु चलि आधिक राति पधारि ।

हरति तापु सब द्यौस कौ उर लगि यारि वयारि ॥ ५९१ ॥

अन्वय—स्की रही सु थ्यौं हूँ चकि आधिक राति पधारि यारि बयारि उर लगि थौस कौ सब तापु हरति ।

पधारि = आकर । तापु = ज्वाला । थौस = दिन । यारि = प्रियतमा ।

(अन्य समय तो) रुकी रही, किन्तु किसी प्रकार भी—किसी छल-बक से—चलकर, आधी रात को पधारकर, वह प्रियतमा-रूपी, (ग्रीष्म-काल की) हवा हृदय से लगकर, दिन-भर के सब तापों को दूर करती है—(जिस प्रकार गुप्त प्रेमिका अन्य समय तो किसी प्रकार रुकी रहती है, पर आधी रात होते ही ऊपचाप चली आती और हृदय के तापों का नाश करती है, उसी प्रकार ग्रीष्म की हवा भी रुकती, आती और आधी रात में ढाती ठंडी करती है ।)

चुवतु सेद-मकरंद-कन तरु-तरु-तर विरमाइ ।

आवतु दृच्छुन-देस तैं थक्यौ बटोही-वाइ ॥ ५९३ ॥

अन्वय—मकरंद-कन-सेद चुवतु तरु-तरु-तर विरमाइ दृच्छुन-देस तैं वाइ थक्यौ बटोही आवत ।

सेद = स्वेद, पसीना । कन = बूँद । तरु = वृक्ष । तर = नीचे । विरमाइ = विलमता है या विराम लेता है, ठहरता है । वाइ = बायु, पवन ।

मकरन्द की बूँद-रूपी पसीने नूते हैं, और (सुस्ताने के लिए) प्रत्येक वृक्ष के नीचे ठहरता है । (इस प्रकार) दक्षिण-दिशा से (वसन्त काल का) पवन-रूपी थका हुआ बटोही चला आता है ।

नोट - यह भी त्रिविध समीर का उत्कृष्ट वर्णन है—‘मकरंद-कन’, ‘तरु-तरु-तर’ और ‘दृच्छुन-देस तैं थक्यौ’ से क्रमशः ‘सुगंध, शीतल और मंद’ का भाव बोध होता है । वसन्त-काल की हवा प्रायः दक्षिण की ओर से बहती भी है । मैथिल-काकिल विद्यापति कहते हैं—“सरस वसंत समय भल पावली दखिन-पवन बहु धीरे । सपनहु रूप बचन यक भाष्य मुख ते दूरि कर चीरे ।”

लपटा पुहुप-पराग-पट सनी सेद-मकरंद ।

आवति नारार-नवोढ़ लौं सुखद बायु गति-मंद ॥ ५९३ ॥

अन्वय—पुहुप-पराग-पट लपटा मकरंद-सेद-सनी नवोढ़ नारि लौं सुखद बायु मंद-गति आवति ।

पुहुप = फूल । पराग = फूल की धूल । पट = वस्त्र । सेद = स्वेद = पसीना । मकरंद = फूल का रस । नवोढ़ नारि = नवयौवना श्री, जो यौवन-मद-मत्त या स्तन-भार-नम्र होकर इठलाती (मन्द-मन्द) चलती है । लौं = समान । वायु = हवा ।

फूलों के पराग-रूपी वस्त्र से लिपटी हुई (आच्छादित) और मकरंद-रूपी पसीने से सनी हुई (लिप), नवयुवती श्री के समान, सुख देनेवाली वायु मंद-मंद गति से आ रही है ।

रुक्यौ साँकरैं कुंज-मग करतु भाँझि भकुरातु ।

मंद-मंद मारूत-तुरँगु खूँदतु आवतु जातु ॥ ५९४ ॥

अन्वय—मारूत-तुरँगु कुंज साँकरैं मग रुक्यौ भाँझि करतु भकुरातु मंद-मंद खूँदतु आवतु जातु ।

साँकरैं = तंग । कुंज-मग = कुंज के रास्ते । करत भाँझि = हिनहिनाता हुआ । शकुरातु = झोंके (वेग) से चलता हुआ । मारूत-तुरँगु = पवन-रूपी घोड़ा । खूँदतु = खूँदी (जमैती) करता हुआ ।

पवन-रूपी घोड़ा कुंज के तंग रास्ते में रुकता, हिनहिनाता (शब्द करता) और झोंक से आता हुआ, तथा मंद-मंद गति से जमैती करता (डुमुक चाल चलता) हुआ, आता और जाता है ।

कहति न देवर की कुवत कुलतिय कलह डराति ।

पंजर-गत मंजार ढिग सुक लौं सूकति जाति ॥ ५९५ ॥

अन्वय—देवर की कुवत कहांत न कुलतिय कलह डराति, मंजार ढिग पंजर-गत सुक लौं सूकति जाति ।

कुवत = खराब बात, शरारत, छेड़छाड़ । पंजर-गत = पिंजड़े में बन्द । मंजार = मार्जार = चिक्षी । सुक = शुक = सुग्गा, तोता ।

(अपने पर आसक्त हुए) देवर की शरारत किसीसे कहरी नहीं है (क्योंकि) कुलवधू (होने के कारण) भगड़े से डरती है—(बात प्रकट होते ही वर में कलह मचेगा, इस डर से वह देवर का छेड़खानियों का चर्चा नहीं करता) ।

बिल्ली के पास रखे हुए पिंजड़े में बन्द सुगे के समान (इस अप्रतिष्ठा के दुःख से वह) सूखती जाती है ।

नोट— यहाँ खीं सुगा है, कलह का डर पिंजड़ा है और देवर (पति का छोटा भाई) बिल्ली है । ऊपर से सतीत्व-रक्षा की चिंता भी है ।

पहुला-हारु हियैं लसै सन की बेंदी भाल ।

राखति खेत खरे-खरे खरे उरोजनु बाल ॥ ५९६ ॥

अन्वय— पहुला-हारु हियैं लसै सन की बेंदी भाल, खरे उरोजनु बाल खरे-खरे खेत राखति ।

पहुला = प्रफुला = कुँइ, कुमुद, काँच के छोटे-छोटे दाने । लसै = शोभता है । सन = सनई, जिसके फूल की टिकुली देहाती लियाँ पहनती हैं । खरे-खरे = खड़ी-खड़ी । खरे = खड़े (तने) या ऊँचे उठे हुए । उरोजनु = कुचों (स्तनों) से ।

कुमुद की माला हृदय में शोभ रही है, और सन के फूल की बेंदी जलाट पर । (इस प्रकार) तने हुए स्तनोंवाली वह युवती खड़ी-खड़ी (अपने) खेत की रखवाली कर रही है ।

नोट— पीनस्तनी ग्रामीण नाथिका का वर्णन है । नीचे के दो दोहों में भी ग्रामीण नाथिका का ही वर्णन मिलेगा ।

गोरी गढ़कारी परै हँसत कपोलनु गाड़ ।

कैसी लसति गंवारि यह सुनकिरवा की आड़ ॥ ५९७ ॥

अन्वय— गोरी गढ़कारी हँसत कपोलनु गाड़ परं, सुनाकरवा की आड़ यह गंवारि कैसी लसति ।

गढ़कारी = गुलशुल, जिसके शरीर पर इतना मांस गडा हुआ हो कि देह गुलगुल जान पड़े । हँसते = हँसते समय । कपोलनु = गालों पर । गाड़ = गदा । लसति = शोभती है । सुनकिरवा = स्वर्गकीट—एक प्रकार का सुनदला कीड़ा, जिसके पंख बड़े चमकीले होते हैं, जिन्हें (कहीं दूट पड़ा पाकर) ग्रामीण युवतियाँ टिकुली की तरह साटती हैं । आड़ = लम्बा टीका ।

गोरी है, गुलशुल है, (फलतः) हँसते समय उसके गालों में गड़े पड़े

जाते हैं। सुनकिरवा के पंख का टीका लगाये यह देहाती युवती कैसी अच्छी लगती है?

गदराने तन गोरटी ऐपन आड़ लिलार।

हूँछ्यौ दै इठलाइ दग करै गँवारि सु मार॥ ५९८॥

अन्वय—गोरटी तन गदराने लिलार ऐपन आड़ हूँछ्यौ दै दग इठलाइ गँवारि सु मार करै।

गदराने=गदराये (खिले) हुए, जवानी से चिकनाये हुए। गोरटी=गोरी, गौरवर्ण। ऐपन=चावल और हल्दी एक साथ पीसकर उससे बनाया हुआ लेप। आड़=टीका। लिलार=ललाट। हूँछ्यौ दै=गँवारपन दिखलाकर। सु मार=अच्छी मार, गहरी चोट।

गोरे शरीर में जवानी उमड़ आई है। ललाट में ऐपन का टीका लगा है। गँवारपन दिखलाकर आँखों को नचाती हुई—वह ग्रामीण युवती अच्छी चोट करती है—(दर्शकों को खूब धायल करती है।)

सुनि पग-धुनि चितई इतै न्हाति दियैई पीठि।

चकी झुकी सकुची डरी हँसी लजीली ढीठि॥ ५९९॥

अन्वय—पीठि दियैई न्हाति पग-धुनि सुनि इतै चितई, चकी, झुकी, सकुची, डरी, लजीली ढीठि हँसी।

पग-धुनि=पैर की आवाज, आहट। चितई इतै=इधर देखा। पीठि दियैई न्हाति=पीठ की आड़ देकर नहा रही थी। चकी=चकित होना। लजीली ढीठि=सलज्ज दृष्टि।

(उस ओर) पीठ करके ही नहा रही थी कि (प्रीतम के) पैर की धमक सुनकर (मुँह फेरकर) इधर (पीठ की ओर) देखा, और (प्रीतम को) देखकर चकित हुई, झुक गई, लजा गई, डर गई और लजीली नजरों से हँस पड़ी।

नोट—स्नान करते समय नायिका अपने को अकेली जान स्वच्छुंदता से कुच आदि अंगों को खोलकर खूब मल-मल नहा रही थी। तबतक नायक पहुँच गया। उसी समय का चित्र है।

नहिं अन्हाइ नहिं जाइ घर चित चिहुँच्छौ तकि तीर ।

परसि फुरहरी लै फिरति विहँसति धँसति न नीर ॥ ६०० ॥

अन्वय—नहिं अन्हाइ नहिं घर जाइ तीर तकि चित चिहुँच्छौ नीर परसि फुरहरी लै फिरति विहँसति न धँसति ।

अन्हाई=स्नान कर । चित चिहुँच्छौ=मन प्रेमासक हो गया । तीर=यमुना तट । परसि=सर्श कर । फुरहरी लै=फुरहरी लेना, मुख से पानी लेकर फव्वारा छोड़ना । धँसति=पैठती है । नीर=पानी ।

न स्नान करती है, न घर जाती है, (श्यामला यमुना के) तट को देखकर (श्यामसुन्दर की याद में उमका) चित प्रेमासक हो गया है । अतएव, जल को सर्श कर, फुरहरी लेकर लौट आती है, और मुसज्जुराती है, किन्तु पैठती नहीं है (कि कहों इस श्यामल जन में श्रीकृष्ण न छिपे हों, वरना खूब छक्क़गी !)

सप्तम शतक

मुँह पवारि मुँडहरु भिजै सीस सजल कर छाइ ।

मौरि उचै धूँटेनु तै नारि सरोवर न्हाइ ॥ ६०१ ॥

अन्वय—मुँह पवारि मुँडहरु भिजै सीस सजल कर छाइ, मौरि उचै धूँटेनु तै नारि सरोवर न्हाइ ।

मुँडहरु=सिर का अगला भाग, ललाट । सजल=जलयुक्त, जलपूर्ण । मौरि=मौढ़ि=मन्तक । उचै=ऊँचा उठाकर । धूँटेनु तै=बुटनों से । न्हाइ=स्नान करती है ।

मुख धोकर, ललाट भिगोकर, और सिर से जलयुक्त हाथों को छुलाकर (बालों पर जल डालकर), सिर ऊँचा किये और बुटनों के बन से, वह स्त्री पोखरे में स्नान कर रही है ।

विहँसति सकुचति-सी दिएं कुच आँचर विच बाँह ।

भीजैं पट तट कौं चली नहाइ सरोवर माँह ॥ ६०२ ॥

अन्वय—सरोवर माँह नहाइ विहँसति सकुचति-सी, बाँह कुच आँचर विच दिएं भीजैं पट तट कौं चली ।

कुच = स्तन । बाँह = बाँह, हाथ । पट = कपड़ा । तट = किनारा । नहाइ = स्नान कर । सरोवर = पोखरा ।

सरोवर में स्नान कर सुस्कुराती और सकुचाती हुई-सी अपने हाथों को कुचों और अंचल के बीच में दिये हुए गीले कपड़े पहने ही तट की ओर चली ।

नोट—“कुच आँचर विच बाँह” में स्वाभाविकता और रस-मर्मशता खूब है । सहृदयता से पूछिए कि कहीं किसी घाट पर परखा है ।

मुँह धोवति ऐँड़ी घसति हँसति अनगवति तीर ।

घसति न इन्दीवर-नयनि कालिन्दी कै नीर ॥ ६०३ ॥

अन्वय—तीर मुँह धोवति ऐँड़ी घसति हँसति अनगवति इन्दीवर-नयनि कालिन्दी कै नीर न घसति ।

अनगवति = जान-बूझकर देर करती है । इन्दीवर = नील कमल । इन्दीवर-नयनि = कमलनयनी । कालिन्दी = यमुना ।

(वह कामिनी) घाट ही पर (श्रीकृष्ण को देखकर) मुँह धोती, ऐँड़ी घिसती, हँसती और जान-बूझकर (नहाने में) विलंब करती है; (किन्तु) वह कमल-लोचना, यमुना के पानी में नहीं पैठती ।

नहाइ पहिरि पढु डटि कियौ बेंदी मिसि परनामु ।

दग चलाइ घर कौं चली विदा किए घनस्यामु ॥ ६०४ ॥

अन्वय—नहाइ पढु पहिरि डटि बेंदी मिसि परनामु कियौ, दग चलाइ घनस्यामु विदा किए घर कौं चली ।

पट = वस्त्र । मिसि = वहाना । दग चलाइ = आँखों के इशारे कर ।

स्नान कर, कपड़ा पहन, सजिज्जत हो, बेंदी लगाने के बहाने प्रणाम किया—बेंदी लगाते समय मस्तक से हाथ कुलाकर इशारे से प्रणाम किया । फिर, आँखों के इशारे से श्रीकृष्ण को बिदा कर स्वयं भी घर को चली ।

चितवत जितवत हित हियैं कियैं तिरीछे नैन ।

भीजैं तन दोऊ कँपैं क्यौंहूँ जप निवरै न ॥ ६०५ ॥

अन्वय—नैन तिरीछे कियैं चितवत, हियैं हित जितवत, भीजैं तन दोऊ कँपैं जप क्यौंहूँ निवरै न ।

चितवत = देखते हैं । जितवत = जिताते हैं । निवरै न = नहीं (निवृत) समात होता या निवटा ।

आँखें तिरछी किये (एक दूसरे को) देखते हैं, और (अपने-अपने) हृदय के प्रेम को जिताते हैं—अपने-अपने प्रेम को उत्कृष्ट (विजेता) प्रमाणित करते हैं । (यों) भीगे हुए शरीर से दोनों काँप रहे हैं, (किन्तु उन दोनों का) जप किसी प्रकार समात नहीं होता ।

नोट—नायक और नायिका (दोनों) स्तन के बाद जप करते हुए ही एक दूसरे को देख रहे हैं । दोनों ही जान-बूझकर जप करने में देर कर रहे हैं । दर्शन-लाजसा के आगे सर्दी की कँकँपी क्या चीज है !

हग थिरकौहैं अधबुले देह थकौहैं ढार ।

सुरति-सुखित-सो देखियतु दुखित गरभ कै भार ॥ ६०६ ॥

अन्वय—अधबुले हग थिरकौहैं देह थकौहैं ढार गरम के भार दुखित सुरति-सुखित-सी देखियतु ।

हग = आँखें । थिरकौहैं = थिरकते हुए-से, बहुत धीरे-धीरे नाचते हुए-से । थकौहैं ढार = थके हुए के ठंग के, थके हुए-से । सुरति-सुखित-सी = तुरत समागम करके प्रसन्न हुई-सी । गरम = गर्भ ।

अधबुले नेत्र थिरकते-से हैं - मन्द-मन्द गति से इधर-उधर होते हैं—आँख शरीर थका हुआ-वा है । गर्भ के बोझ से दुखित (वह नायिका) समागम करके प्रसन्न हुई-सी दाढ़ पड़ती है । (लक्षणों से अम होता है कि वह गर्भ के सार से दुखित नहीं है, क्योंकि समागम-विनिय चिह्न प्रत्यक्ष हैं) ।

नाट—गर्भवती नायिका का वर्णन—आँखों की मन्द (आलस-भरी) गति, उनका आया खुला रहना (जसकी-सी लेना) और देह थकौहैं-सी मालूम पड़ना । ये लक्षण वास्तव में गर्भ और समागम (दोनों) के सूचक हैं ।

ज्यौं कर त्यौं चुहुँटी चले ज्यौं चुहुँटी त्यौं नारि ।

छवि सौं गति-सी लै चलै चातुर कातनिहारि ॥ ६०७ ॥

अन्वय—ज्यौं कर त्यौं चुहुँटी चले ज्यौं चुहुँटी त्यौं नारि, चातुर कातनिहारि छवि सौं गति-सी लै चलै ।

कर=हाथ । चुहुँटी=चुटकी । नारि=गर्दन । गति-सी लै चलै=गति-सी लेकर चलती है, नृत्य-सी कर रही है ।

जिस प्रकार हाथ चलता है, उसी प्रकार चुटकी भी चलती है और, जिस प्रकार चुटकी चलती है, उसी प्रकार गर्दन भी चलती है—इधर-उधर हिलती है । यह चतुर चरखा कातनेवाली अपनी इस शोमा से (मानो नृत्य की) गति-सी ले रही है ।

अहे दहेंडी जिन धरै जिनि तूँ लेहि उतारि ।

नीकै हैं छीके छवै ऐसी ही रहि नारि ॥ ६०८ ॥

अन्वय—अहे तूँ जिन दहेंडी धरै जिनि उतारि लेहि नारि नीकै हैं ऐसी ही छीके छवै रहि ।

अहे=अरी । दहेंडी=दही की मटकी । छीके=सींका, मटकी रखने के लिए बना हुआ सिक्कहर, जिसे छृत या छृप्पर में लटकाते हैं ।

अरी ! तू न तो मटकी को (सींके पर) रख, न उसे नीचे उतार । हे सुन्दरी ! (तेरी यह अदा) खड़ी अच्छी लगती है—तू इसी प्रकार सींके को छृती हुई खड़ी रह ।

नोट—सुन्दरी युवती खड़ी होकर और ऊपर बाँहें उठाकर ऊँचे सींके पर दहेंडी रख रही है । खड़ी होने से उसका अंचल कुछ खिसक पड़ा और बाँहें ऊपर उठाने से कुच की कोर निकल पड़ी । रसिक नायक उसकी इस अदा पर सुरक्ष होकर कह रहा है कि इसी सूरत से खड़ी रह—इत्यादि । इस सरस भाव के समझदार की मौत है ! चतुर्थ शतक का ३६२ बाँ दोहा देखिए ।

देवर फूल हने जु सु-सु उठे हरपि अँग फूलि ।

हँसी करति ओषधि सखिनु देह-दोरनु भूलि ॥ ६०९ ॥

अन्वय—देवर जु फूल हने सु-सु अँग हरपि फूकि उठे सखिनु भूलि देह-ददोरनु औषधि हँसी करति ।

इने=मारना । देह-ददोरनु=देह में पड़े हुए चोट के चकते ।

देवर ने जिन-जिन अंगों में फूल से मारा, सो (उस फूल के लगते ही भौजाई के) वह-वह अंग आनन्द से फूल उठे, (क्योंकि देवर से उसका गुप्त 'प्रेम' था) किन्तु सखियाँ भूल से (उस सूजन अथवा पुलक को) देह के दोदरे समझकर दवा करने लगीं । (यह देख मावज) हँस पड़ी (कि सखियाँ मी कैसी मूर्ख हैं जो मेरे प्रेम से फूजे हुए अंग को फूल की चोट के दोदरे समझ रही हैं !)

चलत जु तिय हिय पिय दई नख-रेखानु खरौंट ।

सूकन देत न सरसई खोंटि-खोंटि खत खौंट ॥ ६१० ॥

अन्वय—चलत जु तिय हिय पिय नख-रेखानु खरौंट दई खत खौंट खोंटि-खोंटि सरसई सूकन न देत ।

नख-रेखानु=नहँ की छिठ्ठोर से बनी रेखाएँ । खरौंट=खरोंच, छिठ्ठोर, चमड़ा छिल जाने से बना हुआ घाव । सरसई=ताजगी, गीलापन । खत=घाव । खौंट=खोंटी, घाव के ऊपर का सूखा हुआ भाग ।

चलते समय में जो प्रिया का छाती में प्रांतम ने नखक्षत की रेखा दे दी—चलते समय प्रांतम द्वारा मर्दित किये जाने पर प्रिया के कुचों में जो नहँ की छिठ्ठोर लग गई—सो उस वाव का खोंटी को (वह नायिका) खोंट-खोंटकर उसकी सरसता सूखने नहीं देती—वाव को सदा ताजा (हरा) बनाये रखती है (ताकि इसमें मी प्रांतम सदा याद रहें ।)

पारचौ सोरु सुहाग को इनु चिनु हीं पिय-नेह ।

उनदौहीं अँखियाँ कक्क के अलसौहीं देह ॥ ६११ ॥

अन्वय—उनदौहीं अँखियाँ के अलसौहीं देह कक्क इनु चिनु हीं पिय-नेह सुहाग का सोरु पारचौ ।

सौद पारचौ=शोर या गुहरत मचा दी है, रुकाति फैला दी है । सुहाग=

सौभाग्य । चिनु हीं पिय-नेह=पति-प्रेम के विना ही । उनदौहीं=उनींदी, ऊँघती हुई । ककै=करके । कै=या । अलसौहीं=अलसाई हुई ।

ऊँधीं हुई आँखें या अलसाई हुई देह बना-बनाकर इस खींचे ने विना प्रियतम के हाँ अपने सुहाग की ख्याति फैला दी है ।

नोट—सखी नायिका से कह रही है कि यद्यपि तुम्हारा प्रीतम तुम्हारी सौत पर अनुरक्त नहीं, तो भी वह उनींदी आँखें, अलसाई देह आदि चेष्टाएँ दिखाकर जनाती है कि सदा नायक के साथ रति-कीड़ा में जगी रहती है ।

वहु धन लै अहसानु कै पारो देत सराहि ।

वैद-वधू हँसि भेद सौं रही नाह-मुँह चाहि ॥ ६१२ ॥

अन्वय—वहु धन लै अहसानु कै पारो सराहि देत वैद-वधू भेद सौं हँसि नाह-मुँह चाहि रही ।

अहसानु कै=अपनी मिहरबानी या उपकार जताकर । पारो=पारे की भस्म, कामोदीपक रसायन । भेद सौं=मर्म के साथ, रहस्यपूर्ण । नाह=पति । चाहि=देखना ।

बहुत धन लेकर, बड़े अहसान के साथ, खूब सराहकरं पारा देता है (कि इसके खाते ही तुम्हारा नपुंसकत्व दूर हो जायगा ।) यह देख वैद्यजी की खींचे रहस्यमरी हँसी हँसकर अपने (नपुंसक) पति (वैद्यजी) का सुख देखने लगी (कि आप तो स्वयं नपुंसक हैं, फिर यहीं दवा खाकर आप क्यों नहीं पुंसत्व प्राप्त करते ? लोगों को व्यर्थ क्यों ठा रहे हैं !)

ऊँचै चितै सराहियतु गिरह कवूतरु लेतु ।

भलकित दग मुलकित बदनु तनु पुलकित किहिं हेतु ॥ ६१३ ॥

अन्वय—ऊँचै चितै गिरह लेतु कवूतरु सराहियतु, किहिं हेतु दग ज्ञलकित बदनु मुलकित तनु पुलकित ।

ऊँचै=ऊपर की ओर । चितै=देखकर । मुलकित=हँसती है । पुलकित=रोमांचित होती है ।

ऊपर की ओर देखकर गिरह मारते हुए कवूतर को सराह रही हो । किन्तु किसलिए तुम्हारी आँखें चमक रही हैं, मुख हँस रहा है और शरीर रोमांचित हो

रहा है । (निस्संदेह तुम उस कवूतर के मालिक छैल-छर्वाले विलासी पर आसन्न हो, तभी तो उसके गिरहबाज कवूतर को देखते ही उसकी याद में तुम ऐसी चेष्टाएँ दिखा रही हो !)

कारे बरन डरावने कत आवत इहिं गेह ।

कै वा लखी सखी लखै लगै थरहरी देह ॥ ६१४ ॥

अन्वय—कारे बरन डरावने इहिं गेह कत आवत कै वा लखी सखी लखै देह थरहरी लगै ।

बरन = रंग । कत = क्यों । गेह = घर । कै = कई बार । लखी = देखा । थरहरी लगै = थरथरी या कँपकँपी होती है ।

(यह) काले रंग का डरावना मनुष्य (श्रीकृष्ण) इस घर में क्यों आता है ? मैं इसे कई बार देख चुकी हूँ, और हे सखी ! इसे देखते ही मेरी देह में थरथरी लग जाती है—मैं डर से थरथर कँपने लगती हूँ ।

और सबै हरपी हँसति गावति भरी उछाह ।

तुहीं बहू विलखो फिरै क्यों देवर कै व्याह ॥ ६१५ ॥

अन्वय—और सबै हरपी हँसति उछाह-भरी गावति देवर कै व्याह बहू तुहीं क्यों विलखी फिरै ।

उछाह = उत्साह । विलखी = व्याकुल ।

और सबै चियाँ तो प्रसन्न हुई हँसती हैं और उत्साह में भरी गीत गा रही हैं । किन्तु देवर के व्याह में, हे बहू ! तू ही क्यों व्याकुल हुई फिरती हो ?

नोट—देवर पर भौजाई अनुरक्त हैं । अब यह सोचकर, कि देवरानी के आते ही मुझपर देवर का ध्यान न रहेगा, यह व्याकुल है ।

रवि बंदौं कर जोरि ए सुनत स्याम के बैन ।

भए हँसौहैं सबनु के अति अनखौहैं नैन ॥ ६१६ ॥

अन्वय—कर जोरि रवि बंदौं पु स्याम के बैन सुनत सबनु के अति अनखौहैं नैन हँसौहैं मण ।

बंदौं = प्रणाम करो । हँसौहैं = हास्यपूर्ण । अनखौहैं = कुद्र ।

हाथ जोड़कर सूर्य को प्रणाम करो—यह श्रीकृष्ण का वचन सुनकर (चीर-हरण होने के कारण नम बनी हुई) सभी गोपियों की अत्यन्त क्रोधित आँखें भी हँसीली बन गईं (कि इनका चतुराई तो देखो, इन हाथों से ढकी हुई रही-सही लज्जा भी ये लूटना चाहते हैं !)

तंत्री-नाद कवित्त-रस सरस राग रति-रंग ।

अनवूडे वूडे तरे जे वूडे सब अंग ॥ ६१७ ॥

अन्वय—तंत्री-नाद कवित्त-रस सरस राग रति-रंग अनवूडे वूडे जे सब अंग वूडे तरे ।

तंत्री-नाद=वीणा की झंकार । रति-रंग=प्रेम का रंग । अनवूडे=जो नहीं छूते । तरे=तर गये, पार हो गये ।

वीणा की झंकार, कविता का रस, सरस गाना और प्रेम (अथवा रति-क्रीढ़ा) के रंग में जो नहीं छूता—तलोंन नहीं हुआ (समझो कि) वही छूत गया—अपना जीवन नष्ट किया; और जो उसमें सर्वांग छूत गया—एकदक गर्क हो गया, (समझो कि) वही तर गया—पार हो गया—इस जीवन का यथार्थ फल पा गया ।

गिरि तैं ऊँचे रसिक-मन वूडे जहाँ हजारु ।

वहै सदा पसु-नरनु कौं प्रेम-पयोधि पगारु ॥ ६१८ ॥

अन्वय—गिरि तैं ऊँचे रसिक-मन जहाँ हजारु वूडे, वहै प्रेम-पयोधि नरनु-पसु कौं सदा पगारु ।

पयोधि=समुद्र । पगारु=एकदम छिछला, पायान ।

पर्वत से भी ऊँचे रसिकों के मन जहाँ हजारों छूत गये, वही प्रेम का समुद्र नर-पशुओं के लिए सदा छिछला ही रहता है—(इतना छिछला रहता है कि उसमें उनके पैर भी नहीं छूतते !)

चटक न छाँड़तु घटत हूँ सज्जन नेहु गँभीरु ।

फीकौ परै न वह फटै रँग्यौ चोल-रँग चोरु ॥ ६१९ ॥

अन्वय—सज्जन गँभीर नेहु घटत हूँ चटक न छाँड़तु चोल-रँग-रँग्यौ चीरु फटै वह फीकौ न परै ।

चटक = चटकीलापन । सजन = सदाचारी, सहृदय । ब्रह्म = भले ही ।
चोल = मजीठ । चीर = वस्त्र ।

सजनों का गम्भीर प्रेम वटने पर भी अपनी चटक नहीं छोड़ता—कम हो जाने पर भी उसकी मधुरिमा नष्ट नहीं होती । जिस प्रकार मँजीठ के रंग में रँग गा हुआ वस्त्र फट भले ही जाय, किन्तु फीका नहीं पड़ता ।

सम्पति केस सुदेस नर नवत दुहुनि इक वानि ।

विभव सतर कुच नीच नर नरम विभव की हानि ॥ ६२० ॥

अन्वय—सम्पति केस सुदेस नर नवत दुहुनि इक वानि, कुच नीच नर विभव सतर विभव की हानि नरम ।

सम्पति = धन, वृद्धि, ऐश्वर्य । सुदेस नर = सजन पुरुष, भलामानस । वानि = आदत । विभव = विभव = धन, यौवन । सतर = ऐंठ ।

ऐश्वर्य पाकर—बढ़ने पर—केश और सजन पुरुष नरम पड़ जाते हैं, इन दोनों की एक आदत है । कुच और नीच आदमी विभव पाकर ऐंठने लगते हैं, और विभव की हानि होते ही नरम हो जाते हैं ।

न ए विससियहि लखि नए दुर्जन दुमह सुभाइ ।

आँटै परि प्राननु हरैं काँटैं लौं लगि पाइ ॥ ६२१ ॥

अन्वय—ए दुमह सुभाइ दुर्जन नए लखि विससियहि न, आँटै परि काँटै लौं पाइ लगि प्राननु हरैं ।

विससियहि = विश्वास कीजिए । नए = नम्र बने हुए । आँटै परि = दाँव लगने पर, घात पाने पर । पाइ = पैर ।

इन दुःसह स्वभाववाले दुर्जनों को नच्र होते देखकर विश्वास न कीजिए । घात लगने पर ये काँटे के समान पैर में लगकर प्राण ही ले लेते हैं ।

नोट—नवनि नीच के व्यति दुखदाई ।

जिमि अंकुस, धनु, उरग, विलाई ॥—तुलसीदास

जेती सम्पति कृपन के तेती सम्पति जोर ।

बढ़त जात ज्यौं-ज्यौं उरज त्यौं-त्यौं होत कठोर ॥ ६२२ ॥

अन्वय—कृपन कै सम्पति जेती तेती सूमति जोर, उरज ज्यौं-ज्यौं बढ़त जात त्यौं-त्यौं कठोर होत ।

कृपन = सूम, शठ । सूमति = सूमझापन, शठता । उरज = कुच ।

सूमडे आदमी का धन जितना ही बढ़ता है, उतनी ही उसकी शठता भी जोर पकड़ती जाती है । (जिस प्रकार नवयौवना के) कुच ज्यौं-ज्यौं बढ़ते हैं, त्यौं-त्यौं कठोर होते जाते हैं ।

नीच हियैं हुलसे रहैं गहे गेंद के पोत ।

ज्यौं-ज्यौं माथै मारियत त्यौं-त्यौं ऊँचे होत ॥ ६२३ ॥

अन्वय—गेंद के पोत गहे नीच हियैं हुलसे रहैं, ज्यौं-ज्यौं माथै मारियत त्यौं-त्यौं ऊँचे होत ।

हियैं = हृदय । हुलसे रहैं = हुजास से भरा रहता है, उत्साह से भरा हुआ ।
पोत = ढंग, स्वभाव ।

गेंद का ढंग पकड़े हुए नीच आदमी का हृदय (अपमानित किये जाने पर मी) सदा हुजास से भरा हो रहता है । (जिस प्रकार गेंद को) ज्यौं-ज्यौं माथै में मारिए, त्यौं-त्यौं वह ऊँची ही होती है ।

नोट—कमीना सीनः डट फुटवाल के फैसन पे चलता है ।

जो सिर पर लात मारे और ऊपर को उछलता है ॥—प्रीतम

कैसैं छोटे नरनु तैं सरत बड़नु के काम ।

मढ़यौ दमामौ जातु क्यौं कहि चूहे कैं चाम ॥ ६२४ ॥

अन्वय—छोटे नरनु तैं बड़नु के काम कैसैं सरत । कहि चूहे कैं चाम दमामौ क्यौं मढ़यौ जातु ।

छोटे नरनु = क्षुद्र मनुष्यों से । सरत = सिद्ध या पूरा होता है । दमामौ = नगाड़ा । चाम = चमड़ा ।

ओछे आदमियों से—छुटहों से—बड़े आदमी का काम कैसे सध सकता है—कमी पूरा नहीं होता । कहो, चूहे के चाम से नगाड़ा कैसे मढ़ा (छवाया) जा सकता है ? कमी नहीं ।

कोटि जतन कोऊ करौ परै न प्रकृतिहिं बीचु ।

नल-बल जलु ऊँचैं चढै अंत नीच कौ नीचु ॥ ६२५ ॥

अन्वय—कोटि जतन कोऊ करौ प्रकृतिहिं बीचु न परै, नल-बल जलु ऊँचैं चढै अंत नीचु नीच कौ ।

प्रकृति=स्वभाव । बीचु=फर्क । नल-बल=नल का जोर ।

करोड़ों यत्न कोई क्यों न करे, किन्तु स्वभाव में फर्क नहीं पड़ता—
स्वभाव नहीं बदलता । नल के जोर से पानी ऊपर चढ़ता है, पर अंत में वह
नीच नीच ही को बढ़ता है । (पानी का स्वाभाविक प्रवाह जब होगा तब नीचे
ही की ओर) ।

लटुवा लौं प्रभु कर गहैं निगुनी गुन लपटाइ ।

वहै गुनी कर तैं छुटै निगुनीयै है जाइ ॥ ६२६ ॥

अन्वय—प्रभु कर गहै लटुवा लौं निगुनी गुन लपटाइ, वहै गुनी कर तैं
छुटै निगुनीयै है जाइ ।

लटुवा=लट्टू । लौं=समान । गुन=(१) गुण (२) रस्सी, डोरा ।
गुनी=(?) गुणयुक्त (२) डोरा-युक्त । निगुनी=(१) गुण-रहित (२)
डोरा-रहित । यै=ही ।

प्रभु के हाथ पकड़ते ही—अपनाते ही—लट्टू के समान गुणहीन में भी
'गुण' ('लट्टू' के अर्थ में 'डोरा') लिपट जाता है, किन्तु वही गुणी उनके हाथ
में छूटते ही—इंडवर से विमुच होते ही—पुनः गुण-हीन का गुण-हीन ही
('लट्टू' के अर्थ में 'डोरा'-रहित) रह जाता है ।

चलत पाइ निगुनी गुनी धनु मनि मुत्तिय माल ।

भेट होत जयसाहि सौं भागु चाहियतु भाल ॥ ६२७ ॥

अन्वय—निगुनी गुनी धनु मनि मुत्तिय माल पाइ चलत जयसाहि सौं
भेट होत भागु माल चाहियतु ।

पाइ=पाकर । मुत्तिय=मुक्ता, मोती । जयसाहि=विहारीलाल के
आश्रयदाता जयपुर-नरेश महाराज जयसिंह । भाल=अच्छा, कपाल ।

निगुणी और गुणी—मर्मा—वहाँ से धन, मणि और मुक्ता की माला

पाकर चलते हैं। हाँ, जयसिंह से मेंट होने के लिए भाग्य अच्छा होना चाहिए। (उनसे मेंट ही होना कठिन है, यदि मेंट हो गई, तो फिर धन का क्या पूछना।)

यौं दल काढ़े बलख तैं तैं जयसाहि भुवाल ।

उदर अधासुर कैं परै ज्यौं हरि गाइ गुवाल ॥ ६२८ ॥

अन्वय—जयसाहि भुवाल, बलख तैं दल तैं यौं काढ़े ज्यौं अधासुर कैं उदर परै गाइ गुवाल हरि ।

दल = सेना । बलख = अफगानिस्तान का एक प्रान्त । भुवाल = भूपाल = राजा । उदर = पेट । अधासुर = कंस का साथी एक राक्षस, जो सर्प के रूप में आकर ब्रज के बहुत-से ग्वालों और गौओं को निगल गया था ।

हे जयसिंह महाराज, बलख-देश से (शत्रुओं के बीच में फँकी हुई) अपनी सेना को आपने यौं निकाल लिया, जिस प्रकार अधासुर के पेट में पड़ा हुई गौओं और ग्वालों को श्रीकृष्ण ने (निकाल लिया था) ।

अनी बड़ी उमड़ी लखैं असिवाहक भट भूप ।

मंगलु करि मान्यौ हियैं भो मुँहु मंगलु-रूप ॥ ६२९ ॥

अन्वय—बड़ी उमड़ी अनी असिवाहक लखैं भट भूप हियैं मंगलु करि मान्यौ मुँहु मंगलु-रूप भो ।

अनी = सेना । असिवाहक = तलवार चलानेवाला, तलवारधारी । भट = शूर-वीर । मंगल = कुशल, आनन्द । मंगलु = मंगलग्रह, जिसका रंग लाल माना गया है । रूप = सदृश ।

(शत्रुओं का) बड़ी उमड़ी हुई सेना को देखकर तलवारधारी शूर-वीर राजा ने उस हृदय में मंगल के समान जाना—आनन्ददायक समझा—और उनका मुँह (आनन्द और क्रोध से) मंगल (ग्रह) के समान (लाल) हो गया ।

रहति न रन जयसाहि-मुख लखि लाखनु की फौज ।

जाँचि निराखरऊँ चलैं लैं लाखनु की मौज ॥ ६३० ॥

अन्वय—जयसाहि-मुख लखि लाखनु की फौज रन न रहति जाँचि निराखरऊँ लाखनु की मौज लैं चलैं ।

रन=युद्ध-भूमि । लखि=देखकर । लाखनु=लाखों । निराखरऊँ=गिरक्षर, वज्र-मूर्ख । मौज=बकसीस ।

जयसिंह का सुख देखकर (शत्रुओं की) लाखों की फौज भी युद्ध-भूमि में नहीं ठहर सकती । (यों ही) उनसे याचना करके—इन माँगकर—निरक्षर (वज्र-मूर्ख) भी लाखों की बकसीस ले जाता है ।

प्रतिविम्बित जयसाहिं-दुति दीपति दरपन-धाम ।

सवु जगु जीतन कौं कस्यो काय-व्यूह मनु काम ॥ ६३१ ॥

अन्वय—दरपन-धाम जयसाहिं-दुति प्रतिविम्बित दीपति मनु काम सवु जगु जीतन कौं काय-व्यूह कस्यो ।

दुति=श्रुति=चमक । दीपति=जगमगाती है । दरपन-धाम=आईने का बना हुआ घर, शीश-महल । काय-व्यूह=शरीर की सैन्य रचना ।

शीश-महल में राजा जयसिंह की श्रुति प्रतिविम्बित होकर जगमगा रही है—जिधर देखो उधर उन्हींका रूप दाख पड़ता है—मानो कामदेव ने समूचे संसार को जीतने के लिए काय-व्यूह बनाया हो—अनेक रूप धारण किये हों ।

नोट—जयपुर में महाराज जयसिंह का वह शीश-महल अवतक वर्तमान है । उसका दीवारें, छत, फर्श सब कुछ शीशे का बना है । उसमें खड़े हुए एक मनुष्य के अनेक प्रतिविम्ब चारों ओर देख पड़ते हैं ।

दुमह दुराज प्रजानु कौं क्यों न बढ़े दुखु दंदु ।

अधिक अँधेरों जग करत मिलि मावस रवि-चंदु ॥ ६३२ ॥

अन्वय—दुमह दुराज प्रजानु कौं दुखु दंदु क्यों न बढ़े, मावस रवि-चंदु मिलि जग अधिक अँधेरों करत ।

दुमह=अमदनीय, (वहाँ) अत्यन्त क्षमताशील । दुराज=दो राजा । दंदु=द्वन्द =दुख । मावस=अमावस ।

अत्यन्त क्षमताशील दो राजाओं के हाँने से प्रजा के दुःख क्यों न अत्यन्त बढ़ जायें ? अमावस के दिन सूर्य और चन्द्रमा (एक ही राशि पर) मिलकर संसार में अधिक अँधेरा कर देते हैं ।

नोट—ज्योतिष के अनुसार अमावस के दिन सूर्य और चन्द्रमा एक ही राशि पर होते हैं। आधुनिक विज्ञान भी इसका समर्थन करता है।

बसै बुराई जासु तन ताही कौ सनमानु ।

भलौ भलौ कहि छोड़ियै खोटैं ग्रह जपु दानु ॥ ६३३ ॥

अन्वय—जासु तन बुराई बसै ताही कौ सनमानु, भलौ भलौ कहि छोड़ियै खोटैं ग्रह जपु दानु ।

बुराई=अपकार। सनमानु=आदर। खोटैं=बुरे।

जिसके शरीर में बुराई बसती है—जो बुराई करता है, उसीका सम्मान होता है। (देखिए) भले ग्रहों (चन्द्र, बुध आदि) को तो भला कहकर छोड़ देते हैं—और बुरे ग्रहों (शनि, मंगल आदि) के लिए जप और दान किया जाता है।

कहै यहै सुति सुम्रत्यौ यहै सयाने लोग ।

तीन दबावत निसक हीं पातक राजा रोग ॥ ६३४ ॥

अन्वय—सुति सुम्रत्यौ यहै कहै सयाने लोग यहै, पातक राजा रोग तीन निसक हीं दबावत ।

सुति=श्रुति, वेद। सुम्रत्यौ=स्मृति। सयाने=चतुर। दबावत=सताते हैं। निसक=निःशक्ति, निर्बल, कमज़ोर। पातक=पाप।

(सभी) श्रुतियाँ और स्मृतियाँ यही कहती हैं, और चतुर लोग भी यही (कहते हैं) कि पाप, राजा और रोग—ये तीन—कमज़ोर ही को दबाते हैं—दुःख देते हैं।

बड़े न हूजै गुननु विनु विरद बड़ाई पाइ ।

कहत धत्तरे सौं कनकु गहनों गढ़यौ न जाइ ॥ ६३५ ॥

अन्वय—बड़ाई विरद पाइ गुननु विनु बड़े न हूजै, धत्तरे सौं कनकु कहत गहनों न गढ़यौ जाइ ।

हूजै=हो सकते। विरद=बाना। कनकु=(१) सोना (२) धत्तरा।

बड़ाई का बाना पा लेने से—ऊँचा नाम रख लेने से—गुण के बिना बड़े

हो नहीं सकते । 'कनक' कहे जाने पर भी—'सोने' का अर्थवाची (कनक) नाम होने पर भी धूरे से (सोने के समान) गहने नहीं गढ़े जाते ।

गुनी गुनी सब कैं कहैं निगुनी गुनी न होतु ।

सुन्यौ कहूँ तरु अरक तैं अरक समान उदोतु ॥ ६३६ ॥

अन्वय—सब कैं गुनी गुनी कहैं निगुनी गुनी न होतु अरक तरु तैं कहूँ अरक समान उदोतु सुन्यौ ?

अरक = (१) अकवन = (२) सूर्य । उदोतु = ज्योति, प्रकाश ।

सब किसी के 'गुणा-गुणा' कहने से—'गुणा-गुणी' कहकर पुकारने से—गुणहीन (कमी) गुणी नहीं हो सकता । (सब लोग 'अकवन' को 'अर्क' कहते हैं, और 'अर्क' 'मूर्द' को भी कहते हैं, सो पक नाम—(परस्पर पर्यायवाचक—होने पर भी) 'अकवन' के पेड़ से क्या कमी 'मूर्द' के समान ज्योति निकलते सुना है ?

नाहू गरजि नाहूर-गरज बोलु सुनायौ टेरि ।

फँसी फौज मैं बन्दि विच हँसी सबनु तनु हेरि ॥ ६३७ ॥

अन्वय—नाहर-गरज नाहू गरजि टेरि बालु सुनाया, फौज मैं बन्दि विच फँसी सबनु तनु हेरि हँसी ।

नाहू = पति । गरजि = गरजकर । नाहर-गरज = सिंह का गर्जन । टेरि बोलु सुनायौ = जोर से बोल सुनाया । बन्दि = घेरा । हेरि = देखकर ।

सिंह के गर्जन के समान गरजकर पति (शाकुण्ण) ने जोर से (अपना) बोल सुना दिया । (उसे सुनते ही) फौज के घेरे में कैसा हुई (स्किमणी) सब लोगों के शरीर की ओर देखकर हँस पड़ी (कि अब तुम मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते ।)

संगति सुमति न पावहीं परे कुमति कैं धंव ।

राख्यौ मेलि कपूर मैं हींग न होइ सुगंध ॥ ६३८ ॥

अन्वय—कुमति कैं धंव परे संगति सुमति न पावहीं । कपूर मैं मेलि राख्यौ हींग सुगंध न होइ ।

सुमति = सुन्दर मति, सुवृद्धि । कुमति = दुष्ट वृद्धि । धंघ = जंजाल, फेर ।
मेलि = मिलाकर ।

जो कुमति के धंघे में पड़ा रहता है—जिसे खराब काम करने की आदत-
सी लग जाती है, वह सत्संगति से भी सुमति नहीं पाता—नहीं सुधरता । कपूर
में मिलाकर भले ही रखो, किन्तु हींग सुगंधित नहीं हो सकती ।

पर-तिय-दोषु पुरान सुनि लखी मुलकि सुखदानि ।

कसु करि राखी मिल्ख हूँ मुँह आई मुसकानि ॥ ६३९ ॥

अन्वय—पर-तिय-दोषु पुरान सुनि सुखदानि मुलकि लखी, मिल्ख हूँ मुँह¹
आई मुसकानि कसु करि राखी ।

पर-तिय-दोषु = पर-स्त्री-गमन का दोष । मुलकि = हँसकर, मुस्कुराकर ।
मिल्ख = कथा बाँचनेवाले पौराणिक या व्यास ।

पर-स्त्री-प्रसंग का दोष पुराण में सुनकर उस सुखदायिनी स्त्री ने (जो
पौराणिकजी की परकार्या थी, और कथा सुनने भी आई थी) हँसकर (पौरा-
णिकजी की ओर) दंखा (कि दूसरों को तो उपदेश देते हो, और स्वयं मुझसे
फँसे हो !) और, पौराणिक मिश्रजी ने भी (अपनी प्रेमिका की हँसी देखकर)
अपने मुँह तक आई मुस्कुराहट को बलपूर्वक रोक रखा (कि कहीं लोग ताड़
न जायें !)

सब हँसत करतारि दै नागरता कै नाँव ।

गयौ गरबु गुन कौ सरबु गएँ गँवारैँ गँव ॥ ६४० ॥

अन्वय—नागरता कै नाँव सबै करतारि दै हँसत, गँवारैँ गँव गएँ गुन
कौ सरबु गरबु गयौ ।

(जहाँ) नागरिकता के नाम पर—नागरिक प्रवीणता के नाम पर—सब
लोग ताली बजा-बजाकर हँसते हैं, (उस) गँवारों के गँव में बसने से गुण का
सारा गर्व जाता रहा ।

फिरि-फिरि बिलखी है लखति फिरि-फिरि लेति उसाँसु ।

साँई सिर कच सेत लौं बीत्यौ चुनति कपासु ॥ ६४१ ॥

अन्वय— फिरि-फिरि विजस्ती है लखति फिरि-फिरि उसाँसु लेति, बीत्यौ कपासु साँई सिर सेत कच लौं चुनति ।

विलखो = व्याकुल । साँई = पति । कच = केश, बाल । चुनति = चुनती या बीनती है । बीत्यौ = बीती हुई, उजड़ी हुई ।

बार-बार व्याकुल होकर देखती है, और बार-बार लम्बी साँसें लेती है—गरम आह भरती है ! यों उजड़ी हुई कपास को पति के सिर के उजड़े केश के समान चुनती है । (कपास के उजड़े हुए खेत की कपास चुनने में उसे उतना ही कष्ट होता है, जितना वृद्ध पति के सिर के उजड़े केश चुनने में नवयुवती पल्ली को होता है)

नोट— कपास का खेत नाविका के गुप्त-मिलन का स्थान था । उसके उजड़ जाने पर उसे दुःख है । उजले केश के विषय में ‘केशव’ का कहना है—“केसव केसनि अस करी, जस अरिहू न कराहिं; चन्द्रवदनि मृगलोचनी, ब्राता कहि-कहि जाहिं ।”

नर की अरु नल-नीर की गति एकै करि जोइ ।

जेतौ नीचौ है चलै तेतौ ऊँचौ होइ ॥ ६४२ ॥

अन्वय— नर की अरु नल-नीर की एकै करि गति जोइ । जेतौ नीचौ है चलै तेतौ ऊँचौ होइ ।

नल-नीर = नल का पानी । एकै करि = एक ही समान । गति = चाल । जोइ = देखी जाती है ।

आदमी की और नल के पानी की पूक ही गति दीख पड़ती है । वे जितने ही नीचे होकर चलते हैं उतने ही ऊँचे होते हैं । (आदमी जितना ही नम्र होकर चलेगा, वह उतना ही अधिक उन्नति करेगा, और नल का पानी जितने नीचे से आयगा, उतना ही ऊपर चढ़ेगा ।)

बढ़त-बढ़त सम्पति-सलिलु मन-सरोज बढ़ि जाइ ।

घटत-घटत मु न फिरि घटै बरु समूल कुम्हिलाइ ॥ ६४३ ॥

अन्वय— सम्पति-सलिलु बढ़त-बढ़त मन-सरोज बढ़ि जाइ । घटत-घटत मु फिरि न घटै बरु समूज कुम्हिलाइ ।

सलिलु=पानी । सरोज=कमल । वरु=भले ही ।

धन-रूपी जल के बढ़ते जाने से मन-रूपी कमल भी बढ़ता जाता है । किन्तु (जन के) घटते जाने पर वह (कमल) पुनः नहीं बढ़ता, भले ही जड़ से कुमिला जाय । (धनी का मन गरीब होने पर भी वैसा ही उदार रह जाता है ।)

जो चाहौ चटक न घटै मैलो होइ न मित्त ।

रज राजस न छुवाइयै नेहु चीकनैं चित्त ॥ ६४४ ॥

अन्वय—मित्त जो चाहौ चटक न घटै मैलो न होइ, नेहु चीकनैं चित्त राजस रज न छुवाइयै ।

चटक=चटकीलापन । मैलो=मलिन । रज=धूल । राजस=धन-वित्त । नेहु=(१) प्रेम (२) धी, तेल ।

हे मित्र, जो चाहते हो कि (प्रेम या मन का) चटकीलापन न घटे, और वह मलिन न हो, तो प्रेम (रूपी तेल) से चिकने बने हुए चित्त में रूपये-पैसे के व्यवहार-रूपी धूल को न छुलाओ ।

अति अगाधु अति औथरौ नदी कूप सरु बाइ ।

सो ताकौ सागरु जहाँ जाकी प्यास बुझाइ ॥ ६४५ ॥

अन्वय—अति अगाधु अति औथरौ नदी कूप सरु बाइ, जाकी जहाँ प्यास बुझाइ ताकौ सो सागरु ।

अगाधु=अथाह । औथरौ=उछले, छिछले । कूप=कुँआ । सरु=तालाब । बाइ=बावड़ी, बापी, सरसी । सागर=समुद्र ।

अत्यन्त अथाह और अत्यन्त उचली (कितनी ही) नदियाँ, कुँए, तालाब और बावड़ीयाँ हैं । किन्तु जहाँ जिसकी प्यास बुझती है, उसके लिए वही समुद्र है ।

मीत न नीति गलीतु है जौ धरियै धनु जोरि ।

खाएं खरचैं जौ जुरै तौ जोरियै करोरि ॥ ६४६ ॥

अन्वय—मीत नीति न जौ गलीतु है धनु जोरि धरियैं, खाएं खरचैं जौ जुरै वौ करोरि जोरियै ।

नीति न = नीति नहीं, उचित नहीं। गल्लीतु है = गल-पचकर, अत्यन्त दुःख सहकर। जोरि = जोड़कर, इकट्ठा कर।

हे मित्र, यह उचित नहीं है कि गल-पचकर—अत्यन्त दुःख सहकर—धन इकट्ठा कर रखिए। (हाँ, अच्छी तरह) खाने और खरचने पर जो इकट्ठा हो सके, तो करोड़ों रुपये जोड़िए—इकट्ठा कीजिए।

टटकी धोई धोवती चटकीली मुख-जोति ।

लसति रसोई कैं बगर जगरमगर दुति होति ॥ ६४७ ॥

अन्वय—टटकी धोई धोवती मुख चटकीली जोति, रसोई कैं बगर लसति जगरमगर दुति होति ।

टटकी धोई = तुरत की धुनी हुई । धोवती = धोती, साड़ी । बगर = वर । जगरमगर = जगमग । दुति = ज्योति ।

तुरत की धोई हुई साड़ी और मुख की चटकीली चमक बाली नायिका रसोई के वर में शोभा पा रही है, जिससे जगमग ज्योति फैल रही है ।

सोहतु संगु समान सौं यहै कहै सबु लोगु ।

पान-पीक ओठनु बनै काजर नैननु जोगु ॥ ६४८ ॥

अन्वय—समान सौं संगु सोहतु सबु लोगु यहै कहै, ओठनु गान-पीक बनै नैननु जोगु काजर ।

समान = बराबरी का । बनै = बन आती है, शोभती है ।

‘बराबरी का संग (सम्बन्ध) ही शोभता है,’ सब लोग यहो कहते हैं । जैसे, (लाल) ओढ़ों में पान का (लाल) पाक बन आता है, और (काली) आँखों के बोग्य (काजा) काजर समझा जाता है ।

चित पित-मारक जोगु गनि भयौ भयैं सुत सोगु ।

फिरि हुलस्यौ जिय जाइसो समुझैं जारज जागु ॥ ६४९ ॥

अन्वय—चित पित-मारक जोगु गनि भयौ भयैं सोगु भयौ फिरि जारज जोगु समुझैं जाइसी जिय हुलस्यौ ।

पित-मारक = पितृहन्ता, पितावातक । सोगु = शोक । जोइसो = ज्यातियो । जारज = दोगला, जो अपने वाप से न जन्मे ।

चित्त में पितृधातक योग विचारकर—यह जानकर कि इस नक्षत्र में पुत्र उत्पन्न होने से पिता की मृत्यु होती है—अपना पुत्र होने पर भी (ज्योतिषीजी को) शोक हुआ। किन्तु पुनः जारज-योग समझकर—यह समझकर कि इस नक्षत्र में उत्पन्न होनेवाला जड़का दोगला होता है—ज्योतिषीजी हृदय से प्रसन्न हुए (कि यह मेरा पुत्र तो है नहीं, फिर मैं कैसे मरूँगा? मरेंगे तो वे, जिनसे मेरी स्त्री का गुप्त सम्बन्ध था!)

अरे परेखौ को करै तुँहाँ विलोकि विचारि ।

किहिं नर किहिं सर राखियै खरैं बढ़ैं परि पारि ॥ ६५० ॥

अन्वय—अरे को परेखौ करै तुँहाँ विचारि विलोकि, किहिं नर किहिं सर खरैं बढ़ैं परि पारि राखियै ।

परेखौ = परीक्षा । सर = तालाब । पारि = (१) बाँध (२) मर्यादा ।

अजी, कौन परीक्षा करे? तुम्हाँ विचार कर देखो, किस पुरुष ने और किस तालाब ने अत्यन्त बढ़ने पर अपनी मर्यादा—बाँध—की रक्षा की है? (तालाब में अत्यन्त जल होगा, वह उबल पड़ेगा, और आदमी को भी अधिक धन होगा, तो वह इतराता चलेगा ।)

कनकु कनक तैं सौगुनौ मादकता अधिकाइ ।

उहिं खाएँ बौराइ इहिं पाएँ हाँ बौराइ ॥ ६५१ ॥

अन्वय—कनकु कनक तैं सौगुनौ अधिकाइ मादकता, उहिं खाएँ बौराइ इहिं पाएँ हाँ बौराइ ।

कनक = (१) धतूरा (२) सोना । मादकता = नशा । बौराइ = बौराता है, बावला या पगला हो जाता है ।

सोने में धतूरे से सौगुना अधिक नशा है! क्योंकि उसे (धतूरे को) खाने से (मनुष्य बौराता है) और इसे (सोने को केवल) पाने (मात्र) से ही बौराता है ।

नोट—किन्तु मेरा कहना है कि ‘कनक-कनक से सौगुनौ कनक-बरनि तन ताय । वा खाये वा पाय ते या देखे बौराय ॥’

ओढु उचै हाँसी भरी दृग भौंहनु की चाल ।

मो मनु कहा न पी लियौ पियत तमाकू लाल ॥ ६५२ ॥

अन्वय—ओढु उचै दृग भौंहनु की चाल हाँसी भरी, पियत तमाकू लाल कहा मो मनु न पी लियौ ।

उचै=ऊँचे करके । दृग =आँख । मो=मेरा ।

ओढ़ों को ऊँचा कर और आँखों तथा भौंहों की चाल को हाँसीयुक्त बनाकर तमाकू पीते हुए प्रीतम क्या मेरे मन को नहीं पी गये ? (जरूर पी गये ! तभी तो 'वे-मन' हुई घूमती हो !!)

बुरो बुराई जौ तजै तौ चितु खरौ सकातु ।

ज्यौं निकलंकु मर्यंकु लखि गनैं लोग उतपातु ॥ ६५३ ॥

अन्वय—बुरो जौ बुराई तजै तौ चितु खरौ सकातु, ज्यौं निकलंकु मर्यंकु लखि लोग उतपातु गनैं ।

सकातु=डरता है । मर्यंकु=चन्द्रमा । उतपातु=उपद्रव ।

बुरे आदमी आगर अपनी बुराई तज देते हैं, तो मन बहुत डरता है—चित्त में भय उत्पन्न होता है । जिस प्रकार निष्कलंक चन्द्रमा को देखकर लोग उत्पात की आशंका करते हैं ।

नोट—ज्योतिष में लिखा है कि यदि चन्द्रमा का काला घब्बा नष्ट हो जाय, तो संसार में हिम-वर्षा होगी ।

भाँवरि अनभाँवरि भरे करौ कोरि बकवादु ।

अपनी-अपनी भाँति कौ छुटै न सहजु सवादु ॥ ६५४ ॥

अन्वय—भाँवरि अनभाँवरि भर कोरि बकवादु करों, अपनी-अपनी भाँति कौ सहजु सवादु न छुटै ।

भाँवरि भरे=चक्र ल्याओ । भाँति=दंग । सहजु=स्वाभाविक । सवादु=रुचि, प्रवृत्ति ।

(निगराना करने की गरज से चाहें) उनके चारों ओर चक्र लगओ या न लगओ, या उनसे करोड़ों प्रकार के बकवाद करो; किन्तु अपने-अपने दंग की स्वाभाविक प्रवृत्ति दूर नहीं सकती—(वे उस ओर जायेंगे ही) ।

नोट—नायक किसी दूसरी छो पर आसक्त है। नायिका उसकी खूब निगरानी करती है। उससे लड़ती-झगड़ती है। इसपर सखी का कथन।

जिन दिन देखे वे कुसुम गईं सु बीति बहार।

अब अलि रहीं गुलाब मैं अपत कँटीली डार॥ ६५५॥

अन्वय—जिन दिन वे कुसुम देखे सु बहार बीति गईं, अलि अब गुलाब मैं अपत कँटीली डार रही।

कुसुम = फूल। सु = वह। बहार = (१) छुटा (२) वसन्त। अलि = भौंरा। अपत = पत्र-रहित। कँटीली डार = काँटों से भरी डाल।

जिन दिनों तुमने वे (गुलाब के) फूल देखे थे, वह बहार तो बीत गई—वह वसन्त तो चला गया। और भौंरे ! अब तो गुलाब मैं पत्र-रहित कँटीली डालियाँ ही रह गई हैं।

इहाँ आस अटक्यौ रहतु अलि गुलाब कै मूल।

हैं फेरि वसंत-रितु इन डारनु वे फूल॥ ६५६॥

अन्वय—इहाँ आस अलि गुलाब कै मूल अटक्यौ रहतु, फेरि वसंत-रितु इन डारनु वे फूल हैं।

अटक्यौ रहतु = टिका या अड़ा हुआ है। मूल = जड़। हैं = होंगे।

इसी आशा से भौंरा गुलाब की जड़ में अटका हुआ है—उसकी ‘अपत कँटीली डार’ को से रहा है—कि पुनः वसन्त ऋतु में इन डालियों में वे ही (सुन्दर सुगन्धित) फूल होंगे।

नोट—यह दोहा पिछुले दोहे के जवाब में लिखा हुआ माल्म पड़ता है। कैसा लासानी सवाल-जवाब है !

सरस कुसुम मँडरातु अलि न झुकि झपटि लपटातु।

दरसत अति सुकुमारु तनु परसत मन न पत्यातु॥ ६५७॥

अन्वय—सरस कुसुम अलि मँडरातु झुकि झपटि न लपटातु अति सुकुमारु तनु दरसत परसत मन न पत्यातु।

मँडरातु = मँडराता है, ऊपर चक्र काटता है। दरसत = देखकर। मन न पत्यातु = मन नहीं पतियाता, तबीयत नहीं कबूल करती।

रसीले फूल पर भौंरा चक्कर काट रहा है, किन्तु झुककर और झपटकर वह नहीं लिपटता—झटपट उस फूल का आँकिगन नहीं करता, क्योंकि उस फूल का अत्यन्त सुकुमार गात देखकर स्पर्श करने को उसका मन नहीं पतियाता—उसकी तर्बीयत नहीं कबूच करती—(डर है कि कहीं स्पर्श करने से उसका सौकुमार्यपूर्ण) सौंदर्य नष्ट न हो जाय ।

नोट—इस दोहे के पहले चरण को प्रथम और दूसरे चरण को उसका उत्तर मानकर पढ़ने से और भी आनन्द आयेगा । फूलों पर भौंरे को मँडिराते देखकर कोई पूछता है—“रसमय पुध से भ्रमर क्यों नहीं लिपटता ?” कोई रसिक उत्तर देता है—“पुध का सुकुमार गात देख चिपटने से हिचकता है ।”

वहकि बड़ाई आपनी कत राँचति मति भूल ।

विनु मधु मधुकर कै हियैं गड़े न गुड़हर फूल ॥ ६५८ ॥

अन्वय—गुड़हर फूल आपनी बड़ाई वहकि कत राँचति, भूल मति, विनु मधु मधुकर कै हियैं न गड़े ।

राँचति=प्रसन्न होती है । मधु=रस । गुड़हर=ओड़हुल ।

हे गुड़हर के फूल ! अपनी बड़ाई में बढ़ककर कितना प्रसन्न हो रहे हो ? भूलो मत । विना मधु के होने से (अत्यन्त सुन्दर होने पर भी) भौंरे के हृदय में नहीं गड़ते—उसे पसन्द नहीं पड़ते ।

नोट—रूपगर्विता नायिका से सखी कहती है कि केवल सुन्दर रूप से कुछ न होगा, गुण (प्रेम की सुगन्ध) ग्रहण कर, तभी नायक वश में होगा ।

जदपि पुराने बक तऊ सरवर निपट कुचाल ।

नए भए तु कहा भयौ ए मनहरन मराल ॥ ६५९ ॥

अन्वय—सरवर निपट कुचाल जदपि पुराने तऊ बक, नए भए तु कहा भयौ ए मनहरन मराल ।

बक=बगला । तऊ=तो भी । सरवर=सरोवर । निपट=एकदम ।
कुचाल=खराब चाल ।

ऐ सरोवर ! यह एकदम खराब चाल है (इसे छोड़ दो) । यद्यपि वे (बगले) पुराने साथों हैं, तो भी आखिर हैं तो वे बगले हीं । और (इन

हंसों के) नये होने ही से क्या हुआ ? ये हैं मन को मोहित करनेवाले हंस ।
(अतः बगले को छोड़ हंस की संगति करो—परिचित अपरिचित का खयाल छोड़ दो ।)

अरे हंस या नगर मैं जैयो आपु विचारि ।

कागनि सौं जिन प्रीति करि कोकिल दई विडारि ॥ ६६० ॥

अन्वय—अरे हंस या नगर मैं आपु विचारि जैयो, जिन कागनि सौं प्रीति करि कोकिल विडारि दई ।

विडारि = खदेड़ देना, भगा देना ।

अरे हंस ! इस नगर में तू सोच-विचारकर जाना, (क्योंकि इस गाँव में वे ही लोग रहते हैं) जिन्होंने कागों से प्रीति करके कोयल को खदेड़ दिया था ।

को कहि सकै बड़ेनु सौं लखैं बड़ी त्यौं भूल ।

दीने दई गुलाव की इन ढारनु वे फूल ॥ ६६१ ॥

अन्वय—बड़ी भूल लखैं त्यौं बड़ेनु सौं को कहि सकै, दई गुलाव की इन ढारनु वे फूल दीने ।

भूल = गलती । दीने = दिया है । दई = दैव, विधाता ।

(बड़ों की) बड़ी भी भूल देखकर बड़ों से कौन कह सकता है ? विधाता ने गुलाव की इन (कँटीली) डालियों में वे (सुन्दर) फूल दिये हैं (फिर भी उनसे कौन कहने जाता है कि यह आपकी भूल है !)

वे न इहाँ नागर बड़ी जिन आदर तो आव ।

फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ गँवई गाँव गुलाव ॥ ६६२ ॥

अन्वय—वे इहाँ नागर न जिन तो आव आदर बड़ी, गुलाव गँवई गाँव फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ ।

नागर = नगर के रहनेवाले, चतुर, रसिक । आव = शोभा, रौनक ।
गँवई गाँव = ठेठ देहात ।

यहाँ (देहात में) वे रसिक ही नहीं हैं, जो तेरी शोभा और आदर को

बढ़ाते । ऐ गुलाब, इस ठेठ देहात में फूलकर भी तुम विना फूले हुए हो गये—
तुम्हारा फूलना न फूलना बराबर हो गया ।

कर लैं सूंघि सराहिहूँ रहैं सबै गहि मौनु ।

गंधी अंध गुलाब कौ गँवई गाहकु कौनु ॥ ६६३ ॥

अन्वय—कर लैं सूंघि सराहिहूँ सबै मौनु गहि, रहैं, अंध गंधी गुलाब
कौ गँवई कौनु गाहकु ?

कर = हाथ । गंधी = इत्र वेचनेवाला । गँवई = देहात ।

हाथ में लेकर सूंघकर और प्रशंसा करके भी सब चुप रह जाते हैं । अरे
अंधा इत्रफरोश, इस गुलाब के इत्र का इस गँवई में कौन गाहक होगा ?

को छूट्यौ इहिं जाल परि कत कुरंग अकुलात ।

ज्यौं-ज्यौं सुरझि भज्यौ चहत त्यौं-त्यौं उरझत जात ॥ ६६४ ॥

अन्वय—इहिं जाल परि को छूट्याँ, कुरंग कत अकुलात, ज्यौं-ज्यौं सुरझि
भज्यौ चहत त्यौं-त्यौं उरझत जात ।

कत = क्यों । कुरंग = हिरन । भज्यौ = भागना ।

इस जाल में पड़कर कौन छूटा ? फिर, अरे हिरन ! तू क्यों अकुलाता है ?
देख, ज्यौं-ज्यौं तू सुलझकर भागना चाहता है, त्यौं-त्यौं (इस उछल-कूद से)
ठलझता जाता है ।

पटु पाँखै भखु काँकरै सपर परेई संग ।

सुखी परेवा पहुमि मैं एक तुँहाँ विहंग ॥ ६६५ ॥

अन्वय—पाँखै पटु काँकरै भखु सपर परेई सग, परेवा पहुमि मैं तुँहाँ एके
सुखी विहंग ।

पटु = बच्चा । भखु = भक्ष्य, भोजन । परेई—‘परेवा’ का त्रीलिंग ‘परेई’ ।
विहंग = पक्षी । सपर = पंखयुक्त, परिवार के साथ ।

पंख ही तुम्हारा बच्चा है, (सर्वत्र-सुलम) कंकड ही तुम्हारा भोजन है,
और पंख वा परिवार (बाल-बच्चों) के साथ (अपनी प्राणेश्वरी) परेई का
संग है—कभी वियोग नहीं होता । सो, हे परेवा, संसार में तुम्हीं एक सुखी
पक्षी हो—तुम्हें यथार्थ में सुखी कह सकते हैं ।

नोट—इस दोहे में बिहारी ने सुखी जीवन का एक चित्र-सा खींच दिया है। भोजन-बस्त की सुलभता और बाल-बच्चों के साथ प्राणप्यारी का सहवास—इसके आगे सुखी बनने के लिए और चाहिए ही क्या? किन्तु आजकल के नवयुवक कहेंगे—‘स्वाधीनता’। सो ‘विहंग’ शब्द से ‘स्वाधीनता’ का भाव स्पष्ट व्यक्त होता है। ‘विहंग’ का अर्थ है ‘आकाश में (स्वच्छन्द) विचरण करनेवाला’—अतएव—‘स्वतन्त्र’।

स्वारथु सुकृत न स्मसु वृथा देखि विहंग विचारि ।

बाज पराएं पानि परि तूँ पच्छीनु न मारि ॥ ६६६ ॥

अन्वय—स्वारथु सुकृत न स्मसु वृथा विहंग विचारि देखि, बाज पराएं पानि परि तूँ पच्छीनु न मारि ।

सुकृत = पुण्यकार्य । स्मसु = श्रम = मिहनत । विहंग = आकाश में उड़ने-बाला, पक्षी । पानि = हाथ ।

न तो इसमें तेरा कोई स्वार्थ है (क्योंकि मांस खुद बहेलिया ले लेगा), और न कोई पृण्य-कार्य है (क्योंकि यह हत्यारापन है), इस प्रकार यह परि-श्रम व्यर्थ है, ऐ (उन्मुक्त आकाश में स्वच्छन्द विचरण करनेवाला) पक्षी! विचार कर देख । अरे बाज! दूसरे के हाथ पर बैठकर (दूसरे के बहकावे में आकर) पक्षियों को (स्वजातियों को) मत मार ।

दिन दस आदरु पाइकै करि लै आपु बखानु ।

जौ लौं काग सराध-पखु तौ लौं तौ सनमानु ॥ ६६७ ॥

अन्वय—दस दिन आदरु पाइकै आपु बखानु करि लै, काग जौ लौं सराध-पखु तौ लौं तौ सनमानु ।

बखानु = बड़ाई । लौं = तक । सराध-पखु = श्राद्ध-पक्ष या श्राद्ध का पखवारा । सनमानु = सम्मान, आदर ।

दो-चार-दस दिन (कुछ दिन) आदर पाकर अपनी बड़ाई कर के । अरे काग! जब तक श्राद्ध का पखवारा है, तभी तक तेरा आदर मी है ।

नोट—श्राद्ध में काग को बलि का भाग दिया जाता है ।

मरत प्यास पिंजरा परचौ सुआ समै कैं फेर ।

आदरु दै दै बोलियतु बाइसु बलि की वेर ॥ ६६८ ॥

अन्वय—समै कैं केर सुआ पिंजरा पत्तौ प्यास मरत, बलि की बेर बाइसु आद्रु दै दै बोलियतु ।

सुआ=सुगा, तोता । बाइसु=कौवा । बलि=शाद्र के अन्न में से निकाला हुआ कौवे का भाग । बेर=समय ।

समय के फेर से (जाग्य-चक्र के प्रभाव से) सुरगा पिंजड़े में पड़ा प्यासा मर रहा है, और (शाद्र-वृक्ष होने के कारण) बलि देने के समय काग को आदर के साथ तुला रहे हैं—(कैदबन्द सुगे का प्यासों मरना और स्वच्छन्द कौवे का सादर मोजनार्थ तुलाया जाना—सचमुच किस्मत का खेल है !)

जाकै एकाएकहूँ जग व्यौसाइ न कोइ ।

सो निदाव फूलै फरै आकु डहडहौ होइ ॥ ६६९ ॥

अन्वय—जाकै जग कोइ एकाएकहूँ व्यौसाइ न सो आकु निदाव डहडहौ होइ फूलै फरै ।

एकाएकहूँ=अकेला भी, एकाकी भी । व्यौसाइ=उपाय, यत्न । निदाव=ग्रीष्म-ऋतु । आकु=अर्क=अकवन । डहडहौ=लहलहा, हरा-भरा ।

जिसके लिए संयार में कोई अकेला मनुष्य भी उपाय करनेवाला नहीं है—जिसे सींचने का कोई उद्योग नहीं किया जाता—वही ‘अकवन’ ग्रीष्म-ऋतु में भी हरा-भरा रहता है और फूलता-फलता है ।

नोट—तुलसी विरचा बाग को सींचत हूँ कुम्हिलाय ।

राम-भरोने जो रहे परवत पर द्विरियाव ॥—तुलसीदास

नहि पावसु ऋतुराजु यह तजि तरबर चित भूल ।

अपतु भए विनु पाइहैं क्यौं नव दल फल फूल ॥ ६७० ॥

अन्वय—पावसु नहि यह कृतुराजु तरबर चित भूल तजि, बिनु अपतु भएं क्यौं नव दल फल फूल पाइहैं ।

पावसु=वर्षा-ऋतु । कृतुराजु=वसन्त-ऋतु ।

यह पावस नहीं (जिसमें सब वृक्ष स्वभावतः हरे-मरे बने रहते हैं, वसन्त है । हे वृक्ष, मन की इस भूल को छोड़ दो । इस कृतु में विना पत्र-रहित हुए

तुम कैसे नये पत्ते और फल-फूल प्राप्त करोगे ? (वसन्त में हरा-भरा होने से पहले—पतझड़ के कारण—पत्ररहित होना ही पड़ेगा ।)

सीतलता रु सुवास की घटै न महिमा मूरु ।

पीनसवारैं ज्यौं तज्यौं सोरा जानि कपूरु ॥ ६७१ ॥

अन्वय—पीनसवारैं ज्यौं कपूरु सोरा जानि तज्यौं, सीतलता रु सुवास की महिमा मूरु न घटै ।

रु = अरु = और । मूरु = मूल्य, मोल । पीनसवारैं = पीनस-रोग (नकड़ा) का रोगी, जिसकी ब्राणशक्ति नष्ट हो जाती है, और जिसे सुगंध-दुगंध कुछ नहीं जान पड़ती । सोरा = नमक के रूप का एक खारा पदार्थ ।

पीनस-रोगवाले ने जैसे कपूर को सोरा जानकर छोड़ दिया, उससे उसकी शीतलता और सुगंध की महिमा और न उसका मोल ही बटा । (कोई मूर्ख यदि गुणी का निरादर करे, तो उससे गुणी का गुण नहीं घट जाता और न उसका सम्मान ही कम होता है ।)

गहै न नेकौ गुन गरबु हँसौ सकल संसारु ।

कुच-उच्चपद लालच रहै गरैं परैहूँ हारु ॥ ६७२ ॥

अन्वय—एन गरबु न नेकौ गहै सकल संसारु हँसौ, कुच-उच्चपद लालच हारु गरैं परैहूँ रहै ।

गुन गरबु = गुण का घमंड । गर परैहूँ = गले पड़ने पर भी (इस मुश्विरे का अर्थ है = 'विना इच्छा के ही किसी के पीछे पड़े रहना') । हार = (१) माला (२) पराजय ।

अपने गुण का उसे जरा भी घमंड नहीं, सारा संसार उसे ('हार'-'हार' कहकर) हँसता है, तो भी वह 'हार' कुच-रूपी ऊँचे पद के लोम में पड़कर (उस नवयौवना के) गले में पड़ा ही रहता है । (उपहास सहकर भी लोग ऊँचे ओहदे को नहीं छोड़ते ।)

मूड़ चढ़ाएँऊ परख्यौ रहै पीठि कच-भारु ।

रहै गरैं परि राखियौ तऊ हियैं पर हारु ॥ ६७३ ॥

अन्वय— मूँ चढ़ाएँऊ कच-भार पीठि परयौ रहे गरै परि रहै तज हारु हियैं पर राखियौ ।

मूँ चढ़ाना = सिर चढ़ाना, अधिक मान करना । कच-भार = केश-गुच्छ, केश-जाल, बालों का समूह । गले पड़ना = देखो ६७२ वाँ दोहा । हारु = माला ।

सिर पर चढ़ाये रखने पर भी केश-गुच्छ पीठ पर ही पढ़े रहते हैं—(आदर दिखलाने पर भी नीच का निरादर ही होता है), और यद्यपि गले पड़कर रहती है, तो भी माला हृदय ही पर रखती जाती है—(निरादत होने पर भी सज्जन का सम्मान ही होता है) ।

नोट— इस दोहे में विहारीलाल ने मुहाविरे का अच्छा प्रयोग दिखलाया है । कविवर 'रसलीन' भी मुहाविरों के प्रयोग में बड़े कुशल हैं । 'वेणी' पर कैसी मुहाविरेदार भाषा में मजमून वाँधा है—

भनत न कैसेहू बनै, या बेनी के दाय !

तुव पीछे जे जगत के पीछे परे बनाय ॥

जो सिर धरि महिमा मही लहियति राजा-राइ ।

प्रगटत जड़ता अपनियै मुकुट पहिरियतु पाइ ॥ ६७४ ॥

अन्वय— जो सिर धरि राजा-राइ मही महिमा लहियति, मुकुट पाइ पहिरियतु अपनियै जड़ता प्रगटत ।

महिमा = बड़ाई । मही = भूमंडल (संसार) में जड़ता = मूर्खता ।

जिसे सिर पर रखकर बड़े-बड़े राजे-महाराजे संसार में बड़ाई पाते हैं, उसी मुकुट को पाँव में पहनकर (मूर्ख मनुष्य) अपनी जड़ता ही प्रकट करता है । (आदरणीय का तिरस्कार करना ही मूर्खता है ।)

चले जाइ ह्याँ को करै हाथिनु कौ व्यापार ।

नहि जानतु इहि पुर वसैं धोबी ओइ कुम्हार ॥ ६७५ ॥

अन्वय— चले जाइ ह्याँ हाथिनु कौ व्यापार को करै नहि जानतु इहि पुर धोबी ओइ कुम्हार वसैं ।

ह्याँ = यहाँ । पुर = गाँव । ओइ = बेलदार ।

चले जाओ, यहाँ हाथी का व्यापार कौन करता है ? नहीं जानते कि इस गाँव में केवल धोबी, बेलदार और कुम्हार बसते हैं (जो गढ़े पालते हैं) ?

नोट—पश्चिम में कुम्हार और बेलदार भी गढ़े पालते हैं ।

करि फुलेल कौ आचमन मीठौ कहत सराहि ।

रे गंधी मति-अंध तूँ अतर दिखावत काहि ॥ ६७६ ॥

अन्वय—फुलेल कौ आचमन करि सराहि मीठौ कहत, रे मति-अंध गंधी तूँ काहि अतर दिखावत ?

फुलेल = फूलों के रस से बसा हुआ तेल । आचमन करि = पीकर । गंधी = इत्र बेचनेवाला अत्तार । मति-अंध = बेवकूफ । अतर = इत्र ।

(यहाँ तो) फुलेल का आचमन कर उसे सराहता और मीठा कहता है ! रे बेवकूफ इत्रफरोश, तू यहाँ किसको इत्र दिखा रहा है ? (वह तो यह भी नहीं जानता कि फुलेल लगाने की चीज है या पाने की, फिर वह इत्र का कद्र क्या जानेगा ?)

विषम वृषादित की तृष्णा जिये मतीरनु सोधि ।

अमित अपार अगाध जलु मारौ मूढ़ पयोधि ॥ ६७७ ॥

अन्वय—विषम वृषादित की तृष्णा मतीरनु सोधि जिये, मारौ अमित अपार अगाध जलु पयोधि मूढ़ ।

विषम = प्रचंड । वृषादित = (वृषा + आदित्य) वृष-राशि का सूर्य, जो अतिशय प्रचंड होता है; जेठ की तीखी धूप । तृष्णा = प्यास । मतीरनु = तरबूजों । सोधि = खोजकर । अगाध = अथाह । मारौ = मारवाड़ (राजपुताने की मरुभूमि) । मूढ़ = मूर्ख (यहाँ 'वेकार') । पयोधि = समुद्र ।

जेठ की कड़ी धूप की प्यास से (व्याकुल होने पर) तरबूजों को खोजकर प्राण बचाया । इस मारवाड़ की मरुभूमि में अत्यन्त विस्तृत और अगाध जल चाला समुद्र किस काम का ?—वेकार है ।

जम-करि-मुँह-तरहरि परस्यौ इहि धरहरि चित लाउ ।

विषय-तृष्णा परिहरि अजौं नरहरि के गुन गाउ ॥ ६७८ ॥

अन्वय—जम-करि-सुँह-तरहरि पर्यौ इहि धरहरि चित लाड विषय-तृपा परिहरि अर्जौं नरहरि के गुण गाड ।

करि=हाथी । तरहरी=तलहरी, नीचे । हरि=(१) ईश्वर (२) सिंह । तृपा=तृष्णा, वासना । परिहरि=छोड़कर । अर्जौं=अब भी । नरहरि=नृसिंह भगवान । धरहरि=निश्चय ।

यम-रूपी हाथी के मुख के नीचे पढ़े हो, यह समझकर निश्चय (सिंह-रूपी) हरि में चित लगाओ—और, विषय की तृष्णा छोड़कर अब भी उस नृसिंह के गुण गाओ ।

जगतु जनायौ जिहिं सकलु सो हरि जान्यौ नाहिं ।

ज्यौं आँखिनु सबु देखियै आँखि न देखी जाहिं ॥ ६७९ ॥

अन्वय—जिहिं सकलु जगतु जनायौ सो हरि नाहिं जान्यौ, ज्यौं आँखिनु सबु देखियै आँखि न देखी जाहिं ।

जिहिं=जिसने । ज्यौं=जैसे । न देखी जाहिं=नहीं दीख पड़ती ।

जिसने सारे संवार को जनाया—जिसने तुम्हें सारे यंवार का ज्ञान दिया, उसी ईश्वर को तुमने नहीं जाना—नहीं पहचाना, (ठीक उसी प्रकार) जिस प्रकार अपनी आँखों से और सब वस्तुएँ तो देखी जाती हैं, पर स्वयं (अपनी ही) आँखें नहीं दीख पड़ती ।

जप माला छापैं तिलक सरै न एको कामु ।

मन काँचै नाचै वृथा साँचै राँचै रामु ॥ ६८० ॥

अन्वय—जप माला छापैं तिलक एको कामु न सरै, मन काँचै नाचै वृथा रामु साँचै राँचै ।

छापैं=राम-नाम की छाप, जिसे साधु-सन्त अपने शरीर और वस्त्र में लगाते हैं । सरै=सधता है । कामु=कार्य, मनस्कामना । साँचै=सचाई (सच्ची लगन) से ही । राँचै=रीभते हैं ।

जप (मंत्र-पाठ), माला (सुमिरन), छापैं या तिलक से एक भी काम नहीं सध सकता—कोई भी मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकता । जब मन सच्चा

है—मन वश में नहीं है, तो यह सारा नाच (आडम्बर) वृथा है, (क्योंकि) राम सत्य से ही प्रसन्न होते हैं (आडम्बरों से नहीं)।

नोट—“माला तो कर में किरै, जीभ किरै मुख माँहि ।

मनुआँ तो दस दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाँहि ॥—कबीरदास

यह जग काँचो काँच-से मैं समझ्यौ निरधार ।

प्रतिविम्बित लखियै जहाँ एके रूप अपार ॥ ६८१ ॥

अन्वय—मैं निरधार समझ्यौ यह काँचो जग काँच-से जहाँ एके अपार रूप प्रतिविम्बित लखियै ।

काँचो = कच्चा, क्षणभंगुर । निरधार = निश्चित रूप से ।

यह मैंने निश्चित रूप से जान लिया कि यह क्षणभंगुर संसार काँच के समान है, जहाँ एक वही (ईश्वर का) अपार रूप (सभी वस्तुओं में) प्रतिविम्बित हो रहा है—भक्तक रहा है ।

बुधि अनुमान प्रमान सूति किए नीठि ठहराइ ।

सूछम कटि पर ब्रह्म की अलख लखी नहि जाइ ॥ ६८२ ॥

अन्वय—कटि ब्रह्म की पर सूछम अलख, लखी नहि जाइ, बुधि अनुमान, सूति प्रमान किए नीठि ठहराइ ।

सूति = श्रुति = वेद, कान । नीठि = मुश्किल से । ठहराइ = निश्चित होती है । सूछम = सूँदर, वारीक । अलख = जो देखा न जा सके । पर = भाँति, समान ।

नायिका की कटि ब्रह्म की भाँति अत्यन्त सूक्ष्म है, अलख है, वह देखी नहीं जा सकती—समझ में नहीं आ सकती । बुद्धि द्वारा अनुमान करने और वेदों के प्रमाण मानने (कानों से सुनने) पर सभी वह मुश्किल से समझ पड़ती हैं ।

तौ लगु या मन-सदन मैं हरि आवैं किहिं बाट ।

विकट जटे जौ लगु निपट खुलैं न कपट-कपाट ॥ ६८३ ॥

अन्वय—तौ लगु या मन-सदन मैं हरि किहिं बाट आवैं, जौ लगु निपट विकट जटे कपट-कपाट न खुलैं ।

सदन = घर । बाट = राह । निपट विकट जटे = अत्यन्त दृढ़ता से जड़े हुए ।
कपट = छल, प्रपंच, दम्भ । कपाट = किवाड़ ।

तबतक इस मन-रूपी घर में ईश्वर किस राह से आवे, जब तक कि
(इसमें) अत्यन्त दृढ़ता से जड़े हुए कपट-रूपी किवाड़ न खुल जाय—मन
निष्कपट न हो जाय ।

या भव-पारावार कौं उल्लिंघि पार को जाइ ।

तिय-छुवि-छायाग्राहिनी ग्रहै वीच ही आइ ॥ ६८४ ॥

अन्वय—या भव-पारावार कौं उल्लिंघि को पार जाइ, तिय-छुवि-छायाग्राहिनी
वीच ही आइ ग्रहै ।

भव = संसार । पारावार = समुद्र । उल्लिंघि = लौंघकर । तिय-छुवि = खी की
शोभा । छायाग्राहिनी = लंका-द्वीप के पास समुद्र में रहनेवाली रामायण-प्रसिद्ध
'सिंहिका' नामक राक्षसी, जो आकाश में उड़नेवाले जीवों की छाया पकड़कर
उन्हें खींच लेती थी—("निसिचरि एक सिंधु महँ रहई, करि माया नम के
खग गहई"—तुलसीदास) । ग्रहै = पकड़ लेती है । वीच ही = जीवनकाल के
मध्य (युवावस्था) में ही ।

इस संसार-रूपी समुद्र को लौंघकर कौन पार जा सकता है ? (क्योंकि)
खी की शोभा-रूपी छायाग्राहिणी वीच ही में आकर पकड़ लेती है—(खी का
सौन्दर्य युवावस्था में ही ग्रस लेता है ।)

भजन कह्यौ तातैं भज्यौ न एकौ बार ।

दूरि भजन जातैं कह्यौ सो तैं भज्यौ गँवार ॥ ६८५ ॥

अन्वय—भजन कह्यौ तातैं भज्यौ पुकौ बार न भज्यौ, जातैं दूरि भजन
कह्यौ, सो गँवार तैं भज्यौ ।

भजन = (?) सुमिरन (२) भागना । भज्यौ = (१) भाग गये (२)
भजन किया । तातैं = उससे । जातैं = जिससे ।

जिसका भजन करने को कहा (जिसका भजन करने के लिए मातृगर्भ में
वचन दिया), उस (ईश्वर) से तू दूर मागा, पक बार मी उसे नहीं भजा—

नहीं सुमिरा । और, जिससे दूर भागने को कहा, (जिससे बचे रहने का वादा किया) ऐ गँवार, उसी (माया-मोह) को तूने भजा—उसीमें तू अनुरक्त हुआ ।

पतवारी माला पकरि और न कछू उपाउ ।

तरि संसार-पयोधि कौं हरि नावैं करि नाउ ॥ ६८६ ॥

अन्वय—और कछू उपाउ न, माला पतवारी पकरि हरि नावैं नाउ करि संसार-पयोधि कौं तरि ।

पतवारी = पतवार । नावैं = नाम को ही । पयोधि = समुद्र ।

दूसरा कोई उपाय नहीं । माला-रूपी पतवार को पकड़कर और ईश्वर के नाम की ही नौका बनाकर इस संसार-रूपी समुद्र को पार कर जाओ ।

यह चिरिया नहि और की तूँ करिया वह सोधि ।

पाहन-नाव चढ़ाइ जिहिं कीने पार पयोधि ॥ ६८७ ॥

अन्वय—यह और की चिरिया नहि, तूँ वह करिया सोधि, जिहिं पाहन-नाव चढ़ाइ पयोधि पार कीने ।

चिरिया = बेला, समय । करिया = कर्णधार, मल्लाह । सोधि = खोजकर । पाहन = पथर । पयोधि = समुद्र ।

यह दूसरे की बेर नहीं है—(इस अन्तिम अवस्था में कोई दूसरा मदद नहीं कर सकता), तू उसी मल्लाह को खोज, जिसने पथर की नाव पर चढ़ाकर समुद्र को पार कराया था ।

नोट—श्रीरामचन्द्रजी पथर का पुल बनाकर अपनी मर्कं-सेना को लंका ले गये थे । उन्हीं का नाम भव-सागर-सेतु है ।

दूरि भजत प्रभु पीठि दै गुन-विस्तारन-काल ।

प्रगटत निर्गुन निकट है चंग-रंग गोपाल ॥ ६८८ ॥

अन्वय—गोपाल चंग-रंग गुन-विस्तारन-काल प्रभु पीठि दै दूरि भजत, निर्गुन निकट है प्रगटत ।

भजत = भागना । पीठि दै = विमुख होकर । गुन = (१) गुण (२) तागा । निर्गुन = (१) गुण-रहित (२) विना तागे का । चंग = पतंग, गुड्ढी । रंग = समान ।

गोपाल (की लीला) गुड़ी के समान है । गुण-विस्तार करने के समय—अपनेको गुणवान् समझने के समय—वह प्रभु पीठ देकर दूर भागता है, (ठीक उसी तरह, जिस तरह 'गुण'—तागा—घड़ाने पर गुड़ी दूर भागती है), और निर्गुण होते ही—अपनेको तुच्छातितुच्छ समझते ही—वह (ईश्वर) निकट ही प्रकट हो जाता है (जिस तरह गुण-हीन—तागा बिना—हो जाने पर गुड़ी निकट आ जाती है) ।

जात-जात वितु होतु है ज्यौं जिय मैं सन्तोप ।

होत-होत जौं होइ तौ होइ घरा मैं मोप ॥ ६८९ ॥

अन्वय—वितु जात-जात ज्यौं जिय मैं सन्तोप होतु है, होत-होत जौं होइ तौ घरा मैं मोप होइ ।

जात-जात = जाते-जाते, जाते समय । वित = धन । मोप = मोक्ष ।

धन के जाते समय जिस प्रकार मन में सन्तोष होता है, अगर (धन) के आते समय भी उसी प्रकार (सन्तोप) हो, तो एक घड़ी में ही (अथवा, वर ही में) मोक्ष मिल जाय ।

ब्रजवासिनु को उचितु धनु जो धन रुचत न कोइ ।

सुचितु न आयौ सुचितइ कहौ कहाँ तैं होइ ॥ ६९० ॥

अन्वय—जो कोइ धन न रुचत ब्रजवासिनु को उचितु धनु, सुचितु न आयौ कहौ कहाँ तैं सुचितह होइ ?

सुचितइ = निश्चिन्तता, शान्ति ।

जो और कोई धन तुम्हें नहीं रुचता है (वहाँ तक तो ठीक है मगर) ब्रजवासियों का उपयुक्त धन (श्रीकृष्ण) अगर हृदय में नहीं आया, तो कहो, शान्ति किस प्रकार हो सकती है ?

नीकी दई अनाकनी फीकी परी गुहारि ।

तज्यौ मनौ तारन-विरदु वारक वारनु तारि ॥ ६९१ ॥

अन्वय—नीकी अनाकनी दई, गुहारि फीकी परी, मनौ वारक वारनु तारि तारन-विरदु तज्यौ ।

अनाकनी दई=आनाकानी कर दी, सुनि अनसुनी कर दी, कान बन्द कर लिये । गुहारि=पुकार, कातर प्रार्थना । तारन-विरदु=भवसागर से उधारने का यश, तारने की बड़ाई । वारक=एक बार । चारनु=हाथी ।

(हे प्रभो, तुमने तो) अच्छी आनाकानी की (कि मेरी) पुकार ही फीकी पड़ गई ! (मालूम होता है) मानो (तुमने) एक बार हाथी को तारकर अब तारने का यश ही छोड़ दिया ! शायद दीनों की कातर प्रार्थना अब तुम्हें फीकी मालूम होती है ।

दीरघ साँस न लेहि दुख सुख साईं नहि भूलि ।

दई-दई क्यौं करतु है दई दई सु कवूलि ॥ ६९२ ॥

अन्वय—दुख दीरघ साँस न लेहि, सुख साईं नहि भूलि, दई-दई क्यौं करतु है ? दई दई सु कवूलि ।

दीरघ=लम्बी । साईं=स्वामी, ईश्वर । दई=दैव । दई=दिया है ।

दुःख में लम्बी साँस न लो, और सुख में ईश्वर को मत भूलो । दैव-दैव क्यों पुकारते हो ? दैव (ईश्वर) ने जो दिया है, उसे कवूल (मंजूर) करो ।

कौन भाति रहिहै विरदु अब देखिवी मुरारि ।

बीधे मोसौं आइकै गीधे गीधहिं तारि ॥ ६९३ ॥

अन्वय—मुरारि अब देखिवी विरदु कौन माँति रहिहै, गीधहिं तारि गीधे मोसौं आइकै बीधे ।

विरद=ख्याति, कीर्ति । मुरारि=श्रीकृष्ण । बीधे=विघ्ना, उलझना । गीधे=परक गये थे, चस्का लग गया था ।

हे श्रीकृष्ण, अब देखूँगा कि तुम्हारा यश किस तरह (अक्षुण्ण) रहता है ! (तुम) गीध (जटायु) को तारकर परक गये थे, किन्तु अब मुझसे आन-कर उलझे हो—(मुझ-जैसे अधम को तारो, तो जानूँ !)

वंधु भए का दीन के को तार्यौ रघुराइ ।

तूठे-तूठे फिरत हौ भूठे विरदु कहाइ ॥ ६९४ ॥

अन्वय—रघुराइ का दीन के वंधु भए, को तार्यौ ? भूठे विरदु कहाइ तूठे-तूठे फिरत हौ !

का = किस । तूठे-तूठे = संतुष्ट होकर । विरद = वडाई, कीर्ति ।

हे रघुनाथ, तुम किस दीन के बंधु बने—किसके सहायक हुए, और किसको तारा ? झटमूठ का विरद तुलाकर—अपनी कीर्ति लोगों से कहला-कहलाकर—तुम (नाहक) संतुष्ट बने फिरते हो !

थोरै ही गुन रीझते विसराई वह बानि ।

तुमहूँ कान्ह मनौ भए आज-कालिह के दानि ॥ ६९५ ॥

अन्वय—थोरै ही गुन रीझते वह बानि विसराई, मनौ कान्ह तुमहूँ आज-कालिह के दानि भए ।

थोरै ही = थोड़े ही । रीझते = प्रसन्न होते । बानि = आदत ।

ऐ कन्हैया, (तुम जो) थोड़े ही गुण से प्रसन्न हो जाते थे वह आदत (तुमने) भुला दी । मानो तुम भी आजकल कलियुग के दानी हो गये हो (जो हजार सर पटकने पर भी धेळा नहीं देते) ।

कब कौ टेरतु दीन है होत न स्याम सहाइ ।

तुमहूँ लागी जगतगुरु जगनाइक जग-बाइ ॥ ६९६ ॥

अन्वय—कब कौ दीन है टेरतु, स्याम सहाइ न होत जगतगुरु जगनाइक तुमहूँ जग-बाइ लागी ।

टेरत = पुकारता है । जग-बाइ = संसार की इच्छा ।

कब से दीन होकर पुकार रहा हूँ—कातर प्रार्थना कर रहा हूँ, किन्तु हे इयाम, तुम सहाय (प्रसन्न) नहीं होते । हे संसार के गुरु और प्रभु, (मालूम होता है), तुम्हें भी इस संसार की हवा लग गई है—संसारी मनुष्यों की माँति तुम भी निदुर बन गये हो !

प्रगट भए द्विजराज-कुल सुवस बसै ब्रज आइ ।

मेरे हरौ कलेस सब केसब केसवराइ ॥ ६९७ ॥

अन्वय—द्विजराज-कुल प्रगट भए सुवस ब्रज आइ बसै केसब केसवराइ मेरे सब कलेस हरौ ।

द्विजराज = (१) उत्तम ब्राह्मण (२) चंद्रमा । केसब = केशव, श्रीकृष्ण । केसवराइ = विहारीलाल के पिता ।

श्रेष्ठ ब्राह्मण वंश में ('कृष्ण' अर्थ में 'चन्द्रवंश' में) प्रकट हुए, और अपनी हच्छा से ब्रज में आ चसे । वह कृष्ण-रूपी (मेरे पिता) केशवराव मेरे सब क्षेत्रों को दूर करे ।

घर-घर डोलत दीन है जन-जन जाँचतु जाइ ।

दियैं लोभ-चसमा चखनु लघुहू बड़ौ लखाइ ॥ ६९८ ॥

अन्वय—दीन है घर-घर डोलत, जन-जन जाँचतु जाइ, चखनु लोभ-चसमा दियैं लघुहू बड़ौ लखाइ ।

डोलत=धूमता-फिरता है । चखनु=आँखों पर । चसमा=ऐनक ।

(यह लालची मन) दीन बनकर घर-घर धूमता (मारा फिरता) है, और प्रत्येक मनध्य से याचना करता जाता है—कुछ-न-कुछ माँगता ही जाता है; क्योंकि आँखों पर लोभ का चश्मा देने से छोटी (मामूली) चीज भी बड़ी (बेशकीमत) दीख पड़ती है ।

कीजै चित सोई तरे जिहिं पतितनु के साथ ।

मेरे गुन-औंगुन-गननु गनौ न गोपीनाथ ॥ ६९९ ॥

अन्वय—गोपीनाथ, सोई चित कीज जिहिं पतितनु के साथ तरे, मेरे गुन-औंगुन-गननु न गनौ ।

जिहिं=जिससे । गननु=गणों, समूहों । गनौ न=खयाल न करो ।

हे गोपीनाथ ! बैसा ही (कृपालु) मन रखिए—इरादा कीजिए, जिससे मैं भी (अन्य) पतितों के साथ तर जाऊँ; मेरे गुण और अवगुण के समूहों को न गिनिए, (क्योंकि पार न पाइएगा, अतः दया कर तार ही दीजिए) ।

ज्यौं अनेक अधमनु दियौं मोहूं दीजै मोषु ।

तौं वाँधौं अपनैं गुननु जौं वाँधैही तोषु ॥ ७०० ॥

अन्वय—ज्यौं अनेक अधमनु दियौं, मोहूं मोषु दीजै, जौं वाँधैही तोषु तौं अपनैं गुननु वाँधौं ।

मोषु=मोक्ष । गुननु=(१) गुणों (२) रस्सियों । तोषु=संतोष ।

जिस प्रकार आपने अनेक पतितों को मोक्ष दिया है, उसी प्रकार मुझे भी

दीजिए—आवागमन से कुड़ाइए—(अथवा) यदि बाँधने ही से (सांसारिक माया-मोह के बंधनों में फँसाये रखने से ही) संतोष हो, तो अपने गुणों (की रस्सियों) से ही बाँधिए । (बंधन या मोक्ष, दो में से कोई एक, तो देना ही पढ़ेगा !)

परिशिष्ट

ये पचीस दोहे भी विहारीलाल के ही हैं ।

कोऊ कोरिक संग्रहौ कोऊ लाखू हजार ।

मो सम्पति जटुपति सदा चिपति-विदारनहार ॥ ७०१ ॥

अन्वय—कोऊ हजार लाखू कोऊ कोरिक संग्रहौ, मो सम्पति सदा चिपति-विदारनहार जटुपति ।

कोई हजारों, लाखों या करोड़ों की सम्पत्ति संग्रह करे, किन्तु मेरी सम्पत्ति तो वही मदा ‘चिपति’ के नाश करनेवाले’ यटुनाथ (श्रीकृष्ण) हैं ।

ज्यौं हैं हौं त्यौं होऊँगौं हौं हरि अपनी चाल ।

हठु न करौ अति कठिनु हैं मो तारिबो गुपाल ॥ ७०२ ॥

अन्वय—हरि हैं अपनी चाल ज्यौं हैं हौं त्यौं होऊँगौं, हठु न करौ, गोपाल, मो तारिबो अति कठिनु है ।

हे कृष्ण, मैं अपनी चाल से जैसा होना होगा, वैसा होऊँगा । (मुझे तारने के लिए) तुम हठ न करो । हे गोपाल, मुझे तारना अत्यन्त कठिन है—(हँसी-खेल नहीं है, तारने का हठ छोड़ दो, मैं बोर नारकी हूँ) ।

करौ कुबत जगु कुटिलता तजौं न दीनदयाल ।

दुखी होहुगे सरल चित बसत त्रिभंगीलाल ॥ ७०३ ॥

अन्वय—जगु कुबत करौ दीनदयाल कुटिलता न तजौं त्रिभंगीलाल सरल चित बसत दुखी होहुगे ।

कुवत = कुवार्चा, निन्दा। त्रिभंगीलाल = बाँकेबिहारीलाल—मुरली बजाते समय पैर, कमर और गर्दन कुछ-कुछ टेढ़ी हो जाती है, जिससे शरीर में तीन जगह टेढ़ापन (बाँकपन) आ जाता है—वही त्रिभंगी बना है।

संसार मले ही निंदा करे, किन्तु हे दीनदयालु, मैं अपनी कुटिलता छोड़ नहीं सकता; क्योंकि हे त्रिभंगीलाल, मेरे सीधे चित्त में बसने से तुम्हें कष्ट होगा (सीधी जगह में टेढ़ी मूर्ति कैसे रह सकेगी ? त्रिभंगी मूर्ति के लिए टेढ़ा हृदय मी तो चाहिए) ।

मोहिं तुम्हैं बाढ़ी बहस को जीतै जदुराज ।

अपनै-अपनै विरद को दुहूँ निवाहन लाज ॥ ७०४ ॥

अन्वय—मोहिं तुम्हैं बहस बाढ़ी, जदुराज को जीतै, अपनै-अपनै विरद की लाज दुहूँ निवाहन ।

सुझमें और तुममें बहस छिड़ गई है, हे यदुराज ! देखना है कि कौन जीतता है। अपने-अपने गुण की लाज दोनों ही को निवाहना है। (तुम सुझे तारने पर तुके हो, तो मैं पाप करने पर तुला हूँ; देखा चाहिए किसकी जीत होती है !)

निज करनी सकुचें हिं कत सकुचावत इहि चाल ।

मोहूँ-से अति विमुख त्यौं सनमुख रहि गोपाल ॥ ७०५ ॥

अन्वय—गोपाल, निज हिं करनी सकुचें इहि चाल कत सकुचावत, मोहूँ-से अति विमुख त्यौं सनमुख रहि ।

हे गोपाल, मैं तो अपनी ही करनी से लजा गया हूँ, फिर तुम अपनी इस चाल से सुझे क्यों लजवा रहे हो कि मुझ-जैसे अत्यन्त विमुख के तुम सम्मुख रहते हो—(मैं तुम्हें सदा भूला रहता हूँ, और तुम सुझे सदा स्मरण रखते हो !)

तौ अनेक औगुन भरी चाहै याहि बलाइ ।

जौ पति सम्पति हूँ विना जदुपति राखे जाइ ॥ ७०६ ॥

अन्वय—जौ सम्पति हूँ विना जदुपति पति राखे जाइ तौ अनेक औगुन मरी याहि बलाइ चाहै ।

यदि विना सम्पत्ति के मी श्रीकृष्ण (मेरी) पत रखते जायँ—प्रतिष्ठा बचाये रखें, तो अनेक अवगुणों से मरी इस (सम्पत्ति) को मेरी बलैया चाहे ।

हरि कीजति विनती यहै तुमसौं बार हजार ।

जिहिं तिहिं भाँति डरयौ रह्यौ परचौ रह्यौ दरबार ॥ ७०७ ॥

अन्वय—हरि तुमसौं हजार बार यहै विनती कीजति, जिहिं तिहिं भाँति डरयौ रह्यौ दरबार पस्त्यौ रह्यौ ।

हे कृष्ण, तुमसे मैं हजार बार यहीं विनती करता हूँ कि (मैं) जिस-
तिस प्रकार से डरता हुआ मी तुम्हारे दरबार में सदा पड़ा रहूँ ! (ऐसा प्रबंध
कर दो ।)

तौ बलियै भलियै बनी नागर नन्दकिसोर ।

जौ तुम नीकैं कै लखयौ मो करनी की ओर ॥ ७०८ ॥

अन्वय—नागर नन्दकिसोर बलियै जौ तुम नीकैं कै मो करनी की ओर
लखयौ तौ भलियै बनी ।

हे चतुर नन्दकिशोर, मैं बलैया लूँ, यदि तुम अच्छी तरह से मेरी करतूत
की ओर देखोगे—मेरे अवगुणों पर विचारोगे, तब तो बस मेरी बिगड़ी खबर
बनी ! मेरा उद्धार हो चुका ! (अर्थात् नहीं होगा ।)

नोट—“व्याघ हूँ ते विहद असाधु हौं अजामिल तें ग्राह ते गुनाही कहो
तिन मैं गिनाओगे ? स्यौरी हौं न सूद हौं न केवट कहूँ को त्यौं न गौतम-तिया
हौं जापै पग धरि आओगे ॥ राम सौं कहत ‘पदमाकर’ पुकारि तुम मेरे महापापन
को पारहू न पाओगे । इठो ही कलंक सुनि सीता ऐसी सती तजी हौं तो साँचो
हूँ कलंको कैसे अपनाओगे ?”

समै पलटि पलटै प्रकृति को न तजै निज चाल ।

भौ अकरुन करुना करौ इहिं कुपूत कलिकाल ॥ ७०९ ॥

अन्वय—समै पलटि प्रकृति पलटै निज चाल को न तजै, इहिं कुपूत
कलिकाल करुना करौ अकरुन मौ ।

करुना करौ=करुना + आकरौ=करुना के भण्डार भी । कुपूत=
(कु + पूत) अपूत, अपवित्र, अपावन, पापी ।

समय पलट जाने से—जमाना बदल जाने से—प्रकृति भी बदल जाती है। (फलतः प्रकृति के वशीभूत होकर) अपनी चाल कौन नहीं छोड़ देता है। इस पापी कलियुग में करुणा के भंडार (श्रीकृष्ण) भी करुणा-रहित (निष्ठुर) हो गये! (तभी तो मेरी पुकार नहीं सुनते!)

अपनै-अपनै मत लगे वादि मचावत सोरु ।

ज्यौं-त्यौं सबकौं सेइवौ एकै नन्दकिसोरु ॥ ७१० ॥

अन्वय—अपनै-अपनै मत लगे वादि सोरु मचावत, ज्यौं-त्यौं सबकौं एकै नन्दकिसोरु सेइवौ।

अपने-अपने मत के लिए व्यर्थ ही लोग हल्ला मचा रहे हैं। जैसे-तैसे सभी को एक उसी श्रीकृष्ण की उपासना करनी है। (सर्वदेवो नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति।)

नोट—‘है अछूती जोत उसकी मन्दिरों में जग रही, मस्तिजदों गिरजाघरों में भी दिखाता है वही। बौद्ध-मठ के बीच है दिखला रहा वह एक ही, जैन-मन्दिर भी छुटा उसकी छ्या से है नहीं।’—‘इरिऔघ’।

अरुन सरोरुह कर-चरन दग खंजन मुख चंद ।

समै आइ सुन्दरि सरद काहि न करति अनंद ॥ ७११ ॥

अन्वय—अरुन सरोरुह कर-चरन, खंजन दग, चंद मुख, सरद-सुन्दरि समै आइ काहि अनंद न करति।

लाल कमल ही उसके हाथ-पाँव हैं, खंजन ही आँखें हैं, और चन्द्रमा ही मुखड़ा है। (इस रूप में) शरद-ऋतु-रूपी सुन्दरी श्री समय पर आकर किसे आनन्दित नहीं करती?

नोट—शरद-ऋतु में कमल, खंजन और चंद्रमा की शोभा का वर्णन किया जाता है। यथा—“पाइ सरद रितु खंजन आये” और “सरद-सर्वरी नाथ मुख सरद-सरोरुह नैन”—हुलसीदास।

ओछे बड़े न हैं सकै लगौ सतर छै गैन ।

दीरघ होहिं न नैकहूँ फारि निहारै नैन ॥ ७१२ ॥

अन्वय—सतर है गैन लगौ जगौ ओछे बड़े न है सकैं, नैन फारि निहारै नैकहूँ दीरघ न होहिं ।

सतर=बढ़ी-चढ़ी, क्रोधयुक्त । नैकहूँ=तनिक भी । गैन=गगन, आकाश ।

घमंड से आस्मान पर चढ़ जाने से (बढ़-बढ़कर बातें करने से भी) ओछे आदमी बड़े नहीं हो सकते । आँखें फाड़-फाड़कर देखने से (आँखों) तनिक भी लम्बी नहीं होतीं ।

औरै गति औरै वचन भयौ बदन-रँग औरू ।

यौसक तैं पिय-चित चढ़ी कहैं चढ़ैं हूँ त्यौरु ॥ ७१३ ॥

अन्वय—आरै गति औरै वचन बदन-रँगु औरू भयौ, यौसक तैं पिय-चित चढ़ी चढ़ैं हूँ त्यौरु कहैं ।

बदन=मुख । यौसक=यौस+एक=दो-एक दिन ।

और ही नरह की चाल है, और ही वचन है, और मुख का रंग भी कुछ और ही है ! दो-एक दिन से तुम प्रीतम के चित्त पर चढ़ गई हो, यह बात तुम्हारी चढ़ी हुई त्यारी ही कह रही है ।

गाढ़ैं ठाढ़ैं कुचनु ठिलि पिय-हिय को ठहराइ ।

उकसौंहैं हाँ तौ हियैं दई सवै उकसाइ ॥ ७१४ ॥

अन्वय—गाढ़ैं ठाढ़ैं कुचनु ठिलि पिय-हिय को ठहराइ, तौ हियैं उकसौंहैं हाँ सवै उकसाइ दई ।

गाढ़ैं=कठोर । ठाढ़ैं=खड़े (तने) हुए । उकसौंहैं=उभड़े हुए । हियैं=हृदय, छाती । दई उकसाइ=उकसा (उभाइ) दिया ।

तुम्हारे स्तन प्रीतम के हृदय में बसे हैं, (सो) उन कठोर और तने हुए स्तनों को ठेज़कर (धक्के से अलग कर) प्रीतम के हृदय में और कौन (स्त्री) ठहर सकती है ? (अरी) तुम्हारी उभड़ी हुई छाती ने ही तो सबको उभाइ दिया ! (कामोदीस कर दिया)

गुरुजन दूजैं व्याह कौं निसि दिन रहत रिसाइ ।

पति की पति राखति बधू आपुन बाँझ कहाइ ॥ ७१५ ॥

अन्वय—दूजे व्याह कों गुरुजन निसि दिन रसाइ रहत, बधू आपुन बाँझ कहाइ पति की पति रखति ।

पति=पत, लाज । बाँझ=निस्सन्तान, बंधा ।

दूसरा व्याह करने (को लालायित होने) के कारण (नायिका के) पति पर गुरुजन रात-दिन क्रोधित होते हैं (कि तुम क्यों शादी कर रहे हो ?) । (इधर, नायिका यथि बाँझ नहीं है, तो मी) अपने आपको बाँझ कहकर पति की प्रतिष्ठा रखती है (ताकि लोग समझें कि पत्नी के बाँझ होने से ही बेचारा शादी करता है, मोगेन्छा से प्रेरित होकर नहीं) ।

नोट—इस दोहे में पति-प्रेम का भंडार भर दिया गया है ।

घर-घर तुरुकनि हिन्दुआनि देति असीस सराहि ।

पतिनु राखि चादर-चुरी तैं राखीं जयसाहि ॥ ७१६ ॥

अन्वय—जयसाहि, घर-घर तुरुकनि हिन्दुआनि सराहि असीस देति तैं पतिनु राखि चादर-चुरी राखीं ।

हे जयशाह, घर-घर में तुर्क-चियाँ और हिन्दू-चियाँ सराह-सराहकर तुम्हें आशीर्वाद देती हैं ! क्योंकि तुमने उनके पतियों की रक्षा कर उनकी चादर और चूड़ी (तुर्किनों की चादर और हिन्दुआनियों की चूड़ी) रख लीं—उनका सधवापन (सोहाग) बचा लिया ।

जनमु जलधि पानिप बिमलु भौ जग आघु अपारु ।

रहै गुनी है गर पर्यौ भलैं न मुकुता-हारु ॥ ७१७ ॥

अन्वय—जलधि जनमु बिमलु पानिप जग आघु अपारु भौ, गुनी है गर पर्यौ रहै मुकुता-हारु भलैं न ।

जलधि=समुद्र । पानिप=(१) चमक (२) शोभा । आघु=मूल्य । गुनी=(१) गुणयुक्त (२) सूत्र-युक्त, गुंथा हुआ । मुकुता = मोती ।

समुद्र से तुम्हारा जन्म हुआ है (कुलीन हो), स्वच्छ चमक है (सुन्दर हो), और संसार में तुम्हारा मूल्य भी अपार है (आदरणीय भी हो) । ऐसे 'गुनी' होकर भौ—गुथे हुए होकर भौ—किसी के गले पढ़े रहना

(खामखाह किसी की स्थिदमत में रहना), ऐ मुक्ता-हार ! तुम्हारे लिए अच्छा नहीं है !

(सो०) पावस कठिन जु पीर, अबला क्योंकरि सहि सकै ।

तेऊ धरत न धीर, रक्त-बीज सम ऊपजै ॥ ७१८ ॥

अन्वय—पावस कठिन जु पीर अबला क्योंकरि सहि सकै रक्त-बीज सम ऊपजै तेऊ धीर न धरत ।

रक्त-बीज = 'रक्त' और 'बीज' के समान भाग से अवतार (जन्म) लेने-वाला—अर्थात् 'नपुंसक' । ऊपजे = जन्म ग्रहण किया ।

वर्षा-ऋतु की जो कठिन पीड़ा है, इसे अबला स्थिराँ किस प्रकार सह सकती हैं ? जब कि जन्म ही के नपुंसक (पैदाइशी हिजडे) भी इस ऋतु में धैर्य नहीं धरते ।

प्यासे दुपहर जेठ के फिरै सबै जलु सोधि ।

मरुधर पाइ मतीर हीं मारु कहत पयोधि ॥ ७१९ ॥

अन्वय—जेठ के दुपहर प्यासे सबै जलु सोधि फिरै मारु मरुधर मतीर हीं पाइ पयोधि कहत ।

सोधि = ढूँढ़कर । मरुधर = मरुभूमि, मारवाड़ । मतीर = तरबूजा । मारु = मरुभूमि निवासी । पयोधि = समुद्र ।

जेठ की दुपहरिया का प्यासा और सर्वत्र जल ढूँढ़-ढूँढ़कर थका हुआ मरुभूमि-निवासी, मरुभूमि में तरबूजे को पाकर, उसे समुद्र कहता है । (देखिए ६७७ वाँ दोहा)

समै-समै मुन्दर सबै रूपु-कुरुपु न कोइ ।

मन की रुचि जेती जितै तित तेती रुचि होइ ॥ ७२० ॥

अन्वय—समै-समै सबै मुन्दर, कोइ रूपु-कुरुपु न, मन की रुचि जेती जितै तित तेती रुचि होइ ।

रुचि = प्रवृत्ति, आसक्ति । जेती = जितनी । जितै = जिधर । तित तेती = उधर उतनी ही ।

समय-समय पर सभी सुन्दर हैं, कोई सुन्दर और कोई कुरुप नहीं है। मन की प्रवृत्ति जिधरे जितनी होगी, उधर उतनी ही आसक्ति होगी।

सामाँ सेन सथान की सबै साहि कैं साथ ।

वाहु-बली जयसाहि जू फते तिहारै हाथ ॥ ७२१ ॥

अन्वय—सेन सथान की सामाँ सबै साहि कैं साथ। वाहु-बली जयसाहि जू फते तिहारै हाथ।

सामाँ=समान। सेन=सेना। साहि=वादशाहि। वाहु-बली=पराक्रमी। फते=फतह=विजय।

सेना और चतुराई के नामान तो सभी वादशाहों के साथ रहते हैं, किन्तु पराक्रमी राजा जयसिंहजी, विजय तुम्हारे ही हाथ रहती है।

कालिह दसहरा बांतिहै धरि मूरख जिय लाज ।

दुर्घौ फिरत कत द्रुमनु मैं नीलकंठ विनु काज ॥ ७२२ ॥

अन्वय—कालिह दसहरा बांतिहै मूरख जिय लाज धरि, नीलकंठ द्रुमनु मैं विनु काज कत दुर्घौ फिरत।

दुरघौ=लुकना, छिपना। द्रुमनु=वृक्षों।

कल दसहरा बांत जायगा। अरे मूर्ख, कुछ तो हृदय में लाज कर। अरे नीलकंठ, वृक्षों पर व्यर्थ क्यों लुका फिरता है?

नोट—दसहरा के दिन नीलकंठ दर्शन शुभ है।

हुकुम पाइ जयसाहि कौ हरिनाधिका-प्रसाद ।

करी बिहारी सतसई भरी अनेक सवाद ॥ ७२३ ॥

अन्वय—जयसाहि कौ हुकुम पाइ हरिनाधिका-प्रसाद बिहारी सतसई करी अनेक सवाद भरी।

राजा जयसिंह की आज्ञा पाकर और राधा-कृष्ण की कृपा से ‘बिहारी’ ने यह ‘सतसई’ बनाई, जो अनेक स्वादों से भरी है—अनेक रसों से अलंकृत है।

संवत ग्रह सर्सि जलधि छिति छठ तिथि बासर चंद ।

चैत मास पछ कृष्ण में पूरन आनँदकंद ॥ ७२४ ॥

अन्वय— संवत् छिति जलधि ससि ग्रह चैत मास कृष्ण पछ में छठ तिथि बासर चंद्र आनंदकंद पूरन ।

ग्रह = नौ । ससि = चन्द्रमा, एक । जलधि = समुद्र, सात । छिति = पृथ्वी, एक । बासर = दिन । चंद्र = सोम । आनंदकंद = आनन्द की जड़ ।

संवत् १७१९ के चैत्र मास के कृष्ण पक्ष में छठी तिथि और सोमवार को, यह आनन्दकन्द 'सतसई' पूरी हुई ।

नोट— पद्य में संवत् के अंक उल्टे ही क्रम से लिखते हैं ।

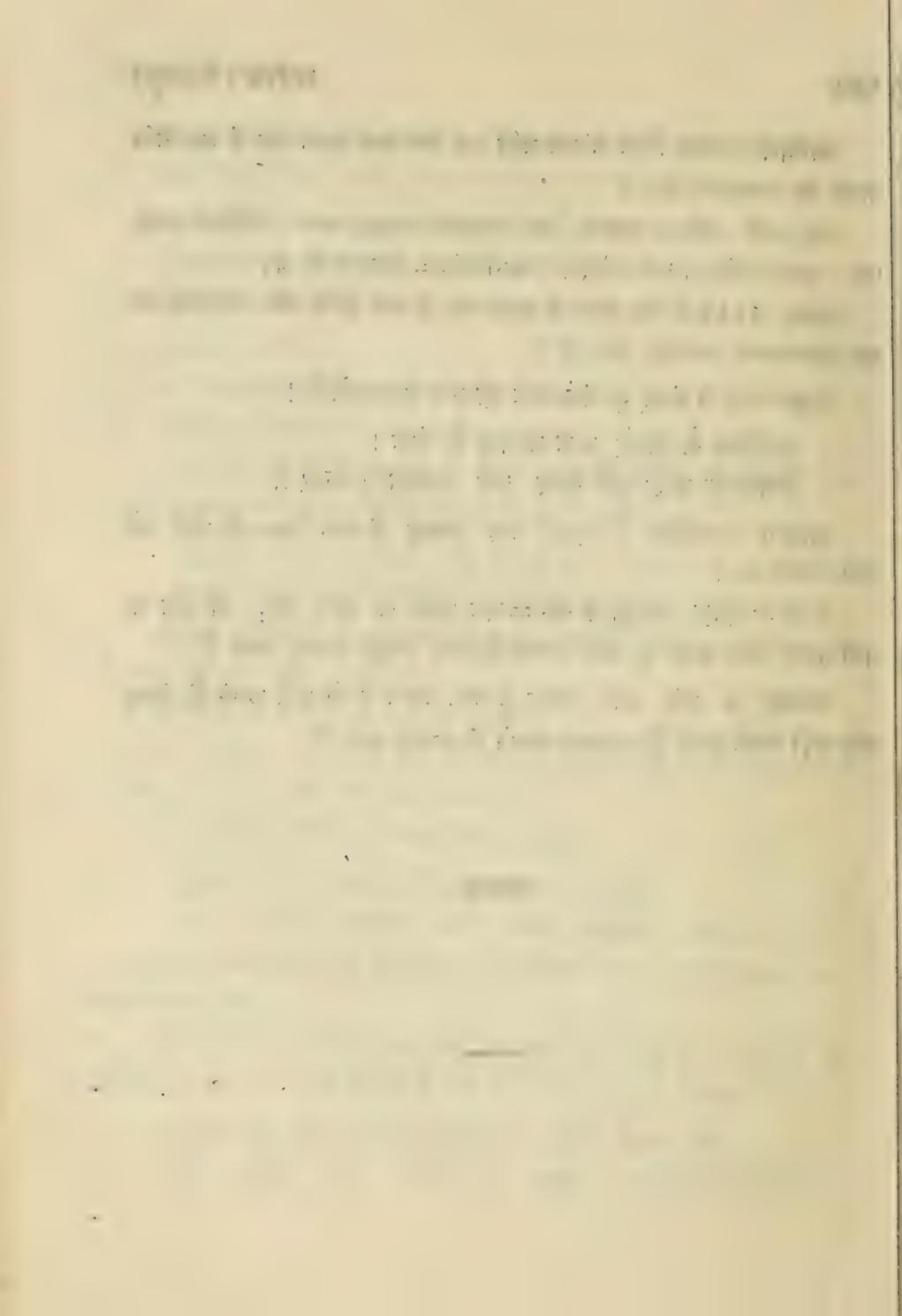
सतसैया कै दोहरे अरु नावकु कै तीरु ।

देखत तौ छोटैं लगैं घाव करैं गंभीरु ॥ ७२५ ॥

अन्वय— सतसैया कै दोहरे अरु नावकु कै तीरु देखत तौ छोटैं लगैं घाव गंभीरु करैं ।

दोहरे = दोहे । नावकु के तीर = एक प्रकार का छोया तीर, जो बाँस की नली होकर फेंका जाता है, और उसका निशाना अचूक समझा जाता है ।

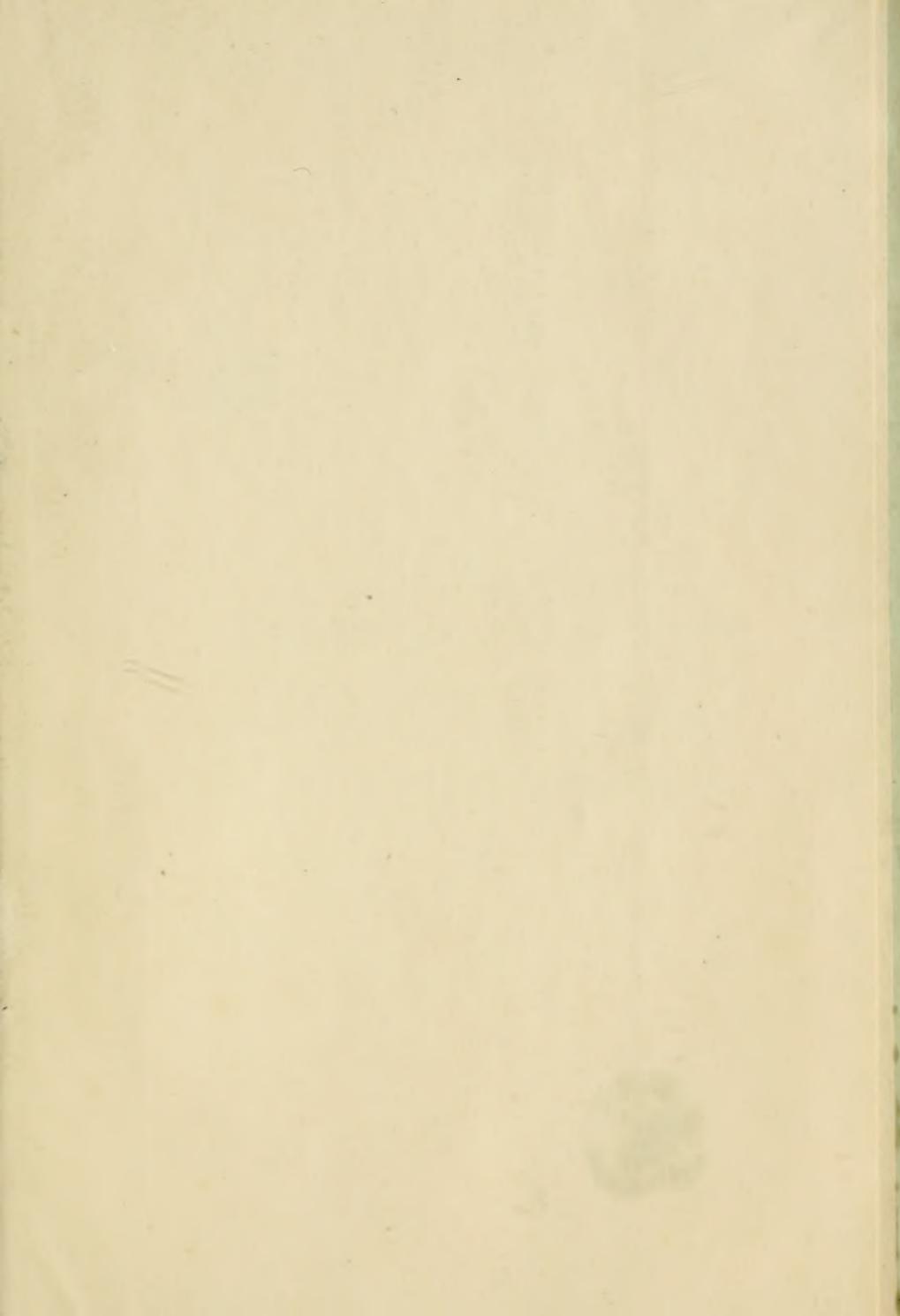
सतसई के दोहे, और नावक के तीर, देखने में तो छोटे लगते हैं, किन्तु छोट बड़ी गहरी करते हैं—घावल बनाने में कमाल करते हैं ।

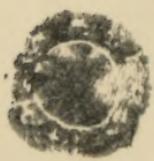


विहारी के सोलह दुर्लभ दोहे

बकी-विदारन	बक-दवन	बनमाली	जितवान् ।
दामोदर	देवकि-तनज	दुर्जन	दयानिधान ॥ १ ॥
सकट-सधारन	अघ-हरन	करुना-घन	घनस्याम ।
कुविजा-कामुक	दौ-दवन	बहुमाइक	बहुनाम ॥ २ ॥
विष्टि-निवारन	विष्टिवर	बमुह	विभूषन बीर ।
गीता-गाइक	गरुड़धुज	गोविंद	गुन-गम्भीर ॥ ३ ॥
मुष्टिक-मारन	मधु-मथन	मथुरानाथ	मुकुन्द ।
तरतारक	त्रैताप	हरि	हरि तारक मचकुन्द ॥ ४ ॥
कंस - निखूँदन	कंसहर	काली-मरदन	काल ।
गोपी-बल्लभ	गिरि-धरन	गज-गंजन	गोपाल ॥ ५ ॥
दोवे	चीरद	चतुरभुज	माखन-चोर ।
रास-रसिक	सत्या-सुखद	सुन्दर	नन्दकिसोर ॥ ६ ॥
त्रय-भंजन	भव-भार-हर	भगतनि-प्रिय	भगवान् ।
कमल-नयन	कमला-रवन	केसव	कि हम कल्यान ॥ ७ ॥
नारायन	नट-वेष-धर	नागर-वर	नरकारि ।
ब्रज-भूपन	राधा-रवन	मुरली-धरन	मुरारि ॥ ८ ॥
मनु मान्यो	केते मुनिन	मनु न	मनायो आइ ।
ता मोहन	पै राधिका	झगरि	झँवावति पाँइ ॥ ९ ॥
जागि न	पायो ब्रह्महू	जोग न	पायो ईस ।
ता मोहन	पै राधिका	सुमन	गुहावति सीस ॥ १० ॥

सिव सनकादिक ब्रह्माहु
 भरि देखै नहिं दीठि ।
 ता मोहन सो राधिका
 है है देवै पीठि ॥ ११ ॥
 वेद भेद जानो नहीं
 नेति नेति कहै वैनि ।
 ता मोहन सो राधिका
 कहै महाउर दैनि ॥ १२ ॥
 हरि को फिर्यौ न पैड़रो
 लोभ फिर्यौ सब देस ।
 मन न भयौ कहुँ ऊजरो
 भये ऊजरे केस ॥ १३ ॥
 याही मैं सबु बनि गयो
 ब्रजबासिन को सूतु ।
 गहकि गर्याँ गाइए
 गोद गदाधर पूतु ॥ १४ ॥
 कोटि अपछरा वारिये
 जो सुकिया सुखदेइ ।
 ढोली आँखिन ही चितै
 गाढे गहि मन लेइ ॥ १५ ॥
 भौंत भीर गुरुजन भरे
 सकै न कहिकै बैन ।
 दम्हति दंड कटाक्ष भरि
 चाँचरि खेलत नैन ॥ १६ ॥





FL 3-8-67

PK Biharilal
2095 Satasai
B5S3
1903



PLEASE DO NOT REMOVE
CARDS OR SLIPS FROM THIS POCKET

UNIVERSITY OF TORONTO LIBRARY



मूल्य—पौने चार रुपये